Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

BETAVAVANI

B.K.U. 1930

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

amaj Foundation Chen

main. Gurukul Kangri C

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri 113502

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

COMPU...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बेतवा-वाणी

COMPILED

विशेषांक

(कृष्ण कवि कृत "धर्मसंवाद" और "विदुर प्रजागर")

समीक्षक और सम्पादक

डा. भगवानदास माहौर

त्रैमासिक-प्रकाशन

फरवरी १९८०

वर्ष २ * अङ्क : ३

सम्पादक :

डा० भगवानदास गुप्त

बुन्देली - साहित्य - इतिहास-संस्कृति - शोध - विकास - परिषद्

बुन्देलखण्ड-विश्वविद्यालय, झांसी (उ. प्र.)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

113502
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
113502

बेतवा-वाणी

विशेषांक

(कृष्ण कवि कृत "धर्मसंवाद" और "विदुर प्रजागर")

समीक्षक और सम्पादक

डा. भगवानदास माहौर

त्रैमासिक-प्रकाशन
फरवरी १९८०
वर्ष २ * अङ्क : ३

सम्पादक :
डा० भगवानदास गुप्त

बुन्देली - साहित्य - इतिहास-संस्कृति - शोध - विकास - परिषद्
बुन्देलखण्ड-विश्वविद्यालय, झांसी (उ. प्र.)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाशक :
डा० भगवानदास गुप्त
सचिव : बुन्देली-साहित्य-इतिहास-संस्कृति-शोध-विकास-परिषद्
बुन्देलखण्ड- विश्वविद्यालय, झांसी (उ०प्र०)

बुन्देली-शोध-विकास-परिषद
एवम
पत्रिका - परामर्शदातृ - मण्डल

संरक्षक :

माननीय श्री रामकृष्ण त्रिवेदी आई. ए. एस.
कुलपति बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय

अध्यक्ष :

श्री कृष्णानन्द गुप्त

उपाध्यक्ष :

डा० ब्रजवासीलाल, पीएच.डी.,डी.लिट्.

सचिव :

डा० भगवानदास गुप्त
पीएच डी., एल-एल. बी., डी. लिट्.

सदस्य :

श्री हरिहर निवास द्विवेदी, एडवोकेट
श्री केदारनाथ अग्रवाल, एडवोकेट
डा० गनेशीलाल बुधौलिया, पीएच. डी.

मुद्रक :
वीर बुन्देलखण्ड प्रेस,
१७८, गुसाईपुरा, झाँसी (उ.प्र.) फोन : ९३१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादकीय

छोटी बड़ौनी (दतिया म० प्र०) में जन्मे, झांसी में पले क्रांतिकारी एवं राष्ट्रीय आंदोलन में तपे और अंग्रेंजी सरकार की जेलों में पंद्रह वर्ष के यातना-पूर्ण बंदी जीवन में सोने से निखरे, स्वर्गीय डा० भगवानदास माहौर बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। उनकी राइफल और रिवाल्वर की अचूक निशानेवाजी, जांबाज दिलेरी, काव्य और संगीत में स्वाभाविक पटुता और अभिनय क्षमता ने अमर शहीद चंद्रशेखर आजाद और सरदार भगतसिंह तक से उनकी पीठ ठुकवा ली थी। चंद्रशेखर आजाद के तो वे "हनुमान" थे ही, पर भगतसिंह भी उनकी यकायक चमत्कृत कर देने वाली प्रतिभा के कायल हो गये थे। एक बार जब माहौर जी अपने छात्र जीवन में सर्वश्रेष्ठ खलनायक के अभिनय का पुरस्कार पाकर लौटे, तब तो भगतसिंह से और जब्त न हो सका, वे कह ही बैठे, "अब कसर इतनी ही रह गई है कि आप किसी 'ब्यूटी कन्टेस्ट' (सौंदर्य प्रतियोगिता) में भी पहिला इनाम पायें।".

सन् १९४७ के पश्चात् डा० भगवानदास माहौर ने ३७ वर्ष की आयु में लगभग २० वर्ष से छूटे अपने शिक्षा के सूत्रों को फिर से संभाला। साहित्य-रत्न, बी० ए०, एम० ए० किया, कवि मदनेश के लक्ष्मीबाई के रासो के शोध और विद्वतापूर्ण संपादन पर हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग से साहित्य महोपाध्याय की उपाधि प्राप्त की, और फिर आगरा विश्वविद्यालय से अपने शोध ग्रंथ '१८५७ के स्वाधीनता संग्राम का हिंदी साहित्य पर प्रभाव' पर पी एच. डी. की उपाधि से सम्मानित हुये। इस डिग्रियों की दौड़ की अंतिम मंजिल सौभाग्य से उन्हें नहीं दौड़नी पड़ी। वह स्वयं ही खिंची चली आई। बुंदेलखण्ड विश्वविद्यालय ने उन्हें सन् १९७७ में डी. लिट. (मानद) की उपाधि से विभूषित किया। इस बीच माहौर जी ने विभिन्न विषयों पर अनेकों लेख संपादकीय और संस्मरणात्मक लेख लिखे। 'यश की धरोहर' में उन्होंने संस्मरण लेखन को जो कलात्मकता प्रदान की है, वह तो हिंदी साहित्य में अपनी तरह की बेजोड़ है। अपनी मृत्यु (१२ मार्च १९७९) से लगभग एक वर्ष पूर्व उन्होंने 'काकोरी शहीद स्मृति ग्रंथ' का संपादन किया था जिसका विमोचन राष्ट्रपति भवन में राष्ट्रपति श्री रेड्डी द्वारा २८ जुलाई १९७८ को हुआ था।

बुंदेलखंड महाविद्यालय झांसी में हिंदी विभाग के प्राध्यापक के पद से अवकाश ग्रहण करने पर उन्होंने बुंदेलखण्ड के अज्ञात और अल्पज्ञात कवियों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और उनके काव्यों को प्रकाश में लाने का व्रत लिया और विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के सहयोग से तीन शोध कृतियां प्रस्तुत कीं। ये हैं, रामदास नीमा कृत 'उषा अनिरुद्ध की कथा', कृष्ण कवि कृत 'धर्मसंवाद' और 'विदुर प्रजागर' और हीरालाल प्रधानकृत 'नासिकेत की कथा' और 'सत्यमंजरी'। इन सभी कृतियों के प्रस्तुतीकरण और संपादन में डा॰ भगवानदास माहौर ने समालोचना के नये मापदंड प्रस्तुत किये हैं और उसे नये आयाम दिये हैं। उन्होंने इन रीतिकालीन रचनाओं का राजनैतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में जो समीक्षण और सम्पादन किया है, बह स्वयं में अनूठा और विद्वतापूर्ण ही नहीं, अपितु युगसंगत भी है। ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में उपरोक्त कृतियों का अनुशीलन, उनकी एक अन्य विशेषता है।

हर्ष और संतोष की बात है कि डा॰ माहौर ने बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय में जिस बुन्देली परिषद को जन्म दिया और उसके प्रथम अध्यक्ष रहे, वही उनकी इन बहुप्रशंसित कृतियों को प्रकाशित करने जा रही है। 'धर्मसंवाद' और 'विदुर प्रजागर' आपके हाथ में है। 'उषा अनिरुद्ध की कथा' प्रेस में है और 'नासिकेत की कथा' और 'सत्य मंजरी' शीघ्र ही प्रेस में जाने वाली हैं। बुन्देली परिषद इस दिशा में जो कुछ कर सकी है, या कर रही है, वह बुन्देलखंड विश्वविद्यालय के कुलपति आदरणीय श्री रामकृष्ण जी त्रिवेदी की प्रेरणा एवं प्रोत्साहन से और श्रीमती यमुनाबाई माहौर के सहयोग से ही संभव हो सका है। बुन्देली परिषद उनकी कृतज्ञ है और मैं उनका विशेष रूप से ऋणी हूं, क्योंकि अपने गुरु तुल्य मित्र के प्रति इस माध्यम से अपनी आस्था और श्रद्धा के दो शब्द अर्पित कर सका हूं।

१२ मार्च १९८० **(डा०) भगवानदास गुप्त**

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुक्रमणिका

निवेदन ...	अ० १
आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र का अभिमत ...	अ० ३
डा० कृष्णचंद्र वर्मा का अभिमत ...	अ० ४
प्रस्तावना : श्री हरिहरनिवास द्विवेदी ...	अ० ६
समीक्षात्मक भूमिका ...	१
कवि परिचय ...	१
रचनाओं का सामान्य परिचय ...	९
धर्मसंवाद ...	९
विहारी सतसई की टीका ...	११
विदुर प्रजागर ...	११
राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में समीक्षा ...	१२
राजनीतिक परिस्थितियां ...	१२
राजपूत विद्रोह ...	१३
सिक्ख विद्रोह ...	१४
मराठाओं का संघर्ष ...	१४
राजनीतिक स्थिति का साहित्य पर प्रभाव ...	१६
कृष्णकवि की रचनाओं पर प्रभाव ...	१८
धर्मसंवाद ...	१८
विहारी सतसई की टीका ...	२१
विदुर प्रजागर ...	२२
राजाश्रित कवि और जनता की बात ...	२४
धर्मसंवाद परम्परा ...	२५
सामाजिक दृष्टि से ...	२६
सांस्कृतिक प्रगति के परिप्रेक्ष्य में ...	२८
जनोन्मुखी साहित्य में संस्कृत ग्रंथों के अनुवादों का महत्व ...	३१
धर्मसंवाद और विदुर प्रजागर की भाषा ...	३१
धर्मसंवाद और विदुर प्रजागर में काव्यांगों की स्थिति ...	३५
काव्य रस और नीति ...	३५
नीति रस ...	३८
अनुवाद की सफलता ...	३९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छंद ... ४०
आवश्यक लिपि संकेत ... ४४
अलंकार ... ४४
आधारभूत हस्तलिखित प्रतियों का परिचय ... ४८
धर्मसंवाद ... ४८
विदुर प्रजागर ... ५०
संपादन विधि ... ५२
उपसंहार ... ५३
संपादित पाठ ... १ से १०५
धर्मसंवाद ... १ से ३३
विदुर प्रजागर ... ३४ से १०५
शब्दार्थ संग्रह : धर्मसंवाद ... १०६
विदुर प्रजागर ... १०७

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निवेदन

गत वर्ष विश्वविद्यालय-अनुदान-आयोग के तत्वावधान में बुन्देलखण्ड के अज्ञात और अल्पज्ञात कवियों और काव्यों संबंधी शोधकार्य करते हुए जब मैं श्री रामदास नेमा के ग्रंथ 'उषा अनिरुद्ध की कथा' (सं० १७४१ वि०) का अनुशीलन और सम्पादन कर रहा था तभी मुझे यह लगा था कि रीतिकाल के ग्रंथों का तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में अनुशीलन किये जाने की महती आवश्यकता है, विशेषतः उन ग्रंथों की जो रीतिबद्ध नहीं हैं, और काव्यशास्त्र के पंडितों से साधुवाद और कवियश प्राप्त करने के लिये नहीं हैं, प्रत्युत् आम जनता को ही सरल भाषा में संबोधित हैं। ऐसे ग्रंथों में आम जनता की तत्कालीन आशा आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति होना स्वाभाविक है और उसे परखा जाना चाहिये।

झांसी के विद्वद्वर पं० गौरीशंकर द्विवेदी के पास कृष्ण कवि की संवत् १७९२ वि० की रचना 'विदुरप्रजागर' की एक हस्तलिखित प्रति होने की सूचना मुझे थी ही। मेरे एक छात्र श्री भगवतनारायण रावत ने उसकी एक अन्य प्रति मुझे दी। इसी प्रकार कृष्ण-कवि-कृत 'धर्मसंवाद' ग्रंथ की एक प्रति मित्रवर श्री हरगोविन्द गुप्त (चिरगांव) ने मुझे दी और एक प्रति मेरे सहयोगी अध्यापक बंधु श्री कृष्णलाल पांडे (सरस्वती पाठशाला, झांसी) से भी प्राप्त हुई। यह कृष्ण कवि बुन्देलखण्ड के भांडेर ग्राम के वासी थे। साहित्य के इतिहास में यह बिहारी की सतसैया के पद्य टीकाकार के रूप में प्रसिद्ध रहे हैं, परन्तु उनके ये दोनों ग्रंथ अल्पज्ञात और अज्ञात ही रहे, तथा वे 'रीतिबद्ध' भी नहीं है: अतः उनमें तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में आम जनता की आशा आकांक्षाओं और उनकी सिद्धि के लिये प्रेरणाप्रद भावबल को परखने में मैं प्रवृत्त हुआ। प्रस्तुत ग्रंथ सम्पादन और भूमिकालेखन इसी प्रयास का परिणाम है।

उपर्युक्त सज्जनों से इस कार्य में मुझे जो सहायता मिली है उसके लिये मैं उनका हृदय से कृतज्ञ हूं।

इसके सम्पादन और समीक्षण में गुरुवर आचार्य पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अध्यक्ष स्नातकोत्तर हिन्दी अध्ययनशाला, प्रोफेसर 'नवीन' शोधपीठ, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन), डा० कृष्णचंद्र वर्मा (अध्यक्ष हिन्दी विभाग, महारानी लक्ष्मीबाई महाविद्यालय, ग्वालियर) डा० जनेश्नर वर्मा (अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, क्राइस्ट चर्च कालिज, कानपुर), श्री उदयशंकर दुबे (नागरी प्रचारिणी सभा काशी के शोधकार्यकर्ता, दतिया), हिन्दी के अनेक पुराने महत्वपूर्ण ग्रंथों के उद्धारकर्ता और प्रकाशक श्री हरिहरनिवास द्विवेदी (विद्यामन्दिर मुरार, ग्वालियर) से मुझे बड़ी सहायता मिली है। एतदर्थ इन सभी महानुभावों का हृदय से आभार मानता हूं।

आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र जी ने गुरु की भांति पुराने हस्तलिखित ग्रंथों के पढ़ने और उनका सम्पादन करने के लिये मुझे उपयोगी सूचनाएं दीं जिन्हें जाने बिना पाठसंपादन में और छंदशास्त्र की दृष्टि से कवि के छंद निर्माण की आलोचना करने में मुझ से भूलें हो सकती थीं। समग्र ग्रन्थ पढ़ने का भी उन्होंने कष्ट उठाया है और मेरे इस प्रयास पर अपना तोष प्रकट किया है तथा इस प्रकार मेरा उत्साह बढ़ाया है। बहुत-बहुत ऋणी हुं मैं आचार्य जी का। डा० कृष्णचंद्र वर्मा जी ने भी भूमिका को मनोयोग से पढ़कर मेरे प्रयास की उत्साहवर्द्धक सराहना की है, एतदर्थ कृतज्ञ हूं।

श्री हरिहर निवास द्विवेदी मुझे निरन्तर अभीष्ट परामर्श देते रहे हैं और पुराने हस्तलिखित ग्रन्थों के संग्रह का अपना भंडार उन्होंने मेरे लिये खोल दिया है। समग्र ग्रन्थ का बारीकी से अवलोकन करके मेरे इस प्रयास पर अपनी प्रस्तावना लिखने की भी उन्होंने महती कृपा की है। समझ में नहीं आता किन शब्दों में उनका ऋण और उनके प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करूं।

गुरुवर श्री सुरेन्द्रनाथ वर्मा भूतपूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, बुन्देलखण्ड कालेज, झांसी और मित्रवर डा० भगवानदास गुप्त अध्यक्ष इतिहास विभाग मेरे इन प्रयासों में अभिरुचि लेते रहे हैं और उपयोगी परामर्श और प्रोत्साहन देते रहे हैं। उनका भी में हृदय से कृतज्ञ हूं।

हिन्दी विभाग
बुन्देलखण्ड कालेज, झाँसी
दिनांक ९-९-७३

विनीत
भगवानदास माहौर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र का अभिमत

डा० भगवानदास माहौर ने रीतिकाल के उन कृष्ण कवि के दो नए ग्रन्थों को खोज निकाला है और एकाधिक प्रतियों के आधार पर उनका पाठ-शोध भी किया है जो बिहारी की सतसैया के पद्यबद्ध टीकाकार के रूप में जाने जाते रहे हैं। एक है धर्मसंवाद और दूसरा है विदुरप्रजागर। दोनों का पाठशोध बहुत ही सावधानी और बुद्धिमतापूर्वक किया गया है। विदुरप्रजागर तो प्रसिद्ध विदुरनीति ही है। उसके मूल संस्कृत रूप से भी मिलान करने के कारण पाठ संपादन में पूरी प्रामाणिकता का निवेश हो गया है। धर्मसंवाद के मूल संस्कृत रूप का पता अभी नहीं चला है। पर उसमें कथाबंध होने के कारण अवरोध के स्थल नाम मात्र के हैं। इनके संपादन के अनंतर जो भूमिका इन्होंने लिखी है वह एक प्रकार से इसका दिङ्० निर्देश है कि रीतिकाल के कवियों का विश्लेषण जनमानस की आशा-आकांक्षा और तत्कालीन परिस्थितियों के परि-प्रेक्ष्य में करने की महती अपेक्षा है। मैं भी माहौर जी से सहमत हूं कि रीति-काल के कवि केवल गड्डलिका प्रवाह का ही निर्वाह करने वाले जीवन से तटस्थ निष्क्रिय जन नहीं थे। उन्होंने जीवन की गहराइयों में उतरने और उसके संबंध में गंभीरतापूर्वक सोचने और जनता को श्रेयीमार्ग की ओर भी प्रेरित करने का अपने भरसक प्रयास किया था। हां, उनका प्रयास सुवर्णमय पात्र से ढका अवश्य था। इस प्रकार का श्रमसाध्य कार्य करने तथा नूतन शोधदृष्टि देने के लिए श्री माहौर साधुवाद के पात्र हैं। आशा है कि इनका कर्त्तृत्व लकीर पीटने वाले समीक्षकों का नेत्रोन्मीलन करेगा।

विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
प्रोफेसर 'नवीन' शोधपीठ
अध्यक्ष, स्नातकोत्तर हिन्दी अध्ययनशाला,
अधिष्ठाता कला संकाय
विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन मिति २८-८-७३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डा० कृष्णचन्द्र वर्मा का अभिमत

'बुन्देलखण्ड के अज्ञात और अल्पज्ञात कवि और काव्य' शीर्षक में किये जा रहे अनुसंधान के क्रम में झाँसी के सुप्रसिद्ध विद्वान डा० भगवानदास माहौर ने दूसरी शोधकृति जो प्रस्तुत की है वह है "कृष्ण कवि का 'धर्मसंवाद' और 'विदुर प्रजागर' "।

कृष्ण कवि बिहारी सतसई की टीका के लिए प्रसिद्ध हैं किन्तु उनकी इन दो कृतियों से लोग सामान्यत: परिचित नहीं है। डा० माहौर के इस शोधकार्य के माध्यम से सुप्रसिद्ध टीकाकार कृष्ण कवि की शेष दो अप्रसिद्ध कृतियां 'धर्म संवाद' और 'विदुरप्रजागर' प्रकाश में आ रहीं हैं। वास्तविक शोध की ऐसी ही भूमिका हुआ करती है। डा० माहौर ने जहां इन दो कृतियों का, प्रामाणिक स्वरूप उपस्थित करने की चेष्टा की है वहीं उन्होंने अपनी संक्षिप्त किन्तु सारगर्भित भूमिका में कुछ तथ्य अत्यन्त प्रकृष्ट रूप में हमारे समक्ष रख दिये है :

(१) एक तो यह कि बुन्देलखण्ड के कवि, और बुन्देललण्ड के ही क्यों, समूचे मध्यकाल के कवि, मात्र शृङ्गारी और भक्त नहीं थे, बल्कि उनकी वृत्तियां जीवनोन्मुख थीं, जनोन्मुख थीं और लोकमुखी थीं। उनमें जातीय चैतन्य था, युगीन जड़ता के बावजूद उनमें आत्मालोचन और आत्मोत्थान की प्रबल चेतना थी।

(२) दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि इन कवियों में नीति और धार्मिकता का एक अपना स्तर और विवेक था। कृष्ण कवि की इन दो कृतियों में यह चैतन्य प्रोज्वल रूप में देखा जा सकता है। समसामायिक अन्यान्य कवियों में भी इसके दर्शन किये जा सकते हैं।

(३) तीसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि इन ग्रंथों की भूमिका में विद्वान अनुसंधायक ने पुष्ट साहित्यिक एवं ऐतिहासिक प्रमाणों के आधार पर दोनों ग्रंथों की परीक्षा की हैं और कृष्ण कवि के समसामयिक सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक परिवेश का प्रस्तुतीकरण किया है।

इस प्रकार समग्र रूप से तो यह शोधकार्य महत्वपूर्ण है ही, बिशेष रूप से इसलिये कि एक प्रसिद्ध कवि के दो अप्रसिद्ध ग्रंथ हमारे सामने आते हैं किन्तु इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारण से और भी कि इस प्रकार के अभिनव दृष्टि विधान द्वारा डा० माहौर ने साहित्यानुसंधान का एक नया पथ प्रशस्त किया है जिसका अनुसरण कर समूचे मध्यकाल की विपुल काव्य राशि का मात्र रसात्मक या चमत्कारिक दृष्टि से अन्वेषण अध्ययन ही न किया जा कर उसका अपेक्षाकृत विशाल और वृहतर संदर्भ में राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक सन्दर्भ में अध्ययन किया जा सकता है।

डा० कृष्णचन्द्र वर्मा, एम. ए. पी. एच. डी.
आचार्य एवं अध्यक्ष हिन्दी विभाग
महारानी लक्ष्मीबाई कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय
ग्वालियर (मध्य प्रदेश)

२१-८-७३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रस्तावना

भारत के हृदयस्थल में प्रवाहित चर्मणवती, वेत्रवती, सिन्धु, पारा, लवणा नदियों के किनारे मध्यकालीन लोकभाषा हिन्दी का विकास हुआ था और इसी क्षेत्र में उस साहित्य की सृष्टि हुई थी जिसमें असीम लोककल्याण तथा अदम्य आत्मसम्मान की वाणी मुखरित हुई थी।

हिन्दी साहित्य के इतिहास में सुनिश्चित तिथि की प्रथम ज्ञात रचना सधारु अग्रवाल का प्रद्युम्नचरित महत्वपूर्ण है। इसकी रचना विक्रम सं० १४११ अथवा १५११ वि० (सन् १३५४ या १४५४ ई०) में वेत्रवती के तट पर स्थित एरछ नगर में हुई थी। जहां वेत्रवती है वहाँ बुन्देली है। हिन्दी का यह प्रथम खण्ड काव्य बुन्देली धरती पर अवतरित हुआ था।

वि० सं० १४९२ (सन् १४३५ ई०) में हिन्दी के प्रथम महाकवि विष्णुदास ने गोपाचल पर अपना पहला महाकाव्य लिखा था। गोपाचल (ग्वालियर) चर्मण्वती और वेत्रवती की धाराओं के मध्य में स्थित है।

विष्णुदास अर्थात् विष्णु कवि द्वारा निस्सृत यह साहित्य गंगा एक शताब्दी तक ग्वालियर को रसमग्न किये रही और उस परम्परा में, ईसवी पन्द्रहवीं शताब्दी में 'छिताई चरित', 'मैनासत', 'मधुमालती', जैसे उच्चकोटि के प्रबन्ध-काव्य और बैजू, बख्शू, महमूद लोहंग, महाराज मानसिंह तोमर, तानसेन जैसे महान पद रचनाकारों के विष्णु पद ध्रुपद, होरी, धमार के शब्दों और स्वरों ने समस्त भारत के सांस्कृतिक जीवन को आच्छादित कर दिया। वह वाणी सूफियों की सभाओं में, सुल्तानों की सभाओं में, वैष्णवों के मन्दिरों में और पातुरों के नृत्यों में समान रूप से समादृत हुई।

सोलहवीं शताब्दी में इस समस्त काव्य वैभव का केन्द्र वेत्रवती के किनारे स्थित ओरछा में चला गया। महाकवि केशवदास ने अपने काव्य से हिन्दी भाषा और साहित्य में अभूतपूर्व शास्त्रीयता और गरिमा प्रतिष्ठित कर दी।

इस क्षत्र के भारत की भारती के सेवक सर्वत्र श्रद्धा और आदर की दृष्टि से देखे जाते रहे। शाहजहाँ के समय में महाकवि सुन्दरदास ने अपनी जन्मभूमि और लीलाभूमि ग्वालियर का अत्यन्त श्रद्धापूर्ण और ममत्वपूर्ण शब्दों में वर्णन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया है। इस महाकवि का 'सुन्दर शृङ्गार' नामक ग्रंथ ईसवी सत्रहवी शताब्दी में सुदूर काठियावाड़ में भी काव्यशास्त्र के विद्यार्थियों को पाठ्यपुस्तक के रूप में पढ़ाया जाता था।

ग्वालियर और ओरछा में पले महाकवि बिहारीलाल ने अपने दोहों के माध्यम से जो रस धारा बहाई थी वह तब तक अविस्मरणीय रहेगी जब तक संसार के किसी भी कोने में हिन्दी भाषा समझने वाले समाज का अस्तित्व रहेगा।

तुलसी की जन्मभूमि बुन्देलखण्ड है। संसार में जब तक साहित्य, नीति और सदाचार का सम्मान रहेगा तब तक वेत्रवती का यह वरद पुत्र अमर रहेगा।

यह एक सुखद सयोग है कि वेत्रवती के एक सुपुत्र ने वड़ौनी में जन्म लिया, भारत माता की बेड़ियों को तोड़ फेकने के पावन लक्ष्य से प्रेरित हो कर अपने प्राणों को उत्सर्ग करने के लिये अग्रसर हुआ और कालेपानी की यातनाएं सह कर जीवित बच सका। अपने जीवन के तोसरे पहर में वह परम तेजस्वी डा० भगवानदास माहोर अब वेत्रवती की पावन रज में उत्पन्न हुए कवियों की वाणी को उनके समग्र तेजस्वी रूप में हिन्दी संसार के समक्ष प्रस्तुत करने की ओर प्रवृत हुआ है। उसके द्वारा कुछ समय पूर्व ही वेत्रवती के किनारे बसे हुए सिरोंज नगर निवासी रामदास नीमा का 'उषा अनिरुद्ध की कथा' सम्पादित कर प्रस्तुत की की गई थी। अब पहूज के अंचल में बसे भांडेर और वेत्रवती के लाड़ले ओरछा में रहने वाले कृष्ण कवि रचित 'धर्मसंवाद' और 'विदुरप्रजागर' प्रस्तुत किये जा रहे हैं। कृष्ण कवि का महत्व हिन्दी में अत्याधिक है। उसने बिहारीलाल की सतसई की पद्यबद्ध टीका भी लिखी है जिसमें बिहारी की भाषा की उत्पत्ति और विकास पर भी प्रकाश डाला है :

देश भेद तें होंत है भाषा विविध प्रकार।
बरनत हैं तिन सवन में ग्वारियरी रससार॥
ब्रज भाषा भाषत सकल सुखानी समतूल।
नाहि बखानत सकल कवि जान महा रसभूल॥
ब्रज भाषा वरनी कविनु बहु विधि बुद्धि विशाल।
सबको भूषन सतसई करी बिहारीलाल॥

रससार के रूप में जिस भाषा का ग्वालियर में ग्वालियरी के रूप में विकास हुआ था, वही ब्रज भाषा के मादन रूप बिहारी की बीणा से फूट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निकली थी। जो इतिहास बिहारी का है वही उसकी भाषा का है। उकना जन्म ग्वालियर में हुआ, शैशव ओरछा में बीता और यौवन ससुराल मथुरा में।

हिन्दी के मध्यकालीन कवियों के ग्रंथ संपादित होकर बहुत बड़ी संख्या में प्रकाशित हो रहे हैं, परन्तु ऐसा लगता है कि जैसे मुर्दों के ढेर के ऊपर एक और मुर्दा पटक दिया गया। किसी भी कवि की प्रेरक शक्ति को उभार कर प्रस्तुत न कर केवल उसके रस-अलंकारादि के विवेचन से युक्त प्रस्तावनाओं से एक रचना या एक कवि हिन्दी साहित्य के भंडार में भर अवश्य दिया जाता है तथापि वह कवि, यदि वह जीवित हो जाए, तो अपने इस रूप को देखकर चार आंसू ही बहाएगा। हीरे को निखार कर यदि उसकी पूर्ण आभा के साथ प्रस्तुत न किया किया जाए तब उससे साधारण पत्थर कुछ कम नहीं है।

डा० भगवानदास माहौर ने अपनी संक्षिप्त तथापि सारगर्भित प्रस्तावनाओं में अपने विवेच्य कवियों की प्रेरक भावनाओं का विश्लेषण कर उन्हें इस रूप में प्रस्तुत किया है कि वेत्रवती और चर्मण्वती की तेजस्वी परम्परा सजीव होकर सामने उपस्थित हो गई है। प्रत्येक जीवन्त कवि का अपना सन्देश होता है, उसे कोई जीवन्त आत्मा ही सुन सकती है, और समर्थ रूप में प्रस्तुत कर सकती है।

डा० माहौर ने अपनी पैनी दृष्टि से कृष्ण कवि के 'धर्मसंवाद' के वास्तविक स्वरूप को परखा है और तत्कालीन इतिहास के परिप्रेक्ष्य में समझा है। कृष्ण कवि का उन्नायक सन्देश आज भी उतना ही कल्याणकारी है जितना कभी दो ढाई सौ वर्ष पूर्व था।

वेत्रवती का वरदपुत्र डा० भगवानदास माहौर चिरायु हो और इसी प्रकार भारत और भारती की सार्थक सेवा करता रहे, यह मेरी मंगल कामना है।

मुरार
कृष्णजन्माष्टमी वि० सं० २०३० हरिहर निवास द्विवेदी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समीक्षात्मक भूमिका

कवि परिचय

कृष्ण कवि का उल्लेख हिन्दी साहित्य के सम्मानित इतिहास-ग्रंथों में हुआ अवश्य है, परन्तु उनके संबंध में निश्चित और विस्तृत जानकारी उनमें नहीं मिलती।

'शिवसिंह सरोज' में कृष्ण कवि नाम के तीन कवियों का उल्लेख है। प्रथम कृष्ण कवि का उल्लेख इस प्रकार है :

"७९।९३।१७ कृष्ण कवि १७४०

ये कवि औरंगजेब बादशाह के इहां थे।"[१]

इस पर 'शिवसिंह सरोज' के संपादक डा० किशोरीलाल गुप्त की टिप्पणी इस प्रकार है :

"टि० रत्नाकर जी का अनुमान है कि यह कृष्ण कवि बिहारी के वह पुत्र हैं जिसने संवत् १७१९ में सतसई की टीका लिखी।"[२]

दूसरे कृष्ण कवि का उल्लेख इस प्रकार है :

"८१।६६।१९ कृष्ण कवि २, जयपुर वाले, १६७५

बिहारीलाल कवि के शिष्य और महाराजे जयसिंह के इहां नौकर थे। बिहारी सतसई का तिलक कवितों में विस्तारपूर्वक वार्तिक सहित बनाया है।"[३]

इस पर संपादक की टिप्पणी है :

१— शिवसिंह सरोज (हिन्दी साहित्य के इतिहास का आदि ग्रंथ प्रामाणिक एवं सटिप्पण संस्करण) संपादक डा० किशोरीलाल गुप्त, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग सन् १९७०, पृ० ६६२

२— इस संबंध में डा० किशोरीलाल गुप्त का यह कथन भी ध्यान में रखा जाना चाहिए कि "सरोज के संवतों में से अनेक ईसवी सन् हैं" और "सरोज में दिए गए कई कवि एक ही हैं और एक कवि कई हैं।" पृष्ठ २

३— वही पृ० ६६२।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"टि० सरोज में दिया संबत् १६७५ अशुद्ध है।[3] कृष्ण कवि ने सतसई की कवित्तबंध टीका सं० १७८२ में पूर्ण की थी। कृष्ण कवि इन सवाई जयसिंह के नहीं, इनके मंत्री राजा आयामल्ल के आश्रित थे और उन्हीं के कहने से उक्त टीका इन्होंने लिखी थी।"[४]

तीसरे कृष्ण कवि का उल्लेख इस प्रकार है :

"८२।६५।२० कृष्ण कबि ३, १८८८

"नीति संबंधी फुटकर काव्य की है।"[५]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में 'बिहारी सतसई' के टीकाकार के ही रूप में कृष्ण कवि का उल्लेख किया है। वहां इन्हें 'माथुर चौबे' और बिहारी के पुत्र प्रसिद्ध" कहा गया है और महाराज जयसिंह के मंत्री, राजा आयामल्ल का आश्रित बताया गया है जिनकी आज्ञा से इन्होंने बिहारी सतसई की टीका लिखी। टीका के संबंध में लिखा हे : "संवत् १७८५ और १७९० के बीच में बनी होगी।"[६]

उपर्युक्त इतिहास ग्रंथों में कृष्ण कवि के 'विदुरप्रजागर' का उल्लेख नहीं हुआ। नागरी प्रचारिणी सभा काशी द्वारा प्रकाशित 'हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास' (सप्तम भाग) में बिहारी सतसई के टीकाकार के रूप में तो उनका उल्लेख हुआ ही है,[७] उक्त टीका का रचनाकाल उसमें सं० १७८२ दिया गया है।[८] साथ ही 'विदुरनीति' की टीका लिखने वाले के रूप में भी उनका उल्लेख इस प्रकार किया गया है :

"बिहारी के पुत्र रूप में प्रसिद्ध कृष्ण कवि ने राजा आयामल्ल के आदेश से विदुरनीति की टीका सं० १७९२ में दोहा, सोरठा, पद्धरि, कवित्त, रोला

४—वही ६६२। राजा आयामल्ल जयसिंह का मंत्री था जिससे कभी कभी राजदूत का काम भी लिया जाता था। (Malwa in Transition, Dr. Raghubir Singh (1936) P. 240–261.)

राजा सवाई जयसिंह विष्णुसिंह के पुत्र और मिर्जा राजा जयसिंह के प्रपौत्र थे। यह सन् १६९९ ई० में गद्दी पर बैठे थे (मआसिर उल उमरा भाग १–पृ० १६४)

(डा० भगवानदास गुप्त अध्यक्ष इतिहास विभाग बुन्देलखण्ड कालिज झांसी से प्राप्त सूचना)

५—शिव. सरोज पृ० ६६२। ६—हि०सा०इ० : शुक्ल छठा संस्करण मं० २००७वि०पृ० २७४।
७—हि० सा० बृ० इ० पृ० ६१। ८—वही पृ० ६७।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"आदि छंदों में की थी। टीका सुन्दर है परन्तु पद्यश: प्रस्तुत नहीं की गई, जिसमें मूल की कई बातें छूट गई।"[९]

इसमें ग्रंथ का नाम 'विदुरप्रजागर' नहीं 'विदुरनीति' दिया गया है। 'विदुरप्रजागर' के लेखक के रूप में कृष्ण कवि का उल्लेख झांसी के पं० गौरीशंकर द्विवेदी 'शंकर' ने अपने ग्रंथ 'सुकविसरोज' (सं० १९९० में प्रकाशित) में किया है :

"पं० कृष्ण कवि सनाढ्य, ओरछा का जन्म और कविता काल अनुमानतः क्रम से सं० १७४० और १७७५ वि० है। आप ओरछा के नरेश महाराजा उदोतसिंह के आश्रित दरबारी कवि थे। आपकी १–धर्मसंवाद, और २–विदुरप्रजागर का अनुवाद दो पुस्तकें अब तक देखी गई।"[१०]

नागरी प्रचारिणी सभा काशी द्वारा प्रकाशित 'हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण (सन् १९००, १९५५) प्रथम भाग में इन्हें "सनाढ्य ब्राह्मण। भांडेर (ओरछा) निवासी। आयामल्ल के आश्रित। संभवत: सतसईकार बिहारी के शिष्य। सं० १७७५ के लगभग वर्तमान" कहा गया है और इन्हें १–धर्मसंवाद (पद्य), २–बिहारी सतसई सटीक (पद्य) और ३–विदुरप्रजागर (पद्य) का कर्ता माना गया है।[११] डा० बलभद्र तिवारी (सागर विश्वविद्यालय) ने अपने ग्रंथ 'बुन्देली काव्य परम्परा' में इनका इस प्रकार उल्लेख किया है : "...कृष्ण कवि सं० १७५० (धर्मसंवाद, विदुरप्रजागर)"[१२]। इससे यह स्पष्ट नहीं होता कि सं० १७५० कवि का जन्मकाल है अथवा १७५० के आसपास होने का सूचक है। इतना स्पष्ट है कि कवि का जन्मकाल सं० १७५० के बाद का नहीं हो सकता।

'धर्मसंवाद' में कवि ने अपना परिचय देते हुए लिखा है :

कवि वासी भांडेरि के रतनगंज सो ठाँउ।
निकट चत्रभुज वैतबै नगर ओड़छौ गांउ॥[१३]

९–वही पृ० ४९६, डा० रामस्वरूप गुप्त : नीतिकाव्य। डा० भगवानदास गुप्त से प्राप्त सूचना : उदोतसिंह संबत् १७४६ वि० में गद्दी पर बैठा। (गोरेलाल तिवारी कृत बुन्देलखण्ड का इतिहास पृ० २१२ काशी नागरी प्र. स. १९९० और ओरछा गजेटियर पृ० ३३ के अनुसार उदोतसिंह का शासन काल सन् १६८९ से १७३६ तक रहा।)
१०–सुकविसरोज : पं० गौरीशंकर द्विवेदी 'शंकर' सं० १९९० वि० पृ० ११५।
११–उक्त ग्रंथ पृ० १०३। १२–उक्त ग्रंथ प्रथम खंड प्राचीन काव्य पृ० १५२।
१३–धर्मसंबाद, प्रथम विलास, छंदांक ७।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और रचनाकाल के संबंध में है कि,

संवत सत्रह सै पचहतरि समय कीलक नाम।
सावन सुदि परिमा तिथी सुरगुर पहिलो जाम ॥
ताही दिन या ग्रंथ को कीन्हो करन विचार।[१४]

इसमें ग्रंथ-समाप्ति की तिथि नहीं दी गई है और न इसमें कहीं किसी ऐसे राजा का उल्लेख हुआ है जिसकी 'आज्ञा' से या जिसके आश्रय में कवि ने इस ग्रंथ की रचना की हो। विद्वदवर गौरीशंकर द्विवेदी जी ने किस आधार पर इन्हें ओरछा-नरेश का आश्रित दरबारी कवि कहा है इसका उल्लेख उन्होंने अपने 'सुकविसरोज' में नहीं किया।[१५] हां, ग्रंथ रचना के आरंभकाल सं० १७७५ वि० में ओरछे के राजसिंहासन पर राजा उदोतसिंह ही थे, इसकी सूचना डा० भगवानदास गुप्त (अध्यक्ष इतिहास विभाग, बुन्देलखण्ड कालिज, झांसी) ने हमें दी है। हो सकता है इसी आधार पर द्विवेदी जी ने उन्हें उदोतसिंह का आश्रित कवि मान लिया हो।

'विदुरप्रजागर' में कवि ने स्पष्ट ही अपने आश्रमदाता का नाम राजा आरजमल्ल लिखा है :

राजा आरजमल्ल की अग्या अत हित मान।
विदुरप्रजागर कृस्न कवि भाषा करी बखान ॥[१६]

उपर्युक्त उद्धरण जिस हस्तलिखित प्रति से दिया गया है वह हमें द्विवेदी जी ने ही दी थी। अतः यह अनुमान होता है कि उन्हें यह प्रति 'सुकविसरोज' के प्रकाशन के बाद ही मिली होगी।

इस दोहे के राजा 'आरजमल्ल' उपर्युक्त अनेक ग्रंथों में उल्लिखित राजा 'आयामल' एक ही व्यक्ति हैं, यह तो स्पष्ट ही है। 'आयामल' और 'आरजमल्ल' दोनों संस्कृत 'आर्यमल्ल' के 'भाषा' रूप स्पष्ट ही दिखते हैं। हां, यदि किसी छोटे बड़े राजा 'आरजमल्ल' के बुन्देलखण्ड की किसी रियासत में इसी समय होने की सूचना मिले तो इस पर पुनर्विचार करना होगा।

'विदुरप्रजागर' का रचनाकाल उसमें स्पष्ट सं० १७९२वि० दिया हुआ है :

१४—वही छंदांक ५,६।

१५—आज द्विवेदी जी को याद नहीं है कि किस आधार पर उन्होंने कृष्ण कवि को महाराज उदोतसिंह का आश्रित उक्त ग्रंथ में लिखा है। उनका कहना है कि इसका आधार उन्हें टीकमगढ़ राज के कुछ पुराने दस्तावेजों में कहीं अवश्य मिला होगा।

१६—विदुरप्रजागर, नवां अध्याय छंदांक ४१।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सत्रह सै अरु बानबै संवत कार्तिक मास।
सुकल पच्छ पांचें गुरौ कीनौ ग्रंथ प्रकाश ॥[१७]

इन उल्लेखों से यह तो स्पष्ट है कि 'बिहारी सतसई की टीका' और 'विदुरप्रजागर' के रचयिता कृष्ण कवि सं० १७८२ और १७९२ में राजा आर्यमल्ल के आश्रित थे। यदि सं० १७७५ में रचित 'धर्मसंवाद' राजा आर्यमल्ल या अन्य किसी राजा के आश्रय में लिखा गया होता तो कवि के लिये उसमें ऐसा उल्लेख करना स्वाभाविक होता। ऐसा न होने के कारण इस संबंध में निश्चय से नहीं जा सकता। हां, यह शंका ही जा सकती है कि कहीं 'धर्मसंवाद' का रचयिता कृष्ण कवि 'सतसई की टीका' और 'विदुरप्रजाकर' के रचयिता अलग अलग दो व्यक्ति तो नहीं है। श्री उदयशंकर शास्त्री, हिन्दी विद्यापीठ, आगरा विश्वविद्यालय आगरा ने बताया है कि बिहारी सतसई के टीकाकार कृष्ण कवि ने अपने उक्त ग्रंथ की अन्त की पुष्पिका में अपने आपको 'ककोर कुल' का माथुर चौबे बताया है अतः यह 'धर्मसंवादकार' से भिन्न व्यक्ति है। स्वयं बिहारी के माथुर चौबे होने के सम्बन्ध में भी कुछ विवाद है ही, ऐसा ही कुछ कृष्ण कवि के संबंध में भी हो ही सकता है। कुछ भी हो, धर्मसंवाद कार के रूप में बुन्देलखण्ड के कृष्ण कवि के संबंध में कोई विवाद नहीं है, और 'मध्यमकोटि' के कवि और काव्य के रूप में उनका और उनकी कृति का अपना विशिष्ट महत्व है जिसे ही हमें जनता की आशाओं और आकांक्षाओं के सन्दर्भ में परखना है।

बुन्देली सनाढ्य ब्राह्मणों (बिहारी और कृष्ण कवियों) का किसी प्रकार के दत्तक आदि विधानों द्वारा 'माथुर चौबे' हो जाने की संभावना पर भी विचार किया जाना चाहिए।

इसकी संभावना कम ही हो सकती है कि ये कृष्ण कवि ही बाद में राजा 'आरजमल्ल' के आश्रय में पहुंचे हों। कवि के रूप में राजाश्रय प्राप्त करने के पूर्व की उनकी कुछ रचनाएं होनी ही चाहिये जिनके आधार पर ही उन्हें राजाश्रय प्राप्त हुआ होगा।

कवि ने अपने आपको 'भांडेरि के वासी' और फिर 'निकट चत्रभुज बैतबै नगर औड़छौ गांउ' कह कर अपना परिचय दिया है, इससे कुछ ऐसा लगता ही है कि यह परिचय कहीं औड़छे से दूरदराज के लोगों को दिया जा रहा है। यह भी हो सकता है कि 'धर्मसंवाद' की रचना ओरछे में ही भांडेर वासी कृष्ण

१७—वही छंदांक ४३।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कवि ने की हो और उन्हें जैसा कि विद्वदवर गोरीशंकर द्विवेदी जी ने लिखा है ओरछेश का राजाश्रय मिला हो, तया कवि ने इस कृति में इसका उल्लेख भी किया हो और बाद में किसी कारण से वह इस कृति की प्रति से निकाल लिया गया हो अथवा प्रतिलिपिकारों के प्रमाद से छूट गया हो।

द्विवेदी जी ने अनुमान किया है कि कृष्ण कवि का जन्म संवत् १७४० वि० है शुक्ल जी ने कविवर विहारी के संबंध में लिखा है कि "अनुमानतः ये संवत् १७२० तक वर्तमान रहे।"[१८] डा० भगीरथ मिश्र ने भी बिहारी के देहावसान के संबंध में लिखा है कि : "...कहा जाता है कि उनका देहवासन सन् १६६३ (सं० १७२० वि०) में हुआ।"[१९] यदि यह अनुमान ठीक हो और कृष्ण कवि का जन्म संवत् १७४० में हुआ हो, तो न तो ये 'बिहारी के पुत्र प्रसिद्ध' हो सकते हैं और न 'शिष्य'। यदि कृष्ण कवि बिहारी के किसी प्रकार के दत्तक, पोष्य आदि रीति के पुत्र या शिष्य ही रहे हों तो उनका जन्म अधिक से अधिक सं० १७००के आस पास ही कभी हुआ होना चाहिए। यदि ऐसा हो तो 'धर्मसंवाद' की रचना के समय कवि की आयु ७५ वर्ष और 'विदुरप्रजागर' की रचना के समय ९२ वर्ष आती है। ऐसा होना तर्कसंगत नही लगता। अधिक सही अनुमान यही लगता है कि कवि का जन्म सं० १७४० के आसपास ही हुआ होगा और 'धर्मसंवाद' की रचना उन्होंने ३५ वर्ष की आयु में, 'सतसई की टीका' की रचना ४२ वर्ष की आयु में और 'विदुरप्रजागर' की रचना ५२ वर्ष की आयु में की होगी। यदि डा० बलभद्र तिवारी के ऊपर दिये गए उल्लेख का आशय यह हो कि कृष्ण कवि का जन्म १७५० में हुआ था, और यही ठीक हो, तो 'धर्मसंवाद' और 'विदुरप्रजागर' क्रमशः कवि की २५ और ४२ वर्ष की आयु की रचनाएं ठहरती हैं और 'बिहारी सतसई' की टीका ३२ वर्ष की आयु की। ऐसा होना वर्ण्य विषय के अनुरूप है।

कृष्ण कवि के संबंध में आचार्य शुक्ल जी ने भी यह लिखा है कि ये 'माथुर चौबे थे और बिहारी के पुत्र प्रसिद्ध है'[२०] 'धर्मसंवाद' के रचयिता ने अपने आपको सनाढ्य रावत कहा है :

सन्नावड साबरन कुल रावत कुलहि बखान।
सेवक सब ही दुजन के कविता ब्रस्न निदान॥

पाठान्तर में भी 'सनबडिया वरन कुलि रावत करे बखान।'[२१] ही है। शुक्ल जी ने कृष्ण कवि के 'धर्मसंवाद' ग्रंथ का उल्लेख अपने इतिहास में किया ही नहीं है।

१८—हि० सा० इ० शुक्ल पृ० २४६। १९—रीतिकाव्य, नवनीत भूमिका पृ० ६०।
२०—हि० सा०इ० : शुक्ल पृ० २७४। २१—धर्मसंबाव, प्रथम विलास, छंदांक ८।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पं० गौरीशंकर द्विवेदी जी ने अपने सन् १९१७ में प्रकाशित 'सुकविसरोज' में प्रतिपादित किया है कि कविवर बिहारी सनाढ्य मिश्र थे और आचार्य केशव के ज्येष्ठ पुत्र थे। उन्होंने आचार्य केशवदास के वंशजों से प्राप्त वंशवृक्ष भी इस पुस्तक में दिया है। इसमें केशवदास जी के ज्येष्ठ पुत्र 'बिहारीदास' दिखाए गये हैं। बिहारी के संबंध में उक्त ग्रंथ में कहा गया है कि "बिहारीदास पर उनके नाना का जो ग्वालियर के आस पास किसी गांव के रहने वाले थे, बाल्यकाल ही से अधिक प्रेम था और आप अधिकतर अपने नाना के यहां ही रहा करते थे। केशव की मृत्यु के पश्चात् आप अपनी शिक्षा आदि के संबंध में कुछ अधिक दिनों तक वहीं रहे। वहां से लौट कर ओड़छा आने पर राज्य दरबार में आपका यथेष्ट मान नहीं हुआ। ...ओड़छा छोड़ने के पश्चात् आप प्रथम अपने नाना के यहां फिर अपनी ससुराल (ब्रज में) होकर महाराज जयसिंह के दरबार में चले गए थे।"[२२]

उपर्युक्त वंशवृक्ष में बिहारीदास मिश्र की वंशपरंपरा दी गई है, परन्तु उसमें बिहारीदास के पुत्र का नाम 'कृष्ण' नहीं, 'मोहनदास' है। क्यों कि कृष्ण कवि ने अपने आपको 'सनाढ्य रावत' बताया है अतः 'धर्मसंवाद' के रचयिता कृष्ण कवि तो बिहारी के पुत्र हो नहीं सकते। गौरीशंकर द्विवेदी जी ने कृष्ण कवि को बिहारी का पुत्र या शिष्य बताया भी नहीं है।

किसी कृष्ण कवि के विहारी के पुत्र होने के संबंध में डा० भगीरथ मिश्र का यह कथन भी यहां उल्लेखनीय है: "बिहारी के कोई संतति नहीं थी। कहते हैं कि निरंजन कृष्ण को इन्होंने गोद लिया था। एक कृष्ण कवि बिहारी सतसई के टीकाकार थे। हो सकता है कि ये कृष्ण कवि निरंजन कृष्ण ही हों।"[२३]

निरंजन कृष्ण का कोई उल्लेख नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित हस्तलिखित ग्रंथों की खोज की रिपोर्टों में नहीं मिलता। जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है 'शिवसिंह सरोज' में औरंगजेब के आश्रित और उसके प्रशंसक एक 'कृष्ण कवि' की उपस्थिति सं० १७४० वि० में बताई गई है। इसके संबंध में डा० किशोरीलाल गुप्त का कथन है कि रत्नाकर जी का अनुमान है कि यह कृष्ण कवि बिहारी के पुत्र हैं जिन्होंने संवत् १७१९ में सतसई की टीका लिखी थी। इस प्रकार सतसई के टीकाकार कृष्ण कवि दो हो जाते हैं। एक यह और

२२—सुकविसरोज पृ० ५५,५६,५७।
२३—'रीतिकाव्य नवनीत' भूमिका भाग पृ० ६०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरे सरोज में ही उल्लिखित 'जयपुर वाले' जिन्होंने डा० किशोरीलाल गुप्त की टिप्पणी के अनुसार "सतसई की टीका कवित्तबंध सं० १७८२ में पूर्ण की थी।"[२४]

अस्तु, जैसे अन्य अनेक प्रख्यात कवियों के संबंध में विभिन्न अनुमान हैं, और विवाद है, वैसा ही कृष्ण कवि के संबंध में भी हैं। जो बातें निश्चित हैं वे ये हैं :

१—धर्मसंवादकार कृष्ण कवि भांडेर और ओरछा के निवासी बुन्देलखंडी थे। धर्मसंवाद की रचना उन्होंने सं० १७७५ वि० में की थी। संभवतः ओरछा में ही इसकी रचना हुई होगी।

२—बिहारी सतसई की पद्यात्मक टीका सं० १७८२ वि० में लिखने वाले और सं० १७९२ वि० में 'विदुरप्रजागर' की रचना करने वाले कृष्ण कवि एक ही व्यक्ति हैं जो राजा आयामल या आरजमल्ल के आश्रित थे।

३—धर्मसंबादकार कृष्ण कवि और विदुरप्रजागर और सतसई की टीका लिखने वाले कृष्ण कवि की एकता सिद्ध करने के लिए कोई अभिलेखात्मक आधार नहीं हैं, फिर भी नाम की एकता, धर्मसंवाद और विदुरप्रजागर दोनों ग्रंथों का संस्कृत से अनूदित होना आदि, भाषा का एक जैसा ही होना (कृष्ण कवि के ग्रंथों की भाषा पर हम एक अलग परिच्छेद में विचार करेंगे) आदि बातें, ऐसी हैं जो उनकी अभिन्नता की ओर इंगित करती है।

यदि बुन्देलखण्ड में ही इस काल में किसी अन्य 'राजा आरजमल्ल' की उपस्थिति का पता चले तो सारी स्थिति पर पुनर्विचार करना ही होगा। नाम के अन्त में 'मल्ल' रखने वाले कुछ राजे बुन्देलखण्ड में भी हुए अवश्य हैं। यहां तो साधारण से जागीरदार को भी 'सम्मान' से राजा ही कहा जाता है।

इस प्रकार इन कृष्ण कवि (या कवियों) का रचनाकाल सं० १७७५ से १७९२ वि० तक तो निश्चित रूप में रहा। इसी काल के राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में हमें उनकी अनतिप्रसिद्ध कृतियों 'धर्मसंवाद' और 'विदुरप्रजागर' के अनुशीलन का प्रयास करना है। कृष्ण कवि की प्रसिद्ध कृति 'सतसई की टीका' का विवेचन रीतिकाव्य के साहित्यशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य में बहुत कुछ हो ही चुका है।

२४—शिवसिंह सरोज पृ० ६६२।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रचनाओं का सामान्य परिचय

१–धर्मसंवाद

कृष्ण कवि की अब तक ज्ञात हो सकीं कृतियों में कालक्रम से सबसे पहली 'धर्मसंवाद' (सं० १७७५ वि० में प्रणीत) है। इसके अन्य नाम 'धर्मसंपद' या 'धर्मसमाधि' भी अनेक प्रतियों में मिलते हैं। यह संस्कृत से अनूदित ग्रंथ है। मूल संस्कृत ग्रंथ का अनुसंधान अभी तक नहीं हो पाया। महाभारत में यह नहीं मिला।

ग्रंथ के आरम्भ में ही कवि ने कहा है :

तब जु हती यह संसकृत, अर्थ सक्ति नहिं होइ।
अब भाषा कवि किस्न कहि, वांचतु है सब कोइ॥

एक प्रति में 'सक्ति' के स्थान पर पाठान्तर 'सकै' है। इस छोटे से ग्रंथ में विलास या प्रकास नाम से चार अध्याय है। प्रथम अध्याय में राजा जनमेजय के अनुरोध पर वैशम्पायन जी उन्हें युधिष्ठिर और धर्मराज के संवाद की कथा सुनाते हैं :

इन्द्र सभा में नारद जी से युधिष्ठिर की प्रशंसा सुनकर प्रसन्नतापूर्वक धर्मराज चांडाल का रूप बनाकर युधिष्ठिर को देखने आये। हस्तिनापुर में उन्होंने सर्वत्र सुखसंपन्नता देखी और सब कुछ वेदविहित रूप में होता देखा। राजा के यहां पहुंचने पर द्वार पर उनकी भेंट भीमसेन से हुई। पूछे जाने पर चांडाल रूप धर्मराज ने कहा कि दानी युधिष्ठिर की कीर्ति सुनकर वह कुछ मांगने आया है। भीम के यह कहने पर कि दान के पात्र ब्राह्मण होते हैं और राजा चांडाल का मुँह भी नहीं देखते, वह कहता है कि राजा का ब्राह्मण और चांडाल में भेद करना ठीक नहीं है, और चांडाल बुरे कर्म करने वाले को कहते हैं। चांडाल देह से नहीं कर्म से होता है। अपनी बातचीत से चाँडाल भीमसेन को बहुत प्रभावित करता है और भीम कहते हैं कि वह उनसे ही अपना अभीष्ट दान लेकर अपना काम चलाए। परन्तु चांडाल धर्मराज से ही बात करने का आग्रह करता है तो भीम उसके आगमन की सूचना युधिष्ठिर को देने को तैयार हो जाते हैं।

दूसरे अध्याय में भीमसेन के निवेदन पर युधिष्ठिर पहले तो चांडाल का मुँह देखने को तैयार नहीं होते, परन्तु भीम के आग्रह पर वह बीच में एक पर्दा डालकर, उससे बातचीत करने को राजी हो जाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीसरे अध्याय में पर्दा बीच में रखकर युधिष्ठिर और चांडाल की बातचीत होती है। इस बातचीत में चांडाल युधिष्ठिर से कहता है कि राजा निर्बल का बल, जो बोल न सके उसकी वाणी, मातृपितृ और बंधुबांधवों से हीन का माता पिता और भाई-बंधु होता है। वह गौओं और ब्राह्मणों की रक्षा और उनका पालन करता हैं (अर्थात् हिन्दू धर्म का संरक्षण करता है) तथा क्षुधार्त को भोजनदान देता है, आदि आदि। धार्मिक कृत्यों, स्नान, पिंडदान, आदि पूर्व जन्म के कृत्यों का फल आदि के विषय में चांडाल युधिष्ठिर के प्रश्नों का उत्तर हिन्दू धर्म की मान्यताओं के अनुरूप ही देता है। अन्त में शरीर में ही ब्रह्म के निवास संबंधी बातचीत होती है। चांडाल के ज्ञान से प्रभावित होकर युधिष्ठिर बीच का पर्दा हटा देते हैं।

चौथे अध्याय में युधिष्ठिर चांडाल की मन से पूजा करते हैं और उससे प्रार्थना करते हैं कि वह उनके ही पास रहें, इच्छा भोजन करें, और उन्हें सदैव दर्शन देते रहें। परन्तु चांडाल कहता है कि वह राजाओं का अन्न ग्रहण नहीं करता। इस पर युधिष्ठिर विनयपूर्वक प्रार्थना करते हैं कि वह उनसे कुछ दान ही ग्रहण कर लें। चांडाल कहता है कि वह राजाओं का दान भी ग्रहण नहीं करता। राजा कहता है कि उसके यहा प्रतिदिन अठासी हजार ऋषि भोजनदान ग्रहण करते हैं। आपके ऐसा न करने का क्या कारण है ? चांडाल उत्तर देता है कि ये ब्राह्मण लोभ के वशीभूत होकर आपका अन्न और दानग्रहण करते हैं, राजा को छूने में भी दोष लगता है। राजा का दर्शन ही करना चाहिये क्योंकि उसमें दसों दिक्पालों का अंश होता है, परन्तु जो महान दुष्ट लोग होते हैं उनका भी धन यहां आता है, अतः उसका अन्न और दान ग्रहणीय नहीं होता।

चांडाल की इस बात को सुन कर अठासी हजार ऋषि राजा का अन्न दान छोड़कर वहां से चले जाने को उद्यत होते हैं। इससे युधिष्ठिर को महान संताप हुआ। उन्होंने चांडाल से कहा : "तू बड़ा पापिष्ठ है, तेरे दर्शन का फल मुझे यह मिला कि मेरा यज्ञ विध्वस्त हो गया।" इस पर ऋषियों और चांडाल की बातचीत होती है। चांडाल कहता है कि राजा तो तीर्थ के समान हैं। ऋषि कहते हैं : "आपने पहले तो राजाओं का अन्न दान ग्रहण न करने की बात कही थी। अब क्या युधिष्ठिर के भय से आप उनका अन्न दान ग्रहण करने की बात कहने लगे हैं ?" चांडाल का उत्तर है : "राजा दो प्रकार के होते हैं, उत्तम तो गौ ब्राह्मण की पुकार सुनते ही उनके परित्राण के लिये तत्पर होता है, और उनके लिए शरीर का लोभ न करके विकट शत्रुओं से लोहा लेता है। वह प्रजा को सदैव आनन्द में रखता है। उसकी रुचि सुकीर्ति में ही होती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह वेदमत को मानता है, और वह धर्म का निधान होता है। परन्तु 'मद्धिम' या अधम राजा प्रजा को अत्यन्त दुखी रखता है, वह अनीति का व्यवहार करता है, न्याय नहीं करता, याचकों को दान नहीं देता, धर्म रक्षा के लिये निर्भीक हो कर युद्ध नहीं करता, वेद विधि को नहीं मानता। ऐसे राजाओं का दान लेना ही निसिद्ध है। युधिष्ठिर तो पहले के महान धर्मात्मा राजाओं के समान ही धर्मात्मा राजा है। उनका दान ग्रहणीय है।"

यह सुनकर सब ऋषि यथापूर्व अपने अपने काम में लग जाते। इससे युधिष्ठिर को बड़ा हर्ष होता है। उनकी प्रार्थना पर धर्मराज ने फिर अपना वास्तविक रूप प्रकट कर दिया और वह राजा को धर्मोपदेश करके स्वर्ग वापस चले गये।

बिहारी सतसई की टीका

कालक्रमत: कृष्ण कवि की दूसरी कृति सं० १७८२ में प्रणीत 'बिहारी सतसई की टीका' है जिसमें दोहों का भाव सवैयों में पल्लवित किया गया है और गद्य में भी कुछ व्याख्या प्रस्तुत की गई है। इसका परिचय हिन्दी साहित्य के प्राय: सभी इतिहासों में आ चुका है, अत: इसके संबंध में यहां कुछ विशेष लिखने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। अभी तक कवि रूप में कृष्ण कवि की कीर्ति का आधार उनका यही ग्रंथ रहा है। इसके संबंध में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है: "काव्यांग इन्होंने अच्छी तरह दिखाए हैं... इनकी भाषा सरल और चलती है तथा अनुप्रास आदि की ओर बहुत कम झुकी है। दोहों पर जो सवैये इन्होंने लगाए हैं उनसे इनकी सहृदयता, रचनाकौशल और भाषा पर अधिकार अच्छी तरह प्रमाणित होता है।"[२५]

विदुरप्रजागर

तृतीय कृति 'विदुरप्रजागर' सं० १७९२ वि० की है। धर्मसंवाद की भांति यह भी संस्कृत से अनूदित है। यह नौ अध्यायों में विभक्त है। प्रथम अध्याय में महाभारत के 'उद्योग पर्व' के अन्तर्गत 'प्रजागर पर्व' तक की मुख्य कथा संक्षेप में कही गई है। द्वितीय अध्याय से नवें अध्याय तक प्रजागर पर्व (उद्योग पर्व के अध्याय ३३ से ४० तक) ८ अध्यायो का भाषापद्यानुवाद किया गया है। यही सुप्रसिद्ध 'विदुरनीति' है। इसकी विषयवस्तु भली प्रकार जानी समझी है। अत: इसके संक्षिप्त सामान्य परिचय में यहां विशेष शब्द व्यय करने की आवश्यकता नही है। इसमें विदुर ने धृतराष्ट को समझाया है कि कौरव पांडव एक

२५—हि० सा० इ० शुक्ल छठा संस्करण पृ० २७४।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही 'ज्ञाति' के हैं, भाई भाई हैं उनमें वैर नहीं होना चाहिए क्योंकि उनमें वैर होने से दोनों की हानि होगी और शत्रुओं का लाभ होगा।

'धर्मसंवाद' और 'विदुरप्रजागर' की विषय वस्तु को सरसरी तौर पर देख कर अब हम कृष्ण कवि (या कवियों) के काल की राजनीतिक, सामाजिक, और सांस्कृतिक परिस्थितियों में और तत्कालीन जनता की आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति के परिप्रेक्ष्य में इन कृतियों की समीक्षा कर सकते हैं।

राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में समीक्षा

राजनीतिक परिस्थितियां

कृष्ण कवि (कवियों) के काव्यकाल सन् १७१८ (सं० १७७५ वि०) से सन् १७३५ ई० (सं० १७९२ वि०) में भारत की राजनीतिक स्थिति बड़ी ही डांबाडोल थी वह बहुत ही उलझी हुई भी थी। सन् १७०७ में औरंगजेब की मृत्यु हो चुकी थी। औरंगजेब के शासन काल में ही मुगल साम्राज्य पतनोन्मुख हो गया था और वह राजनीतिक प्रक्रिया आरंभ हो चुकी थी जिसका परिणाम अन्ततः यह हुआ था कि भारत में सबसे बड़ी राजशक्ति मराठों की हो गई थी। इतिहास कारों ने अपना यह मत व्यक्त किया है कि अंग्रेजों ने भारत में राजशक्ति वास्तव में मुगलों या मुसलमानों के शासन को निरस्त करके नहीं, वरन् मराठा या हिन्दू शासन को निरस्त करके हस्तगत की थी।

औरंगजेब के वाद ६ निर्बल सम्राट मुगल सिंहासन पर बैठे ऐसी स्थिति निश्चित रूप में हो गई थी कि यदि हिन्दू राजे मिल कर प्रयत्न करते तो 'पृथ्वीराज रासो' के कर्ता का यह स्वप्न कि दिल्ली के राजसिंहासन पर पुनः को हिन्दू सम्राट आसीन होगा, साकार हो सकता था।[२६] परन्तु सामन्ती राजाओं और राजकुलों की जड़ में लगे हुए जिन घुन के कारण ही भारत में विदेशी तुर्क-मुगल शासन जमा था, वह उनमें अभी भी था वलिक और अधिक फैल गया था। हिन्दु राजशक्तियां अब भी मिल कर एक नहीं हो सकीं और इस

२६—"परन्तु रासोकार का उद्देश्य दूसरा ही था। वह राजपूतों को आश्वासन देना चाहता था कि जिस प्रकार नियति का यह खेल है कि राय पिथौरा जैसा पराक्रमी भी दिल्ली का साम्राज्य खो बैठा, उसी प्रकार नियति का यह भी विधान है कि मेवाड़पति पुनः दिल्ली सम्राट बनेंगे और भारत में रजपूती फैल जायगी। भविष्यवाणी बड़ी आशाप्रद थी परन्तु कभी फलवती न हुई।"
दिल्ली के तोमर : हरिहरनिवास द्विवेदी, पृ० ११७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अवसर का लाभ नहीं उठा सकीं। हिन्दू राजे औरंगजेब की मृत्यु के बाद इस या उस मुगल राजकुमार के पक्ष में होकर आपस में ही लड़ते रहे। यह बात नहीं है कि उनमें यह समझ नहीं थी कि अवसर इस बात के अनुकूल है कि दिल्ली पर हिन्दू राज्य पुनः स्थापित हो सकता है, परन्तु इस समझ के होते हुए भी, और इस दिशा में कुछ सीमित सम्मिलित प्रयत्न के होते हुए भी ये प्रयास इसीलिये सफल न हो सके कि हिन्दू राजा लोग आपसी मनमुटावों और ईर्ष्या द्वेषों के अपने राष्ट्रघाती सामन्ती दुर्गुणों का संयमन नहीं कर सके।[२७]

२० फरवरी सन् १९०७ ई० को औरंगजेब की मृत्यु अहमदनगर में हो गई। खबर पाते ही उसके तीनों पुत्रों, मुअज्जम, आजम और कामबख्श ने अपने आपको अलग अलग सम्राट घोषित कर दिया और राजसिंहासन पर अधिकार करने में वे अपने अन्य दावेदार भाइयों के विनाश के लिए परस्पर युद्ध में जुट गये। अभी औरंगजेब की कब्र की मिट्टी सूखी भी न होगी कि २० जून को ही जाजमऊ में मुअज्जम और आजम में युद्ध हुआ जिसमें आजम मारा गया। इसके बाद हैदराबाद के निकट मुअज्जम और कामबख्श में युद्ध हुआ। मुअज्जम की जीत हुई और कामबख्श युद्ध में लगे घावों से बाद में मर गया। भाइयों के रक्त की नदी तैर कर औरंगजेब ने भी राजसिंहासन प्राप्त किया था। इस इतिहास की पुनरावृत्ति हुई, अपने भाइयों को मारकर मुअज्जम बहादुरशाह के नाम से सम्राट बना। इतिहास की पुनरावृत्ति इस बात में भी हुई कि इस अवसर का भी लाभ हिन्दू राजे न उठा सके, कोई इस मुगल दावेदार के, कोई उस मुगल दावेदार के पक्ष में रहकर आपस में लड़ते रहे।

राजपूत विद्रोह

राजपूताने में इस समय तीन मुख्य राज्य थे: मेवाड़ मारवाड़ और अजमेर। औरंगजेब ने मारवाड़ पर अधिकार कर लिया था, मगर औरंगजेब

२७—भारत में अंग्रेजों का प्रभुत्व स्थापित होने और उसके विरुद्ध सन् १८५७ में सिपाहियों का विद्रोह होने के संबंध में अंग्रेज कवि अर्नेष्ट जोन्स ने भारत के सामन्ती राजाओं के इस रुझान के राष्ट्रघाती रूप के संबंध में लिखा है: "....आश्चर्य इस बात का नहीं है कि १७ करोड़ जनता अब विद्रोह करने उठ खड़ी हुई है, आश्चर्य की बात तो यह है कि उन्होंने अधीनता स्वीकार ही कैसे कर ली थी! उन्होंने कभी अधीनता स्वीकार नहीं की होती यदि उनके ही राजाओं ने उनके साथ विश्वासघात न किया होता। इन राजाओं ने एक दूसरे को एक नीच दगाबाज विदेशी के हाथ बेच दिया ताकि उसकी नीच सहायता से वे एक दूसरे का गला काट सकें।"
दि न्यू वर्ल्ड: अर्नेस्ट जोन्स, कलकत्ता १९५७।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की मृत्यु के बाद वहां के राजा अजीतसिंह ने मुगलों को वहां से मार भगाया। अजमेर में राजसिंहासन के लिये दो भाइयों में झगड़ा चला। जिसने बहादुरशाह की अधीनता स्वीकार कर ली वही राजा बन गया। मारवाड़ के राजपूतों ने भी युद्ध नहीं किया और अजीतसिंह ने भी बहादुरशाह की अधीनता स्वीकार कर ली वही राजा बन गया। मारवाड़ के राजपूतों ने भी युद्ध नहीं किया और अजीतसिंह ने भी बहादुरशाह की अधीनता स्वीकार कर ली। तीनों राजाओं ने मुगलों से युद्ध करने के लिये एक संघ की स्थापना की अवश्य थी (यह इतिहास में पुष्कर संधि के नाम से विख्यात है) परन्तु वह उन्हीं कारणों से सफल न हो सका जिनका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है।

सिक्ख विद्रोह

पंजाब में विद्रोही सिखों ने गुरू गोविन्दसिंह की मृत्यु के बाद बंदा के नेतृत्व में अपना मुगल शासन विरोधी अभियान चलाए रखा अनेक पराजयों को पी कर भी वे हतोत्साह नहीं हुए। बंदा की मुगल सम्राट फर्रूखसियर द्वारा पाशविक हत्या करा दी जाने के बाद भी वे संघर्ष करते रहे।

मराठाओं का संघर्ष

औरंगजेब के जीवनकाल में ही शिवाजी के नेतृत्व में मराठा हिन्दू राज की सुदृढ़ नींव दक्षिण में पड़ गई थी। यद्यपि शिवाजी की मृत्यु के बाद औरंग-जेब ने मराठा शक्ति को विनष्ट करने का पूरा-पूरा प्रयास किया था परन्तु वह इसमें सफल न हो सका। जैसे ही मुगल सेना दक्षिण से हटी, मराठों ने फिर युद्ध छेड़ दिये और निरन्तर अपना प्रभाव क्षेत्र बढ़ाते रहे और मुगल साम्राज्य के अन्तर्गत समझे जाने वाले प्रदेशों से चौथ और सरदेशमुखी वसूल करते रहे। परन्तु शिवाजी की मृत्यु के बाद मराठों में भी वही सामन्ती अभिशाप, घर की फूट पनपी। वे भी आपस में ही संघर्ष करने लगे।

बहादुरशाह सन् १७१३ में मर गया और मुगल सिंहासन के लिये फिर संघर्ष शुरू हुए। जहांदारशाह राज सिंहासन पर बैठा तो आजम के पुत्र फर्रुख-सियर ने विद्रोह किया। इतिहास प्रसिद्ध सैयद भाइयों अबदुल्लाखां और हुसैनअलीखां की सहायता से फर्रूखसियर सिंहासनारूढ़ हुआ। जहांदारशाह अबदुल्ला के द्वारा गला घोंट कर मार दिया गया। इसके बाद से स्थिति ऐसी हुई कि राजसिंहासन पर भले कोई हो, चलती सैयद भाइयों की ही थी। इतिहास में वे बादशाहनिर्माता 'किंगमेकर्स' कहे गये हैं। बादशाह उनके हाथ के खिलौने भर रहे। हुसैनअली तो यहाँ तक कहता था कि जिसके सिर पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"उसके जूते का साया पड़ जायगा वह दिल्ली का बादशाह हो जायगा। २८

दिल्ली में मुगल राजसिंहासन की यह दुर्दशा थी, परन्तु हिन्दू राजशक्तियां भी अस्तव्यस्त ही रहीं। एक मुगलों के विरुद्ध संघर्ष करती थी तो दूसरी मुगलों की ओर से युद्ध कर उसे दबा देती थी। फर्रुखसियर के शासन काल में जाटों के नेता चूरामन ने विद्रोह किया तो राजसिंह ने मुगलों की ओर से उसे दबा दिया और उसे युद्ध का हर्जाना ५० लाख रुपया दे कर सन् १७१८ (सं० १७७५ वि० धर्मसंबाद का प्रणयनकाल) में संधि करनी पड़ी। मुहम्मदशाह के शासन-काल में चूरामन के लड़के ने पुनः विद्रोह किया तो जयसिंह ने उसे पराजित किया।

इस काल की राजनीतिक स्थिति में इस बात पर भी उचित ध्यान दिया जाना आवश्यक है कि मुगल "राजदरवार के उमरा दो दलों में विभाजित थे, विदेशी और हिन्दुस्तानी। विदेशियों में पठान, मुगल, अफगान, अरबी, रूमी सभी थे, परन्तु इनमें वाहुल्य ईरानियों और तूरानियों का ही था। हिन्दुस्तानी उमरा भारत में उत्पन्न मुसलमान, राजपूत, जाट, तथा हिन्दू कर्मचारी थे"। २९ विदेशियों के विरुद्ध एकता के विकास में भारतीय मुसलमानों के भी सहयोग की अभीष्टता की अनुभूति और एतदर्थ प्रयास के बीज हमें यहां मिलते हैं।

कृष्ण कवि के रचनाकाल में सबसे प्रवल उभरती हुई राजशक्ति मराठा थी और उसका नेता था इतिहास प्रसिद्ध पेशवा शासक बाजीराव प्रथम सन् १७२० से १७४० ई० परन्तु यह भी हमें ध्यान में रखना होगा कि पेशवाओं के महाराष्ट्री हिन्दू राज्यमंडल की शक्ति न केवल मुगल साम्राज्य की शक्ति को घटा कर वढ़ रही थी, अपितु वह अन्य छोटे वड़े हिन्दू राज्यों को भी धकया कर उन्हें त्रस्त और पीड़ित कर रही थी। गुजरात, राजपूताना, मालवा, बुन्देलखण्ड, बंगाल सव उनकी चपेट में आए और इन प्रदेशों के जो हिन्दू शासक थे उनके लिये मराठों की यह चपेट भी साम्राज्यवादी आततायी चपेट ही थी।

इस काल में समस्त भारत के राजनीतिक शक्ति केन्द्र दिल्ली के सिंहासन पर मुहम्मदशाह वहादुरशाह का एक पोता मुगल सम्राट के रूप में आसीन

---

२८. भारत का इतिहास भाग २ : डा० ईश्वरी प्रसाद इंडियन प्रेस प्रयाग १९५३ पृ० २२४
२९. वही पृ० २२२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहा। कृष्ण कवि की कृति 'विदुरप्रजागर' के रचनाकाल सं० १७९२ वि० (१७३५ई०) के चार साल बाद ही दिल्ली के नादिरशाही कत्लेआम की घटना सन् १७३९ ई० में घटी थी।

राजनीतिक स्थिति का साहित्य पर प्रभाव

समस्त भक्ति युग और रीति युग के जनाभिमुख साहित्य में धार्मिक भावनाओं के उभार को हमें गहराई से परखना चाहिये। वह केवल साम्प्रदायिक भावनाओं से प्रेरित नहीं है, वास्तव में वह अत्याचार विरोध और अपनी रीति से जीवनयापन करने की स्वतंत्रता की आकांक्षाओं से प्रेरित है। इस संबंध में अंग्रेजों की दासता के काल के हमारे इतिहासकार और साहित्य-समालोचक भी उस दृष्टि से भक्ति और रीति काल की धार्मिक भावनाओं के उभार को परखने में प्रवृत्त नहीं हुए जिस दृष्टि से श्री जान ब्राइट ने प्रोटेस्टेन्ट अंग्रेजों के शासन के विरुद्ध आयर्लेन्ड की जनता के कैथोलिक मत के उभार को परखा था। जिस प्रकार विदेशी मुसलमान शासकों के शासन के प्रभाव से भारत में एक मुस्लिम अल्पमत विकसित हो गया उसी प्रकार आयर्लेन्ड में भी अंग्रेजों के प्रोटेस्टेन्ट शासन के प्रभाव से एक प्रोटेस्टेन्ट अल्पमत विकसित हो गया था। राज्य की ओर से कैथोलिक मतानुयायियों का उत्पीडन होता था और प्रोटेस्टेन्टों को राजकीय प्रश्रय दिया जाता था। इस परिस्थिति में जान ब्राइट महोदय ने कहा था कि "आइरिश जाति का कैथोलिक धर्म, धर्म ही नहीं, एकदम देशभक्ति बन गया है।" ३०

जिस काल की राजनीतिक स्थिति का हमें यहां इस युग के साहित्य की पार्श्वभूमि के रूप में सरसरी तौर पर विहंगावलीकन करना है उसमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण बात दक्षिण में हिन्दू मराठा शक्ति का अभ्युदय है जिससे हिन्दू जनमन में नवीन आशा और उत्साह का संचार होना स्वाभाविक हुआ। इसका सर्वाधिक उत्कृष्ट प्रभाव हम महाकवि भूषण के काव्य में पाते हैं। इसी प्रभाव से प्रेरित हो कर भूषण बड़े उत्साह से गा उठते हैं :

"कढ़ गई रैयत के मन की कसक सब
मिट गई ठसक तमाम तुरकाने की।"

और "हिन्दुन की चोटी, रोटी राखी है सिपाहिन की
दिल्ली दल दाब के दीवाल राखी दुनी में।"

---

३०. डा० रामविलास शर्मा द्वारा "१८५७ की राज्य क्रान्ति" में उद्धत पृ० ५०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और अपनी ओजस्विनी वाणी से समस्त भक्ति काल और रीतिकाल के जनोन्मुखी साहित्य में राम और कृष्ण और अन्य पौराणिक वीरों के चरित्र के गायन की व्यंजनाओं को समझने में सहायक इस सूत्र का उद्घोष महाकवि भूषण ने किया है :

"सरजा शिवाजी राम ही कौ अवतार है ।"

शाहजहां और औरंगजेब के हिन्दू धर्म के प्रति मजहबी विद्वेष ने हिन्दू जनता को त्रस्त कर रखा था और आम हिन्दू जनता के लिये यह स्वाभाविक था कि वह दिल्ली के मुसलमान शासकों के विरुद्ध विद्रोह करने वाले हिन्दू राजाओं के प्रति ऐसी आशा से देखे कि वे उन्हें अत्याचार से मुक्ति दिलाने के लिये मुगल सत्ता के विरुद्ध लड़ रहे हैं । जो राजा लोग मुगल आधिपत्य के विरुद्ध विद्रोह करते थे उन्हें हिन्दू जनता त्राणकर्ता के रूप में देखे और जो मुगल शासकों के समर्थन में इन स्वातंत्र्य–संघर्षरत हिन्दू राजाओं के विरुद्ध ही युद्ध करें उनको वह निन्दनीय समझें और उनकी तुलना पुराणों के असुरों से करें, यह स्वाभाविक ही था ।[३१]

इस काल में जो ऐसी रचनाएं प्रणीत हुई जिनमें धर्म के प्रति अनुराग जाग्रत करने का प्रयास जनावगम्य सरल भाषा में हुआ वे आम हिन्दू जनता की इसी भावना को व्यक्त करने वालीं हैं । इस युग के साहित्य में हिन्दू धर्म के पुनरुत्थान की बातें इसी अत्याचार-विरोध और स्वातंत्र्य–भावना से परिचालित हैं । इस युग की राजनीतिक स्थिति के साहित्य पर पड़े प्रभाव के सम्बन्ध में विद्वद्वर श्री हरिहर निवास द्विवेदी जी ने लिखा है : "हिन्दी में ऐसा साहित्य बहुत कुछ लिखा गया जो तत्कालीन राजाओं और सामन्तों की रुचि या कुरुचि के अनुरूप था । ऐसा साहित्य भी कम नहीं है जो केवल साम्प्रदायिक था । वह दोनों प्रकार का साहित्य सुरक्षित भी रह सका और विवेचित भी बहुत हुआ है । परन्तु मध्य युग में भी हिन्दी एक बहुत विशाल जनसमूह की लोक-

---

३१ अपने द्वारा रामदास नेमा कृत 'ऊषा अनिरूद्ध की कथा' सं० १७४१ वि० (अप्रकाशित) की भूमिका में मैंने यह दिखाने का प्रयास किया है कि किस प्रकार छत्रसाल बुन्देला जैसे उन राजाओं को जो मुगल शासकों के विरूद्ध संघर्ष कर रहे थे स्वामी प्राणनाथ और जागरूक जनकवियों द्वारा हिन्दू धर्मरक्षक और 'असुरों' के अत्याचारों से जनता को त्राण देने वाला चित्रित किया जा रहा था और किस प्रकार मुगल शासकों और उनके सहायक चंदेरी, दतिया, ओरछा आदि के हिन्दू राजाओं को भी 'असुर' कोटि में ही रखा जा रहा था ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषा रही है और उस जनसमूह की प्रवृत्तिया सामन्ती दरवारों या साम्प्रदायिक मठों तक ही सीमित नहीं थीं। मध्य–युग के हिन्दी साहित्य का यह भावक अपने जीवन दर्शन और सांस्कृतिक परम्परा की रक्षा के लिये सतत संघर्षशील था। उसके लिये तथा उससे प्रेरित साहित्य प्रचुर मात्रा में प्रस्तुत किया गया था।......

"दुष्टदलन राम की खोज अकारण नहीं की गई थी, महाभारत के मन्त्र-द्रष्टा कृष्ण को अकारण ही नहीं पुकारा गया था, उसके पीछे किसी संघर्षगत समाज की अन्तरात्मा की विजयेच्छा कार्य कर रही थी। भगवान राम और कृष्ण जनमानस में निवास करते हैं और उसी जनमानस की अजेय शक्ति का आव्हान इन मन्त्रों में है।"[३२]

भक्तियुगीन साहित्य के राम और कृष्ण सम्बन्धी आख्यानों, विशेषत: विष्णुदास की "महाभारत कथा" के सन्दर्भ में द्विवेदी जी ने अपने लाक्षणिक तीखेपन से कहा है: "......उसके कृष्ण, अर्जुन आदि पन्द्रहवीं शताब्दी के भारतीय हैं।[३३]

कृष्ण कवि की रचनाओं पर युगीन प्रभाव–धर्म संवाद

"धर्मसंवाद" की रचना सं० १७७५ में हुई। संभवत: यह ग्रंथ ओरछा (बुन्देलखण्ड) में ही लिखा गया और उस समय ओरछा में मुगल समर्थक राजा उदीतसिंह का राज था। दिल्ली में सिख वीर बंदा की नृशंस हत्या करने वाला फर्रुखसियर तख्तनशीन था, और सुदूर पूना में पेशवा बालाजी विश्वनाथ शासनारूढ़ थे।

'धर्मसंवाद' में धर्मराज ने युधिष्ठिर के राज्य की स्थिति इस रूप में देखी:

"ब्राह्मन वेद पढ़ै धुनि सौं सुनि बानी विचार महासुख पाए
कोउ न देखो दुखी कहूं एक सुखी सब आनन्द सौं अति छाए"।[३४]

---

३२ श्री हरिहर निवास द्विवेदी का लेख 'भगवानदास माहोर द्वारा सम्पादित रामदास नीमा कृत 'उषा अनिरूद्ध की कथा', भगवानदास माहौर अभिनन्दन ग्रंथ, ग्वालियर १९७३ मूल्यांकन भाग पृ० ६९–७०।

३३ वही पृ० ७१।

३४ धर्मसंवाद, विलास १ छंद १९।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसके पीछे औरंगजेब आदि के द्वारा हिन्दुओं के मन्दिर ढाए जाने से, जजिया लगाए जाने से, धार्मिक त्योहारों पर सार्वजनिक रूप से होने वाले उत्सवों पर प्रतिबन्ध लगाए जाने से, उत्पन्न मानसिक वेदना की विवृति है। धार्मिक स्वातंत्र्य के 'अभाव' की काव्य के 'भाव' के रूप में पूर्ति है।

आम जनता के आर्थिक 'अभावों' की काव्य के 'भावों' के रूप में पूर्ति तो समृद्धि के वर्णन की परम्परागत रीति से इसमें है ही :

कंचन के झलकें सब धाम चुनी मनि-पन्ननि जोति बिराजै।
झूमत पौरि पगार बंधे गज दिग्गज से उपमा वर छाजै ॥''[३५]

जब राजधर्म के संबंध में चांडाल रूपी धर्मराज कहते हैं :

''लागे पुकार गउन द्रुज की अरि के दल ऊपर को दल साजा।
लोभ नहीं तन और रन कौ षटऊ दरसैनि करें सुख साजा ॥
क्रिस्न कहैं कवि देखत जो परजा अरु पुत्रनि एक समाजा।
जे इतने पन पालत हैं सुनि पावत हैं सुरलोक सो राजा ॥[३६]

तो इसमें जनता की यह आकांक्षा ही मुखर हो रही है कि राजा लोग गोब्राह्मण-प्रति-पालक धर्म की रक्षा के लिये तन का लोभ छोड़ कर शत्रुओं से युद्ध करें। यहां षड्दर्शन की बात पर विशेषत: ध्यान दिया जाना चाहिये। इसमें हिन्दू–जीवन–पद्धति में विचार–स्वातंत्र्य और विचार–वैभिन्य के प्रति आदर भाव की अभिव्यक्ति है, साम्प्रदायिक कट्टरता नहीं। इसमें 'एकंसद्विप्रा बहुधा वदन्ति' वाली उदारता का ही भाव विकसित हुआ है।

'धर्मसंवाद' की कथा में सर्वाधिक महत्वपूर्ण बात यही है कि चांडाल रूप धर्मराज द्वारा अधम राजाओं का अन्न दान ग्रहण न करने का जोरदार प्रतिपादन किया गया है, और केवल उत्तम राजाओं से ही अन्न दान आदि स्वीकार्य बताया गया है। उत्तम राजाओं के लक्षण धर्मराज इस प्रकार बताते हैं :

लागत पुकार गाइ ब्राह्मन की सुनत ही
ताही छिन त्यार तनलो भैं न गहत हैं।
करै रन हंक हो निसंक समसेरन सौं
वांके बांके वैरिन के दल कौं दहत हैं ॥
क्रिस्न कवि हैं जाकी परजा अनंद अति
आठ कहू पहर जस कीरत चहत हैं।

---

३५. वही छंद सं० २०।
३६. वही विलास २. छंद सं० ३४।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेदमत मानैं दया धर्मन निधानैं देखौ
तीरथ समान अैसे राजनि कहत हैं ।।३७

इसमें स्पष्ट ही उन राजाओं की प्रशंसा निहित है जो औरंगजेबी मजहबी विद्वेषपूर्ण कृत्यों के विरोध में हिन्दू प्रजा की रक्षा के लिए उठ खड़े हो रहे थे। और जब 'मद्धिम' यानी अधम राजाओं के लिये कहा गया है कि

परजा दुखित जाकी देखियतु है जू अति
आपुनु सुखित अनरीतिन कौं ठानहीं ।
करैं न निसापन अब साफ सब दोषन कौं
जांचक न आवै दया मन में न आनहीं ।।
जुरैं रन जंग संक चीनति न राम कौं सो
ताकौ जस कैसे किस्न कविता बखानहीं ।
लीजिए न दान तुम सुनौ ऐसे राजनि कौ
जाय वेदभेदन के कहे कौं न मानहीं ।।३८

इसमें स्पष्ट ही उन राजाओं की ओर संकेत है जो अपनी प्रजा को औरंगजेबी अत्याचारों से दुखित देखते हुए भी उसके प्रतिकार के लिए युद्ध न करके केवल अपना जीवन राजकीय भोग-विलास में व्यतीत करने का ही प्रयास करते थे। दुर्भाग्यवश उस समय ओरछा, दतिया, चंदेरी आदि के बुन्देली राजाओं की स्थिति ऐसी ही थी। कृष्ण कवि और तत्कालीन बुन्देली जनता मुगल बादशाह शाहजहां द्वारा ओरछे के मन्दिर नष्ट किए जाने, हिन्दुओं को जबरन मुसलमान बनाए जाने, जुझारसिंह के पुत्र उदयभान और उसके सेवक श्याम दौआ को इस लिये मार डाले जाने कि उन्होंने मुसलमान बनना स्वीकार नहीं किया था, आदि आदि बातें भूली नहीं थी, वह दुखी थी परन्तु उसके शासक तत्कालीन राजा उदोतसिंह आदि इन अत्याचारों को सहन करके मुगल बादशाहों के आधिपत्य में चैन की बंसी बजा रहे थे।

ग्रंथ के अन्त में युधिष्ठिर को धर्मराज यही उपदेश देते हैं :

धरम तें सीतल रहत सोइ ग्रह देखौ
धरम तैं होत बयकुंठहि बसाई है ।
धरम तें जुरै रन जंग जोई जीतियतु
धरम तें सत्रुन कौ नास अधिकाई है ।।

---

३७. धर्मसंवाद, विलास ४ छंद संख्या ६१ ।
३८. वही छंद सं० ६३ ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

113502

धरम तें बड़े रोग दूर होत पराचीन
धरम की बात धरनी पर सुहाई है।
धरम जू तत्त तातें तुम सौं कह्यो है किस्न
यहै सीख लीजौ कीजौ धरम सदाई है ॥३९

इस प्रकार हम देखते हैं कि इस छोटे से ग्रंथ में उपक्रम, उपसंहार, अभ्यास, अपूर्वता और फल सभी दृष्टियों से धर्म को सर्वोपरि ठहराया गया है। धर्म के प्रति इस सर्वग्राही आग्रह में दिखता है कि जनता को जो धर्म की आड़ में उत्पीडन का त्रास हो रहा था और उससे मुक्ति पाने की उसकी जो स्वाभाविक आकांक्षा थी, तथा उसके लिये वह धर्म के लिये अततायी सत्ता से संघर्ष करने के लिये अपने राजाओं की ओर जिस आशा से देख रही थी, वही सब इस छोटे से ग्रंथ का प्रेरणास्रोत रहा है।

बिहारी सतसई की टीका

कालक्रम से कृष्ण कवि की दूसरी कृति 'बिहारी सतसई की टीका' है। इसका निर्माणकाल विज्ञों द्वारा सं० १७८२ वि० निर्धारित किया गया है। इस समय कृष्ण कवि जयपुरनरेश राजा सवाई जयसिंह के मंत्री राजा आयामल के आश्रय में थे। बिहारी सतसई बहुविवेचित ग्रंथ रहा है और कृष्ण कवि की टीका के संबंध में भी बहुत कुछ लिखा जा चुका है। इस पर आचार्य शुक्ल जी के मत को हम पहले उद्धत कर ही चुके हैं। बिहारी की सतसई में राजनीतिक दृष्टि से सर्वाधिक महत्वपूर्ण वही दोहा है जिससे उन्होंने मिर्जा राजा जयसिंह को औरगजेब के लिये अन्य हिन्दू राजाओं का विनाश करने से विरत करने का प्रयास किया था :

स्वारथ सुकृत न श्रम वृथा देखि विहंग विचारि।
बाज पराये पानि पर तू पच्छीन न मारि॥

यदि 'नहि पराग नहि रस मधुर'···वाली अन्योक्ति का मिर्जा राजा जयसिंह पर यह प्रभाव पड़ा था कि वे नयी रानी के विलासभवन से निकल कर राजकाज फिर दतचित्त हो कर देखने लगे थे, तो इस विहंग वाली अन्योक्ति का भी उन पर इतना प्रभाव तो पड़ा ही था कि वह फिर शिवाजी के विनाश के लिये प्रयत्नशील नहीं हुए, प्रत्युत उन्होंने शिवाजी को बादशाह से संधि कर लेने और उनके समान ही मुगल सम्राट के एक सामन्त बन जाने के लिये राजी कर लिया था।

---

३९. धर्मसंबाद, विलास ४ छंद संख्या ९४।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अस्तु इस संबंध में कृष्ण कवि की टीका आखिर टीका ही तो है और उसकी रचना का मुख्य उद्देश्य रीतिकालीन काव्यकौशल प्रदर्शित करके अपने आश्रयदाता की नजरों में एक कुशल कवि होना ही था। इसमें कृष्ण कवि बखूबी सफल हुए थे।

विदुर प्रजागर

कालक्रम से कृष्ण कवि की अन्तिम ज्ञात कृति 'विदुर प्रजागर' है जिसकी रचना सं० १७९२ में हुई थी। इसकी रचना भी राजा आर्यामल्ल की 'आज्ञा' से ही कवि ने की थी। यों तो यह, जैसा कि हम कृतियों के सामान्य परिचय में देख चुके हैं, महाभारत के उद्योग पर्व के अन्तर्गत 'प्रजागर पर्व' का भाषा-पद्यानुवाद है, परन्तु इसके संबंध में यह विचारणीय है कि किन सामयिक प्रेरणायों से प्रेरित हो कर कवि ने यह अनुवाद प्रस्तुत किया। निश्चित रूप में विदुर ने धृतराष्ट्र को जो कुछ नीति संबंधी उपदेश दिया था उसमें सब से प्रधान बात यही थी कि भाई-भाई में युद्ध नहीं होना चाहिये। इससे भाइयों की ही सब प्रकार से हानि होती है और शत्रुओं का ही लाभ होता है :

संधि करौ महराज जगत में निज जस मंडहु
अंतर चाहत सत्र मनोरथ तिनके खंडहु ॥
निज वचन बद्ध वे सत्य बस, दुरजोधन समझाइये
मिलि होंहि एक हरषैं सजन, दुहू लोक सुख पाइये ॥४०

इसमें कृष्ण कवि के समय के हिन्दू राजे भाईभाई हैं और शत्रु मुगल आततायी हैं, यदि इस संकेत को समझा जा सके, तो यह स्पष्ट ही है कि जिस राजनीतिक भावना से भावित हो कर बिहारी ने राजा जयसिंह के लिये 'स्वारथ सुकृत न श्रम वृथा' आदि अन्योक्ति कही थी वैसी ही राजनीतिक भावना से भावित हो कर कृष्ण कवि ने इस विदुरप्रजागर का अनुवाद सवाई राजा जयसिंह और उनके मन्त्री राजा आर्यामल्ल के लिये किया होगा। राजा सवाई जयसिंह भी मुगलों की ओर से हिन्दू नरेशों को दवाने का काम करते थे।

विदुरप्रजागर और उसके मूल संक्रस्त 'विदुरनीति' के संबंध में यह भी द्रष्टव्य है कि उसमें ऐसे अनेक नीतिवचन भी हैं जो मुगल आततायियों के अनुचर बने राजा सवाई जयसिंह और उनके मंत्री राजा आर्यामल्ल जैसे लोगों को इस लिये 'प्रिय' लग सकते थे कि उनसे इस बात का समर्थन होता था कि उन्होंने जो अपने से अधिक बलवान मुगल बादशाह की अधीनता स्वीकार कर

४०. विदुरप्रजागर, अध्याम ५ छंद संख्या ७८।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ली थी वह 'नीति' और 'धर्म' के ही अनुकूल बात थी :

वैर करै बलवंत सौं मूरख कहिए ताइ (विदुरप्रजागर अध्याय २ छंद २९)

लहत इन्द्र कौ भोग जो नवत बली सौं आंन

पंडित पहिलै ही नवत यह विचार जिय जांन ॥ (अध्याय ३ छंद ३५)

मूल संस्कृत इस प्रकार है : इन्द्राय स प्रणमते यो नमते बलीयसे

(महाभारत, उद्योग पर्व, अध्याय ३४ श्लोक ३७)

अर्थात् जो बलवान को नमस्कार करता है, यानी उसके प्रति अधीनता स्वीकार कर लेता है, वह 'इन्द्र' को ही नमस्कार करता है। राजा सवाई जयसिंह और आर्यमिल्ल के लिये इसका यह अर्थ हो ही सकता है कि वे जो मुगलों का आधिपत्य स्वीकार कर राजसी भोग विलास कर रहे थे वह 'बुद्धिमता' की बात थी, जो अन्य हिन्दू रांजे बलवान मुगल सम्राट का आधिपत्य स्वीकार नहीं कर रहे थे, वे 'मूरख' थे, अतः मुगलों की ओर से राजा सवाई जयसिंह आदि का उन्हें दबाया जाना और उन्हें मुगल आधिपत्य स्वीकार करने को विवश किया जाना उनके लिये 'धर्म' और 'नीति' की बात थी। मुगल दरवार में मुगल सिंहासन के समक्ष उनका प्रणत होना वास्तव में धर्मनीति सम्मत 'इन्द्रपूजा' थी !!

इस प्रकार 'बिदुरप्रजागर' कुछ अंशों में दो घाटों वाली रचना ठहरती है। इसका एक घाट मुगलों का आधिपत्य स्वीकार करने वाले राजा वर्ग के लिये है और दूसरा आम हिन्दू जनता और जनसेवी राजाओं के लिये। राजघाट ऐसा है कि यदि संबंधित राजाओं में 'अप्रिय सत्य' सुनने और समझने की क्षमता हो तो उसे सुन समझ लें, और यदि 'प्रिय' ही सुनना चाहते हों तो उसे ही सुनते रहें। जनघाट की बात तो बहुत स्पष्ट, साफ और सरल है : जातिद्रोह बहुत बुरी बात है, हिन्दू राजाओं का मुगलों के अधीन रह कर अन्य हिन्दू राजाओं के विरुद्ध युद्ध करके उन्हें मुगल आधिपत्य स्वीकार करने को विवश करना अनीति और अधर्म की बात है।

हम पहले देख आए हैं कि मुगल शासन के कमजोर होने पर भी हिन्दू राजा लोग आपस में मिलकर उसको अपदस्थ जी नहीं कर सके, उसका कारण प्रधानतः उनका आपसी सामन्ती वैमनस्य ही रहा है। इस संदर्भ में इस बात का संकेत कि बलवान के प्रति प्रणति इन्द्र की पूजा है स्पष्ट ही यह है कि इन हिन्दू राजाओं को वलवान हिन्दू राजाओं का प्रभुत्व और नेतृत्व मानकर समान शत्रु, मुगल आततायियों के विरूद्ध युद्ध करना चाहिये। बलवान के प्रति प्रणति की अभीष्टता की बात को जब हम जाति विरोध और भ्रातृ विरोध न करने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की अभीष्टता की बात से समन्वित करके देखते हैं तो उसका यह संकेत बहुत स्पष्ट हो जाता है।

राजाश्रित कवि और जनता की बात

घरवार छोड़ कर विरक्त साधु सन्तों का जीवन विताने वाले कवियों की बात अलग है, परन्तु गृहस्थ वाणी सेवकों को तो अब तक किसी न किसी भांति सरस्वती के प्रति लक्ष्मी के सौतिया डाह से पीडित होना ही होता है। रीतिकाल में ऐसे गृहस्थ कवियों को लक्ष्मी के कृपापात्र किसी न किसी राजा रईस का आश्रय लेना ही पड़ता था। प्राय: ऐसे सभी कवियों ने इस वस्तु स्थिति पर अपना क्षोभ किसी न किसी प्रकार प्रकट किया ही है। उदाहरण के लिये कवि-वर देव ने कहा है : "...आजलों हौं केते नरनाहन की नाहीं सुनी..." आदि। इस सम्बन्ध में संस्कृत के प्रकांड विद्वान आचार्य कवि पंडितराज जगन्नाथ की यह उक्ति भी स्मरणीय है : "पुरो धावंन्धावन्द्रविणमदिराघूर्णितदृशां, महीपानां नानातरूणतर खेदस्य नियतम्।" इस सम्बन्ध में सबसे तीखी उक्ति झांसी के एक जनकवि चतरेश की है : "धन्य धन्य लच्छमी तिहारौ परताप, बड़े-बड़े मूरखन सें चतुर कहिबौ परौ।" (यहां चतरेश जी ने 'चतुर' के साथ छेकानुप्रास साधते हुए चकरादि वह शब्द रखा है जिसका अर्थ 'मूर्ख' ही होता है। अश्ली-लता के निवारण के लिये यहाँ शब्द बदल दिया गया है, परन्तु ऐसा करने में खेद है, इस उक्ति का तीखापन और बल भी बहुत कम हो गया प्रतीत होता है।)

यहां दर्शनीय यह है कि राजा रईसों के आश्रित रहते हुए भी ये कवि जनता से उसके हित की बात कहने का कोई न कोई उपाय, कोई न कोई केंड़ा, निकाल ही लेते थे। आगे इसी प्रकार अंग्रेजों के दमन और आतंक के काल में भारतीय दंड विधान की राजद्रोह की १२४ए आदि धाराओं की मार से बचने के लिये औपचारिक रूप में अंग्रेजी राज की प्रशंसा की आड़ लेकर अंग्रेजों की गुलामी से देश के उद्धार के लिये आह्वान और जनोद्बोधन की कोई न कोई तरकीब भारतेन्दु आदि कवि और उनके मंडल के और युग के अन्य कवि भी निकाल ही लेते थे।

मुगलों के अनुचर सामन्त राजा के आश्रय में रहते हुए भी कृष्ण कवि ने जनोद्बोधनपरक भाव अपनी रचनाओं में रखे हैं और भाषा को भी अभि-जात की अपेक्षा जनता के निकट ही अधिक रखा है, इसके लिये वह हमारे साधुवाद का पात्र है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृष्णकवि की कृतियों पर इस प्रकार हम तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों का और उनसे उत्पन्न हुई आम हिन्दू जनता की आकांक्षाओं का प्रभाव परख सकते हैं। इस सम्बन्ध में यह बात भी हमारा ध्यान आकृष्ट करती है कि उनकी संभवत: २५ या ३५ वर्ष की आयु की कृति में 'धर्मसंवाद' में भाषा पर अधिकार, छंदों की सुघरता अलंकारों के प्रयोग में निपुणता आदि उतनी प्रदर्शित नहीं हुई है जितनी उसकी बाद की कृतियों 'विहारी सतसई की टीका' और 'विदुर प्रजागर' में। परन्तु 'धर्मसंवाद' में सामान्य हिन्दू जनता की भावना अधिक खुले रूप में और अधिक वेग से व्यक्त हुई है। धर्मसंवाद का कर्ता किसी मुगल सम्राट के अधीन राजा का आश्रित नहीं था। अत: उसकी भाषा भी जनता के अधिक निकट रही और अधिक जनावगम्य रही। उसके भाव भी सीधे जनता के भाव हैं। यह कृति आम जनता को संबोधित है, पंडितों या राजाओं को नहीं। परन्तु जो कवि राजा आर्यामल्ल के आश्रय में रह कर रचना कर रहा था उसकी भाषा में भी आभिजात्य आया और पांडित्य प्रदर्शन की प्रवृति भी अधिक हुई। काव्यकौशल की दृष्टि से इन कृतियों से काव्य में निखार चाहे जितना दिखे परन्तु फिर उसकी भाषा न तो धर्मसंवाद की भाषा जैसी जनावगम्य रही और न उसके भाव ही आम जनता के लिये उतनी सुगमता से ग्राह्य रहे। फिर भी कवि की यह वृत्ति तो सराहनीय ही है कि वह ऐसे संस्कृत ग्रंथों को भाषा में आम जनता के लिये उपलम्य कराने में प्रवृत्त हुआ जो परम्परा से श्रद्धाभाजन रहे।

धर्मसंवाद परम्परा

इस युग में और भी अनेक 'धर्मसंवाद' लिखे गये जिनमें युधिष्ठिर और धर्मराज की कथा ही मुख्यतः वर्णित हुई है। ४१ जब एक प्रवृत्ति साहित्य में आती है तो एक ही विषय पर अनेक कवि रचना करते को प्रवृत्त होते हैं। इससे उस युग में उसकी विशेष उपयोगिता और उन कृतियों में जनता की भावनाओं की व्यंजना होना ही सिद्ध होता है। इस युग की राजनीतिक चेतना

---

४१. धर्मसंवाद (पद्य) खेमदासकृत।
धर्मसंबाद (पद्य) जनदयालकृत।
धर्मसंवाद (गद्य) मुखदासकृत।
धर्मसंबाद (गद्य) लेखक अज्ञात, कृष्ण कवि के धर्मसंवाद से पूर्व की रचना।
धर्मसंवाद (पद्य) लेखक अज्ञात।
धर्मसंवाद या धर्मसमाधि (पद्य) स्वामी हृदयदासकृत।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से हिन्दू धर्म की संरक्षा में तत्पर होने वाले राजाओं की प्रशंसा की भावना से प्रेरित हो कर 'धर्मसंवाद' लिखने वालों की एक परम्परा इस युग में हमें मिलती है। विदुरनीति का अनुवाद करने वालों की ऐसी कोई परम्परा नहीं मिलती यद्यपि कृष्ण कवि की 'विदुरनीति' का प्रचार अधिक हुआ दिखता है और उसकी अनेक प्रतियां हस्तलिखित ग्रंथों की खोज में मिली हैं।

खोज रिपोर्टों पर आधारित हस्तलिखित ग्रंथों की सूची में 'धर्मसंवाद' नाम से ही एक अज्ञातनामा लेखक की एक गद्य रचना की सूचना दी गई है जिसकी एक प्रति का लिपिकाल सं० १७६७ वि० और उसकी एक अन्य प्रतिलिपि का काल सं० १७७२ वि० हैं। इस प्रकार यह रचना कृष्ण कवि के 'धर्मसंवाद' के पहले की ठहरती है।

सामाजिक दृष्टि से

भारत में आर्थिक कारणों से जब से वर्ण व्यवस्था और जातिव्यवस्था चली तभी से उसके प्रति बौद्धिक विद्रोह भी होते रहे हैं, परन्तु आर्थिक शक्तियां बौद्धिक निर्णयों से सदैव अधिक बलवती सिद्ध हुई हैं। यों तो आत्म-दृष्टि से गीताकार ही

"विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि
शुनि चैव स्वपाके च पंडिता: समदर्शिन:"

कह कर तात्विक दृष्टि से ब्राह्मण और चांडाल में एक ही आत्मा होने की घोषणा कर चुके थे तथा

"अपि चेत् सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्
साधुरेव स मन्तव्य: सम्यग् व्यवसितो हि स:"

कह कर, वह भक्त को 'सुदुराचार' होने पर भी, उसके किसी भी वर्ण या जाति का होने पर भी, उसको साधु ही मानने की स्वीकृति दे चुके थे। परन्तु समाज में सामन्ती उत्पादन व्यवस्था में मनुसम्मत वर्णाश्रित समाजव्यवस्था ही व्यबहार में चली, और सुचारु रूप से चली। उसमें समाज व्यवस्थापूर्वक प्रगतिपथ पर बढ़ा। बौद्धिक रूप में वर्णों और जातियों में 'समदर्शिता', परन्तु व्यवहार में आर्थिक कारणों से वर्णों और जातियों में ऊंचनीच की मनुसम्मत स्वीकृति, दोनों साथ साथ चलती रहीं। कालिदास ने रघुकुल के राजाओं की प्रशंसा करते हुए यही कहा है कि उनकी प्रजा मनु के भलीभांति चलते हुए मार्ग से रेखा मात्र भी इधर उधर नहीं हुई।

परन्तु जब भारत में वर्णव्यवस्था विहीन विदेशी आक्रान्ता तुर्कों का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस्लामी शासन जम गया तो वर्णजाति-व्यवस्था के प्रति अनास्था पनपना स्वाभाविक हुआ। कृष्ण कवि के 'धर्मसंवाद' में यही स्थिति भीम और चांडाल और फिर भीम और धर्मराज के संवादों में प्रतिफलित हुई है। भीम के कथनों में वर्णव्यवस्था की स्वीकृति और उसके 'वेदविहित' होने की बात है तो चांडाल रूप धर्मराज की उक्तियों में आत्मदृष्टि से ब्राह्मण और चांडाल में समता होने की बात है : भीम कहते हैं :

ब्राह्मन कीजे प्रथम बखान। दूजै छत्री रनहि प्रमान ।।
तीजैं बैस्य बताऊं तोहि। चौथें बर्न सूद्र कौ होइ ।।
इन्हि तैं नीचौ जो नर आइ। अंतिज कथा कही नहि जाइ ।।
वेद कहैं कीजै अब सोइ। वरजे दान कौन विधि होइ ।।
(धर्मसंवाद १।२७)

तो चांडाल कहता है :

एक ही ब्रह्म बनावन कौं यह पंचऊ तत्त मिलै घट साजा।
एकई सौ तनु, एकई सौ मनु, एकई सौ मुखदुक्ख सु साजा ।।
एकई सौ कवि किस्न कहै रकतै अरु इंद्रिन पंच समाजा।
भिम कहौ यह कारन कौन सु दान हमैं नहिं दैंइगे राजा ।। धर्म० १।२८

भीम : पूजत हैं सब गाइ, देखौ या संसार में।
गदहा जौ छी जाइ, तौ कीजै अस्नान कौं ।। धर्म० १।२९

चांडाल : किस्न कहैं कह वेद पढ़ें जिन्हि ग्यान कौ मूल न अच्छिर पाए।
आतमा ब्रह्म कौं जान्यौं नहीं तौ कहा जू कहौ अत्र दानि कहाए ।।
धर्म० १।३०

भीम जब कहते हैं कि ब्राह्मणों को ही दान देना वेदविहित है, चांडाल को देना नहीं तो चांडाल कहता है :

भिमसैंनि देखौ इतै चारि वचन (पाठान्तर 'वरन') चित लाइ।
चांडाल जासौं कहैं ताके सुनौ सुभाइ ।। धर्म० १।३२
चुगली औरन की करै निंदा सुनैं निहाल।
ऐसे लच्छन जासु में सो कहिजै चंडाल ।। धर्म० १।३३
परके धनैं छीनि घर आनै। दयाधर्म कछूवै नहिं जानैं, आदि आदि

इस बातचीत में चांडाल यही प्रतिपादित करता है कि कोई व्यक्ति चांडाल नीच कर्म करने से होता है जन्म से नहीं :

नौनों इंदोरिन को फलु होइ नहीं वह इंम्रत मूर लहावै।
ऊंच जौ नीच के काम करै सोइ नीचन की पदवी पहुचावै ।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राम के नाम कौं काहू लहौ सोइ साध भयौ कवि किस्न बतावै ।
देह कौ नाम नहीं सुनि भिम सो कर्म करें चनडाल कहावै ।। धर्म १।५८

भीम और युधिष्ठिर की बातचीत में भी युधिष्ठिर द्वारा जाति और वर्ण संबंधी ऊंचनीच की स्वीकृति की बात है। युधिष्ठिर कहते हैं :

नींच पढ़ै पुनि वेद कौं, जद्दपि कैहू बेर ।
तद्दपि अैसौ जानियौ असल नकल कौ फेर ।।

मूल ही तैं बिस कौ बिरवा फल नौनौ भयौ नहीं इंम्रत पावै ।
उज्जिल ताल भरे अति ही पुनि क्यौंकर गंग कौ नीर कहावै ।।
किस्न कहै कवि भिम सुनौ नहिं छांडत आपनै कोऊ सुभावै ।
जद्दपि काग सयाने महा तो कहा वह हुंसनि की मति पावै ।। धर्म० २।१२

परन्तु फिर भी युधिष्ठिर भीम के यह कहन पर कि :

"काम कहा उहि के कुलधर्म सों दान क्षुधारथी कौं कछु दीजे"
(धर्म० २।१७)

चांडाल का मुंह न देखने वाले युधिष्ठिर परदे के पीछे से उससे बातचीत करने को तैयार हो जाते है। परन्तु जब वह चांडाल का ज्ञान देखते हैं तो उससे प्रभावित हो कर न केवल बीच का पर्दा हटा देते हैं और उसका मुंह ही देखते हैं, अपितु फिर तो वह उसकी मानसी पूजा भी करते हैं और उससे अपने यहाँ रह कर निरन्तर दर्शन देते रहने की प्रार्थना करते हैं।

इस प्रकार कृष्ण कवि के इस 'धर्मसंवाद' में समाज में वर्ण-जाति के आधार पर ऊंचनीच संबंधी समझ में जो उद्वेलन हो रहा था वह भली प्रकार व्यक्त हुआ है। इसमें उस समाज व्यवस्था की बौद्धिक रूप में अस्वीकृति है जिसका समर्थन गो० तुलसीदास जीने कबीर के विरोधी में यह कह कर किया था :

पूजिए विप्र जदपि गुनहीना । सूद्र न गुनगन ग्यान प्रबीना

सांस्कृतिक प्रगति के परिप्रेक्ष्य में

समस्त सामन्तयुगीय सांस्कृतिक विकास की गति की दो धाराएं रही हैं : १. राजोन्मुखी राजाश्रित तथा कथित 'अभिजात' धारा, और २. जनोन्मुखी, जनप्रेरित, जनधारा। एक सुभाषित है :

नरपतिहितकर्ता द्वेष्यतां याति लोके
जनपदहितकर्ता त्यज्यते पार्थिवेन्द्रै
इति महति विरोधे वर्तमान समाने
नृपतिजनपदानां दुर्लभः कार्यकर्ता ।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह वास्तविकता पर आधारित है।

राजोन्मुखी अभिजात धारा का प्रभावक्षेत्र, अर्थात् उसको समझने वालों और उससे मानसिक आनन्द और परितोष प्राप्त करने वालों का क्षेत्र, निरन्तर अधिकाधिक संकुचित होता जाता है क्योंकि उसमें सरलता की अपेक्षा कठिनता और जटिलता ही अधिकाधिक बढ़ती रहती है। स्थापत्य, मूर्तिकला, चित्रकाल और संगीत सभी ललितकलाओं के विकास में हमें यही बात दिखती हैं। जटिल अभिजात संगीत और सीधेसाधे लोकसंगीत के क्षेत्र में तो और भी अधिक स्पष्ट रीति से परिलक्षित होती है।

इस संबंध में दूसरी ध्यान आकर्षित करनेवाली बात यह है कि जब जब संस्कृति की अभिजात धारा अवरुद्ध होती दिखी, उसे नवगति सदैव जनोन्मुखी धारा से ही मिली है। अभिरुद्ध होती हुई अभिजात धारा अपने मान्य माध्यमों को छोड़ कर जनोन्मुखी धारा के विकसित माध्यमों को ही अपनाती रही है और पुनः अपने आभिजात्य के पथ पर आगे बढ़ती रही है। उदाहरण के लिये संस्कृत साहित्य के क्षेत्र में हमें अभिजात धारा वाल्मीकि की रामायण में स्पष्टतः परिलक्षित भाषा की सरलता, सीधेसाधे अनुष्टुप् और उपजाति छंदों का ही प्रयोग, आदि से भट्टिकाव्य और राघवपांडवीय जैसे काव्यों की भाषा, छंद अलंकार सभी दृष्टियों से कठिनता और जटिलता की ओर बढ़ी, और जब गतिरोध जैसी स्थिति हुई तो अभिजात रुचि को पुनः जनता में विकसित जनभाषा का ही आश्रय लेना पड़ा। परन्तु वह पुनः आभिजात्य के सरलता से कठिनता, आडंबरहीनता से आलंकारिक कृत्रिमता के मार्ग पर चल पड़ी। जब हम हिन्दी साहित्य के विकास में विष्णुदास की रामायणी कथा से तुलसीदास के रामचरित मानस और फिर केशव की रामचंद्रिका की ओर बढ़ते हैं तो हमें अभिजात साहित्य की यही प्रवृत्ति सामन्ती राजोन्मुखी प्रभाव के कारण कार्यरत दिखती है।

"अपने संचित साहित्य में राजाभिमुख (शासनाभिमुख) और जनाभिमुख साहित्य का भेद करना आवश्यक हो जाता है। इसकी सूचना शुक्ल जी ने ही दी है। आचार्य शुक्ल जी ने जो यह कहा है कि 'प्रत्येक देश का साहित्य वहां की जनता की चित्तवृत्ति का प्रतिबिंब होता है' इसमें जनता और साहित्य के संबंध के आदर्श की आचार्य जी की भावना ही प्रकट हुई है। हमारा संचित साहित्य सदा जनता की ही चित्तवृत्ति का प्रतिबिंब नहीं रहा है, यह भी शुक्ल जी ने स्पष्टतः सूचित किया है। रीतिकालीन शृंगार और वीर काव्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के संबंध में उन्होंने कहा है : "वास्तव में शृंगार और वीर इन्हीं रसों की कविता इस काल में हुई। प्रधानता शृंगार की ही रही। इससे इस काल को रस के विचार से कोई शृंगार काल कहे तो कह सकता है। शृंगार के वर्णन को बहुत से कवियों ने अश्लीलता की सीमा तक पहुंच दिया था। इसका कारण जनता की रुचि नहीं, आश्रयदाता राजामहाराजाओं की रुचि थी, जिनके लिये कर्मण्यता और वीरता का जीवन बहुत कम रह गया था।" और "कुछ कवियों ने अपने आश्रयदाताओं की स्तुति में उनके प्रताप आदि के प्रसंग में वीरता का थोड़ा बहुत वर्णन अवश्य किया है। पर वह शुष्क प्रथापालन के रूप में होने के के कारण ध्यान देने योग्य नहीं है। ऐसे वर्णनों के साथ जनता की हार्दिक सहानुभूति कभी नहीं हो सकती थी।...भूषण के वीर रस के उद्‌गार सारी जनता के हृदय की संपत्ति हुए। भूषण की कविता कविरीति संबंधी एक अविचल सत्य का दृष्टान्त है। जिसकी रचना को जनता का हृदय स्वीकार करेगा उस कवि की कीर्ति तव तक बनी रहेगी जब तक स्वीकृति बनी रहेगी। क्या संस्कृत साहित्य में, क्या हिन्दी साहित्य में, सहस्त्रों कवियों ने अपने आश्रयदाता राजाओं की प्रशंसा में ग्रंथ रचे जिनका आज पता तक नहीं है।"

"शुक्ल जी ने इस प्रकार राजा वर्ग और प्रजा वर्ग की रुचि के विरोध पर प्रकाश डाला है। इससे स्पष्ट है कि शुक्ल जी राजाभिमुख और जनाभिमुख साहित्य के भेद को परखते थे। इस बात पर भी शुक्ल जी ने बल दिया है कि अन्ततोगत्वा वही संचित साहित्य हमारे पास साहित्य के रूप में बच पाता है जिसे जनता की स्वीकृति मिलती है, राजप्रशंसक कृतियां नहीं। और यह भी हम यहां नोट कर सकते हैं कि शुक्ल जी ने यह भी परखा है मध्यकाल में राजा महाराजे अपनी कर्णण्यता खो चुके थे, अर्थात् सामन्तवाद ह्रासोन्मुख हो गया था।"

"हिन्दी साहित्य में हम जिसे 'वीरगाथाकाल' कहते हैं उसको यह नाम राजाश्रित काव्य की जिस विशिष्टता के कारण दिया गमा है वह राजाभिमुख ही है, भक्तिकाल यह नाम जैसे काव्य के प्राधान्य के कारण हुआ है वह जनाभिमुख है, और फिर 'रीतिकाल' नाम जैसे काव्य के प्राधान्य कारण मिला वह फिर राजाभिमुख ही है।" ४२

परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि जो कुछ साहित्य के रूप में रीतिकाल

४२—स्वसंपादित "रामदास नेमाकृत 'उषा अनिरूद्ध की क्या" को भूमिका (अप्रकाशित) से उद्धृत।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में निर्मित हुआ उसमें परिमाण की दृष्टि से भी रीतिप्रतिपादक और रीति-पालक काव्य का ही आधिक्य रहा। ऐसे काव्य से पुरानी परिपाटी का भक्ति काव्य, और नीतिकाव्य आदि रीतिकाल में अधिक और प्रचुर मात्रा में लिखा गया।

जनोन्मुखी साहित्य में संस्कृत से किये गये भाषानुवादों का महत्व

रीतिकाल में भी जनोन्मुख साहित्य प्रचुर मात्रा में प्रणीत हुआ। जब-जब जनोन्मुख रचनाकारों को जनता को नवोद्बोधन देने की आवश्यकता प्रतीत हुई तो उन्होंने अनुभव किया कि जनता में मान्य पुराने आख्यानों के, और पौराणिक कथाओं के, माध्यम से ही ऐसा करना अधिक प्रभावोत्पादक होता है। इसीलिये उन्होंने संस्कृत के ग्रंथों का 'अनुवाद' प्रस्तुत किया। इस दृष्टि से हिन्दी साहित्य के सर्वोत्कृष्ट ग्रंथ तुलसी के रामचरितमास में और सूर के सूरसागर में भी क्रमशः रामायण और श्रीमद्भागवत का कथानुवाद ही तो है। परन्तु इनमें इन कथाओं की सामाजिक, राजनीति परिस्थितियों में अपनी नयी आवश्यक व्यंजनाएं हैं। आम जनता को परिस्थिति विशेष में आवश्यक नया भावबल इन रचनाओं से मिला है। अतः भक्ति और रीति काल की इन अनुवाद रचनाओं को हमें 'मौलिक' रचनाओं से कुछ हीन स्तर की नहीं समझना चाहिये। धर्म और नीति के आवश्यक नवोपदेश के लिये तो सामान्य महा-भारतीय और रामायणीय तथा अन्य पौराणिक कथाओं के सरल जनावगम्य भाषा में अनुवाद ही आम जतता के लिए किसी कवि की किसी मौलिक कृति से कहीं अधिक उपयोगी हो सकते थे, और हुए।

कृष्ण, कवि (या कवियों) ने इस प्रकार अपने काव्य में समाज की तत्का-लीन राजनीतिक और सामाजिक आवश्यकताओं के अनुरूप धर्म और नीति के आवश्यक नवोपदेश के लिये 'धर्मसंवाद' और 'विदुरप्रजागर' को परम्परा से सम्मान्य ग्रंथों के अनुवाद के रूप में प्रस्तुत करके इस जनोपयोगी समझ का, तथा उसके लिए मौलिक रचनाकार होने के अभिमान और कवियशोलोभ के परित्याग की वृत्ति का ही अच्छा परिचय दिया है।

'धर्मसंवाद' और 'विदुर-प्रजागर' की भाषा

मध्ययुग के मध्यदेश की हिन्दी भाषा के उसकी किसी आंचलिक बोली के नहीं, विशेषतः उसकी काव्य भाषा के रूप के संबंध में विचार करते हुए विद्वद्वर पं० हरिहरनिवास द्विवेदी के ग्रंथ "मध्यदेशीय भाषा ग्वालियरी" के प्रतिपादनों पर ध्यान देना ही होगा। इस विषय में रुचि रखने वाले अध्येताओं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को उक्त ग्रंथ का मनोयोग से अध्ययन करना चाहिये। यहां संक्षेप में इतना ही कहा जा सकता है कि द्विवेदी जी के कथ्य का सारांश यह है कि जिस भाषा को विक्रम की अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी में 'बृजभाषा' कहा जाने लगा वह भाषा मध्यदेश में, उसके भारत के हृदय प्रदेश होने की भौगोलिक और ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक स्थिति की आवश्यकता से ही विकसित हुई थी। "सोलहवीं शताब्दी के पहले आज के बुन्देलखण्ड और ग्वालियर ने उसे परिष्कृत काव्यभाषा का रूप दिया।" ४३ इस मध्ययुग के विष्णुदास आदि कवियों ने किसी क्षेत्रीय बोली का उपयोग नहीं, इसी व्यापक काव्यभाषा का उपयोग अपने काव्य में किया था। सूर, तुलसी, केशव को यही विकसित काव्यभाषा परम्परा से मिली थी। द्विवेदी जी के ही शब्दों में "ईसवी नवमीं शताब्दी में काबुल के हिन्दूशाही राजा जयपाल के नेतृत्व में लगभग समस्त उत्तर भारत के राजाओं की संयुक्त वाहिनी ने गजनी पर आक्रमण किया था। इस विशाल जनसमूह के विचारों के आदान प्रदान के लिये निश्चित ही कोई भाषा होगी, व्यापारियों से रसद क्रय करने के लिये भी किसी भाषा का प्रयोग किया जाता होगा, इसी प्रकार काशी, कुरुक्षेत्र, उज्जयिनी, जैसे तीर्थों के यात्री भी किसी सामान्य भाषा का उपयोग करते होंगे। समस्त भारत के जनसमूहों के ये सम्पर्क ही मध्ययुग की 'व्यापक काव्यभाषा' के जनक हैं। इन्हीं गतिशील जन-समूहों के लिये मध्ययुग का लोकोन्मुखी हिन्दी साहित्य लिखा गया था। इन्हीं समूहों में वह गा कर सुनाया जाता था। इसमें किसी सीमित प्रदेश के क्रिया–पद खोजना व्यर्थ है।" ४४

इस समस्त हिन्दी भाषाभाषी प्रदेश में व्याप्त काव्यभाषा में जो ग्रंथ रचे जाते थे उनमें कवि के अपने क्षेत्र की बोली के शब्द भी प्रचुर मात्रा में उनके द्वारा प्रयुक्त होना स्वाभाविक होता था। इस प्रकार व्यापक काव्यभाषा की शब्द समृद्धि क्षेत्रीय बोलियों के शब्दों से बढ़ती रही। काव्य में छंद के बंधन और अन्त्यानुप्रास (तुक) के आग्रह ने भी बोलियों के विभिन्न शब्दरूपों और क्रियापदों के रूपों को निर्बाध अपनाए जाने को प्रोत्साहित किया है। फलतः जिस कवि का अपने से पहले के कवियों का अध्ययन जितना अधिक रहा उसकी भाषा में इस व्यापक काव्यभाषा का आभिजात्य अधिक रहा और जिस कवि का ऐसा अध्ययन कम रहा उसकी रचनाओं में उसकी अपनी क्षेत्रीय बोली के

४३. मध्यदेशीय भाषा ग्वालियरी : हरिहरनिवास द्विवेदी पृ० १६०।

४४. डा० भगवानदास माहौर अभिनन्दन ग्रंथ, साहित्य संगम ग्वालियर, मूल्यांकन भाग पृ० ७१।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शब्द (संज्ञाओं, सर्वनामों, विशेषणों, क्रियाओं, और अव्ययों के रूप) अधिक रहे। यह प्रवृत्ति भी स्वाभाविक ही थी। इस संदर्भ में ध्यान में रखने की बात यह है कि प्रख्यात कवियों की रचनाए जो साधारण जनता में फैल जाती थीं, और जनता के कंठ पर चढ़ जाती थीं, उनसे सामान्य जनता भी 'भाषा' के अभिजात व्यापक रूप से परिचित होती जाती थी और फलतः सामान्य ग्रामीण जनता के लोग भी जो गीत जोड़ कर गाते थे उनकी भाषा पर भी व्यापक काव्यभाषा का प्रभाव दिखता है। इन ग्रामीण गीतों की बोली तुक मिलाने, छंद की गति बनाए रखने, आदि की आवश्यकताओं से भाषा के आभिजात्य या आभिजात्याभास को अपनाती हुई दिखती है।

इस संबंध में यह भी ध्यान में रखा जाना चाहिये कि किसी शब्द के उच्चारण में तो अन्तर सापेक्ष्य रूप में शीघ्र पड़ जाता है, परन्तु उसका लिखित रूप इतनी शीघ्रता से नहीं बदलता। काव्यपाठ में तो शब्दों के विकसित या बदले हुए उच्चारण ही किये जाते हैं परन्तु वे लिखे परम्परागत रूप में ही जाते हैं। उदाहरणतः बुन्देली काव्यों की पुरानी हस्तलिखित प्रतियों में हमें यदि 'होति जाति' ही लिखा मिलता है तो भी पढ़ने में वह 'होत जात' ही पढ़ा जाता था।

ग्रंथों की पुरानी हस्तलिखित प्रतियों के संबंध में यह भी ध्यान में रखना होता है कि प्रतिलिपिकार की अपनी क्षेत्रीय बोली का प्रभाव भी उस पर पड़ा हो सकता है। वह किसी शब्द के अपने क्षेत्रीय उच्चारण के रूप को ही प्रायः लिख जाता है। साथ ही यह भी होता है कि कुछ प्रतिलिपिकार 'आभिजात्य' के प्रति आग्रह से कभी कभी मूल लेखक द्वारा प्रयुक्त अपनी बोली के शब्द को 'आभिजात्य' का जामा पहना देते हैं। एक ही कृति की विभिन्न प्रतियों में एक ही शब्द के रूपों में जो अन्तर मिलते हैं वे बहुत हद तक प्रतिलिपिकारों की इन्हीं प्रवृत्तियों के कारण होते हैं। मूल ग्रंथ की विभिन्न प्रतिलिपिकारों द्वारा की गई विभिन्न प्रतियों में शब्दों के रूप में पड़े अन्तरों को देख कर यह निश्चित करना प्रायः कठिन हो जाता है कि मूल लेखक ने क्या शब्द रूप लिखा होगा, जब तक कि स्वयं उसके अपने हाथ की लिखी प्रति ही उपलब्ध न हो जाय।

कृष्ण कवि के सभी ग्रंथ तत्कालीन परम्परा प्राप्त परिनिष्ठित काव्यभाषा में ही हैं। यह हम पहले ही कह चुके हैं कि इन ग्रंथों, 'धर्मसंवाद', 'सतसई की टीका' और 'विदुरप्रजागर', में इस व्यापक काव्य भाषा का आभिजात्य उत-रोत्तर बढ़ता रहा है तथा उसमें सफाई भी उतरोत्तर विकसित होती गई है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कालक्रम से पहली रचना 'धर्मसंवाद' में क्षेत्रीय बुन्देली बोली का प्रभाव अपेक्षाकृत अधिक है, परन्तु ऐसा प्रभाव अन्तिम कृति 'विदुरप्रजागर' में भी कम नहीं है।

बुन्देली बोली की सामान्य प्रवृत्तियों में एक प्रमुख प्रवृत्ति यह भी है कि उसमें शब्दान्त के, ह्रस्व इकार और उकार अकार हो जाते हैं, और फिर हिन्दी मात्र की सामान्य प्रवृत्ति के अनुसार शब्दान्त या शब्दखंड के अन्त का यह अकार, यदि वह संयुक्त व्यंजन के साथ न हो तो, अनुच्चरित भी हो जाता है।

बृद्धन को सेवैं न जो, चल चित कुलहिं न सुद्ध ।

ताकी प्रीत न होइ थिर, जाकी चंचत बुद्ध ।। विदुर० ।अ०५। छंद ४०

इस दोहे में 'सुद्ध' से 'बुद्ध' की तुक मिलाई गई है, 'बुद्धि' का यह बुन्देली उच्चारण है। इसमें 'प्रीति' का 'प्रीत' भी हुआ है। परन्तु ऐसे शब्द रूप अन्य सभी पुरानी हस्तलिखित प्रतियों की भांति 'धर्मसंवाद' और 'विदुरप्रजागर' की हस्तलिखित प्रतियों में भी हैं जिनके अन्त में इकार उकार लगा है, परन्तु बुन्देलखण्ड में जो पढ़े अकारान्त ही जाते रहे हैं। धर्मसवाद में 'भीमसेन' के लिये सर्वत्र 'भिमसैनि' ही लिखा मिलता है, परन्तु पढ़ा यह 'भीमसैन्' या 'भिमसैन्' ही जाता रहा है।

इसी प्रकार

खीजै बिन अपराध, रीमैं बिन कारन जु नर

तिनके सील असाध, सरधकाल के मेघ ज्यौं। विदु०। अ०५। छंद ४२

इस सोरठे में भी 'अपराध' की तुक 'असाध' से मिलाई गई है, यह भी या तो 'असाधु' का बुन्देली उच्चारण है या 'असाध्य' का विकार,

बुन्देली बोली की ऐसी सामान्य प्रवृत्तियों के 'धर्मसंवाद' और 'विदुर प्रजागर' दोनों कृतियों में प्रचुर मात्रा में उभरी हुई होते हुए भी इन ग्रंथों की भाषा का सामान्य रूप परिनिष्ठित व्यापक काव्यभाषा का ही है, यह बात धर्मसंवाद के प्रथम अध्याय के आरम्भ से ही साफ दिखने लगती है।

दीनी सुमति गनेसजू, अब कृस्न बखानि। धर्म। अ०१। छंद २

इसमें क्रियापद 'दीनी' है, सामान्य बुन्देली का 'दई' नहीं। छंद के निर्वाह के लिये चार मात्राओं का 'दीनी' ही यहां चाहिये, तीन मात्राओं का 'दई' नहीं। परन्तु

कौन भाँति दरसन दयो, धर्मराइ नैं आइ

राव जुधिष्ठिर कौं अबै, सुन्यौ चाहिजतु ठाइ ।। धर्म०। अ०१ छंद। ११

इसमें 'दयौ' है, 'दीह्नयौ' या 'दीनौ' नहीं, क्योंकि यहां दोहे के प्रथम चरण के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्तिम शब्द को तीन मात्राओं का ही होना था, उसमें भी प्रथम वर्ण लघु और दूसरा वर्ण गुरु वाला 'दयौ' ही यहां चल सकता था, प्रथम गुरु और दूसरा लघु वाला 'दीन्ह' या 'दीन' यहां नहीं चल सकता था। चार मात्राओं वाले 'दीनौ' या 'दीह्वयौ' के लिये तो यहां अवकाश ही नही था।

ऐसे अनेक उद्धरणों को दे कर भाषा विवेचन प्रस्तुत करने से लेख अनावश्यक रूप में बढ़ जायगा, जो अभीष्ट नहीं है। दोनों ग्रंथों का पाठ सरसरी तौर पर कर जाने से ही किसी भी पाठक को यह बात स्पष्टतः दिखने लगती है कि कवि ने अपनी रचनाएं तत्कालीन व्यापक काव्यभाषा में ही प्रस्तुत की हैं। इस परिनिष्ठित काव्यभाषा में प्रयुक्त होने वाले शब्दरूपों की बहुलता इन ग्रंथों की भाषा में भी है, उसमें उत्तरोत्तर निखार अवश्य आता गया है, परन्तु क्योंकि कवि बुन्देलखण्डी है, अतः बुन्देली बोली की सामान्य प्रवृत्तियाँ भी उसकी काव्यभाषा में सदैव उभरती रही हैं और ठेठ बुन्देली शब्दरूपों का प्रयोग भी उसमें प्रचुर मात्रा में हुआ है।

'धर्मसंवाद' और 'विदुरप्रजागर' में कव्यांगों की स्थिति

काव्यरस और नीति

नीति प्रतिपादक पद्यों को काव्य कहना चाहिये या नहीं, इस संबंध में हमारे शास्त्रचिन्तकों में मतभेद भले रहा हो, परन्तु प्रायः सभी समर्थ कवियों की रचनाओं में नीतिवचन तो मिलते ही हैं, गो० तुलसीदास और रहीम जैसे समर्थ कवियों ने ऐसी पृथक नीतिरचनाएं भी की हैं जिन्हें सामान्यतः नीतिकाव्य ही कहा जाता रहा है। इस संबंध में यह बात हमारा ध्यान विशेषतः आकृष्ट करती है कि आम जनता में समर्थ कवियों के नीतिवचन ही जितन प्रचलित रहे हैं, उनके 'रसात्मकवाक्य जनता की जुबान पर उतने नहीं चढ़े। उदाहरण के लिये, रहीम के नीति विषयक दोहे सर्वसाधारण के जिह्वाग्र पर जितने रहे, उनके नायिकाभेद के बरबै उतने नहीं। उनकी चर्चा तो साहित्य के अध्येताओं के बीच ही विशेषतः रही।

ये नीतवाक्य रसात्मकवाक्यों से अधिक जनप्रिय क्योंकर हुए, इस पर विचार किये जाने की आवश्यकता है। क्या यह कहना वस्तुस्थिति के अधिक अनुरूप नहीं होगा कि हमारे मर्माहत हृदयों को इन नीतिवचनों से अभीष्ट भावतोष भी मिलता रहा है, उनसे केवल बौद्धिक जिज्ञासा की तुष्टिमात्र ही नहीं होती ? इन नीतिवचनों से हमारी बोधवृत्ति को ही नहीं, भाववृत्ति को भी, तोष मिलता रहा है। ऐसे 'नीतिकाव्यों' की उक्तियों की याद हमें बरबस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तब आती है जब हम ऐसी परिस्थिति विशेष में पड़ जाते हैं कि उनसे हमारे उद्विग्न हृदय को अभीष्ट तोष मिलता है। किसी माने हुए 'मित्र' से अभीष्ट सत्कार-व्यवहार न पाने पर हमारा हृदय जब आहत होता है, तभी हमैं रहीम की इस उक्ति की याद बरबस हो आती है :

रहिमन रहिला की भली जो परसै चित लाइ
परसत मन मैलौ करै सो मैदा जरि जाइ ।।

हमारी मनः स्थिति इस समय बौद्धिक विचार की नहीं, भावोद्वेलन की ही होती है और यह उक्ति हमें भावतोष प्रदान करती है, बुद्धितोष की ओर हमारा ध्यान ही नहीं होता। जब हम किसी विषय स्थिति में पड़ कर किसी से कुछ मांगने के लिये विवश होते हैं तो रहीम के निम्नलिखित दोहे से हमैं जो कुछ मिलता है वह भाव की ही बात अधिक है, बुद्धि की उतनी नहीं :

कोउ रहीम जनि काहु के द्वार गए पछिताइ।
संपति के सब जात हैं विपति सबै लै जाइ ।।

अथवा, रहिमन ते नर मर चुके जो कहुं मांगन जांहि।
उनते पहिले वे मुए जिन मुंह निकसत नाहिं ।।

नीति की उक्तियों से मिलने वाले ऐसे मानसिक तोष या आनन्द के संबंध में यह बात भी ध्यान देने की है कि इसकी उपलब्धि में हमैं उस प्रक्रिया की आवश्यकता नहीं पड़ती जिसे काव्यशास्त्र में साधारणीकरण की प्रक्रिया कहा जाता है। ये उक्तियां हमारे आहत हृदय पर सीधे ही सुखकारक भावलेप सा लगाती हैं और परिस्थिति विशेष में करणीय कार्य के लिये भावोत्तजन भी प्रदान करती हैं।

साधारणीकरण की प्रक्रिया के लिये अवकाश और उसकी आवश्यकता तो नाटक या काव्य में वर्णित विशिष्ट व्यक्तियों शास्त्रीय पारिभाषिक शब्दों में आश्रय–आलंबन–भूत नायक–नायिकाओं और उनके भावों–अनुभावों आदि के संबंध में ही होती है। यो कहने को नीति वचनों के संदर्भ में भी कहा जा सकता है कि उनसे मिलने वाला भावतोष हमें उनके कर्ता कवियों के हृदय से तादात्म्य करके ही मिलता है। परन्तु यह वास्तव में एक बहुत ही सीधी अनुभूति को व्यर्थ ही जटिल बनाने वाली बात होगी। हां,इससे इनकार नहीं किया जा सकता कि नीति वाक्यों में उसके कर्ताओं का रचना कौशल तो रहता ही है और वह भी हमें प्रभावित करता है।

डा० रामस्वरूप ने नीतकाव्य का विवेचन करते हुए आचार्य मम्मट की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रसिद्ध उक्ति "तदुत्तममतिशायिनि व्यंगे..." आदि के आधार पर ही नीति-वचनों में काव्यत्व का होना स्वीकार किया है और तदनुसार उनमें व्यंजना के आतिशय्य के आधार पर 'उत्तम' व्यंजना के गौणत्व के आधार पर 'मध्यम' और केवल आलंकारिक चमत्कार के आधार पर 'अवर' या 'अधम' (या सूक्ति मात्र) नीतिकाव्य की ये तीन कोटियां स्वीकार की हैं। किसी व्यंगार्थ या आलंकारिक चमत्कार के अभाव में केवल छंदीवद्ध नीतवाक्य की उन्होंने 'पद्य' मात्र माना है. काव्य नहीं।[४५]

विद्वान लेखक ने मात्र नीतिपद्य के उदाहरण के लिये यह दोहा प्रस्तुत किया है :

कहूं अनादर पाप के गुनी न करो अंदेस।
विद्या है तो करहिंगे, सब कोऊ आदेश।।

और कहा है : 'इस सुस्पष्टार्थ दोहे में न कोई व्यंग्यार्थ है, न चमत्कार अनुभव और उपदेश की बात सीधे सादे दोहा छंद में कह दी गई है। अतः यह दोहा काव्य व सूक्ति नहीं माना जायगा, नीतिपद्य ही कहा जायगा।[४६] विद्वान लेखक का यह भी मत है कि "नीतिकाव्यों पर दृष्टि निक्षेप से विदित होता ह कि उनमें पद्य और अवर काव्य की अपेक्षा उत्तम और मध्यम काव्य कम हैं।"[४७] यह बात काव्य के संबंध में विद्वानों में मान्य परंपरागत दृष्टि से बहुत ठीक है। परन्तु काव्य में कवि के रचनाकौशल और काव्यांगों संबंधी उसके प्रदर्शित ज्ञान के आधार पर ही नहीं, काव्य में आम जनता की आशा–आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति और उससे प्राप्त होने वाले भावतोष और भावबल

---

४५. "काव्य की आतमा व्यंग्यार्थ है, इस लिये काव्य का उत्कर्ष अपकर्ष व्यंग्यार्थ की अधिकता या न्यूनता पर निर्भर है। जिन काव्यों में व्यंग्यार्थ वाच्यार्थ से अधिक चमत्कारक होता है उन्हें उत्तम या ध्वनि काव्य, जिसमें व्यंग्यार्थ वाच्यार्थ की अपेक्षा विशेष चमत्कारक नहीं होता उन्हें मध्यम या गुणीभूत-व्यंग्य, और जिनमें व्यंग्यार्थ का सर्वथा अभाव रहता है उन्हें अधम या अवर काव्य कहते हैं। अधम काव्य के दो उपभेद अर्थचित्र और शब्दचित्र हैं जिनमें क्रमशः अर्थालंकार और शब्दालंकार का ही विशेष चमत्कार दृष्टिगत होता है। जिस रचना में व्यंग्यार्थ व अलंकारों का सर्वथा अभाव हो, बात छंद मात्र में व्यक्त कर दी गई हो, उसे तो पद्य ही कहा जायगा, काव्य नहीं।"
हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, सप्तम भाग, नागरी प्रचारिणी सभा काशी पांचवां खंड, नीतिकाव्य का स्वरूप, पृ० ४७६।

४६. हि० सा० बृ० इ० पृ० ४७७,४७८।

४७. वही पृ० ४७६।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के आधार पर भी काव्य समीक्षा की जाना और उससे प्राप्त सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया जाना भी इस जनयुग में अभीष्ट हो गया है। यदि हम आम जनता की दृष्टि से देखें, केवल अभिजात वर्ग और सामन्ती युग के काव्यशास्त्र में परंपरागत दृष्टि से निष्णात विद्वानों की दृष्टि से ही नहीं, तो हमें स्वीकार करना पड़ेगा कि इन नीतकाव्यों से जनता को न केवल 'अनुभव और उपदेश' की बात ही मिलती है, अपितु उनसे भावतोष और भावबल भी मिलता रहा है, जैसा कि हम ऊपर देख आए हैं। प्रस्तुत दोहे के संबंध में भी यही बात है।

'काव्यरस' से पृथक एक 'कथारस' की उपस्थिति को स्वीकार किया जाता है। कथा में कथाकार का ध्यान घटना विकास में श्रोताओं और पाठकों की मनोरम उत्सुकता बनाए रखने पर ही केन्द्रित होता है। घटना विकास संबंधी इस मनोरम उत्सुकता को ही तज्ज्ञों ने 'कथारस' कहा है। ...कथारस श्रोताओं को आगे का वृत जानने के लिये उत्सुक करता है। कथा सुनते हुए उनके मन में रहता है : "हूं आगे क्या हुआ ?" काव्यरस श्रोताओं की कुशल भावाभिव्यक्तियों से, चमत्कार आदि से मिलता है। काव्य सुनकर वे कहते हैं : 'अहा, इसे फिर कहिए।' काव्यरस कहता है : 'ठहरो, आनन्द लेने दो।' कथारस कहता है : 'आगे बढ़ो।'।[४८]

नीति रस

इसी प्रकार नीतिकाव्य का अपना कुछ अलग ही 'रस' रहता है। इसे 'नीतिरस' कहा जा सकता है। परंपरागत रस-विवेचन की दृष्टि से काव्यरस की अनुभूति निर्विकार या प्रसुप्त–विकार सहृदय के चित्त में भावविकार के उत्पन्न या जागृति होने से होती है, 'नीतिरस' की अनुभूति परिस्थिति विशेष में आहत हृदय पर सुखद भावलेप जैसे रूप में होती है। काव्यरस की अनुभूति के लिये भी तदनुकूल परिस्थितियां अपेक्षित होती हैं। यदि हम किसी प्रियजन का शवदाह करने के लिये जा रहे हों तो किसी भी रससिद्ध कवि की श्रृंगार रस की उक्ति उस परिस्थिति में हमें श्रृंगार रस की अनुभूति नहीं करा सकती। नीतिरस का भी अनुभव हमें उसके लिये अनुकूल परिस्थितियों में ही होता है, परन्तु होता अवश्य है और रसानुभूति जैसी भाव की तीव्रता और गहराई से ही होता है, भले हम उसे परंपरासम्मत नव रसों में से किसी भी रस की कोटि

४८. स्वलिखित 'रामदास नेमा कृत' 'उषा अनिरुद्ध की कथा' की भूमिका से उद्धृत।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में न रख सकें। रस के आधार औचित्य की अनुभूति तो उसमें मनोरम रूप में होती ही है।

कविवर देव की प्रसिद्ध उक्ति है :

अभिधा उत्तम काव्य है मध्य लक्षणालीन।
अधम व्यंजना रसविरस उलटी कहत नवीन।।

इसके संबंध में भले और जो भी कहा जाय, परन्तु यह मानना पड़ेगा कि साधारण जनता के लिये नीतिकाव्य की रचना के संबंध में इसे आदर्श निर्देश माना जा सकता है। अभिधा से होने वाली सीधी सरल अर्थ प्रतीति के अभाव में नीति की बात एक अबूझ पहेली बन जा सकती है।

कृष्ण कवि के 'धर्मसंवाद' और 'विदुर प्रजागर' नीतिकाव्य ही हैं। उनका प्रतिपाद्य नीति ही है, काव्यरीति संबंधी कौशल प्रदर्शित करना उनका लक्ष्य नहीं है। जिन राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों में ये रचनाएं प्रणीत और प्रस्तुत की गई थीं उन्हें हम पहले देख ही चुके हैं और परख चुके हैं कि ये प्रबधरचनाएं प्रबंधव्यंजना से शून्य नहीं हैं, प्रत्युत् उनकी व्यंजनाएं जनता के लिये अभीष्ट उद्‌बोधन और भावबल से समृद्ध हैं। ये व्यंजनाएं समग्र ग्रंथ के वाच्यार्थ से कहीं अधिक महत्वपूर्ण और अतिशार्ययनी हैं। अतएव इस दृष्टि से भी ये प्रबंध-रचनाएं उत्तम काव्य कही जाने की पात्र हैं।

अनुवाद की सफलता

ये दोनो रचनाएं मूल संस्कृतग्रंथों के भाषापद्यानुवाद हैं। सामयिक विशिष्ट राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियों में जिस नये अभीष्ट भावबल की आवश्यकता होती है वह आम जनता को किसी कवि की किसी मौलिक कृति की अपेक्षा इन अनुवाद-रूप कृतियों से अधिक सरलता से मिलता है, इस बात को हम ऊपर देख चुके हैं।[४९] यहां इन अनुवादप्रबंधों के संबंध में यह बल दे कर कहे जाने की आवश्यकता है कि इन अनुवाद-ग्रंथों की सफलता इस बात से नहीं आंकी जाना चाहिये कि उनमें मूल संस्कृत ग्रंथों का किस हद तक अक्षरश: अनुवाद प्रस्तुत हुआ है, प्रत्युत् इस बात से आंकी जाना चाहिये कि वे अभीष्ट नीति की बात किस हद तक प्रस्तुत कर सके हैं और अभीष्ट भावबल प्रेरित करने की उनमें कितनी शक्ति है।

अनुवाद में मूल संस्कृत पाठ की कुछ बातें छूट जाना, कुछ ऐसी बातों का

४९. देखिए पृ० २३।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुवाद में सन्निवेश हो जाना जो मूल पाठ में नहीं हैं, मूल की अनेक बातों का सारांश और संक्षेप में कथन तथा कुछ बातों का बढ़ा कर विस्तार से कथन, मूल में जिस बात पर बल दिया गया है अनुवाद में उस पर बल न दिया जाना और किसी अन्य बात पर बल दिया जाना, ये सब विशुद्ध अनुवाद की दृष्टि से 'दोष' हैं। परन्तु जिन सामयिक उद्देश्यों की प्रेरणा से ऐसा इन अनुवाद–ग्रंथों में होता है। उन्हें देखते हुए ये 'दोष' दोष न रह कर अपने विशिष्ट लक्ष्य की दृष्टि से 'गुण' भी हो सकते हैं और इन अनुवाद कृतियों के मूल्यांकन में इन 'दोषों' की न केवल उपेक्षा की जा सकती है। प्रत्युत उनमें 'गुण' भी देखे जा सकते हैं।

हम यह नहीं कहते हैं कि विदुर नीति का कृष्ण कवि कृत भाषापद्यानुवाद अनुवाद की दृष्टि से सर्वथा दोषमुक्त है। जहां अनुवाद मूलानुसारी नहीं हुआ है ऐसे विशेष ध्यान आकृष्ट करने वाले स्थलों का संकेत हमने पाठ संपादन में पाद टिप्पणियों में कर दिया है, अतः हम यहां उनकी चर्चा नहीं कर रहे हैं। इसके संबंध में डा० रामस्वरूप जी का यह मत ठीक है कि "टीका सुन्दर है परन्तु पद्यशः प्रस्तुत नहीं की गई है, जिससे मूल कीं कई बातें छूट गई है।"[५०] मूल का कुछ छूट गया है, कुछ बढ़ भी गया है, कुछ का विस्तार हो गया है, कुछ का संकोच भी हुआ है, कुछ पर अधिक बल पड़ गया है, कुछ पर बल कम भी हो गया है। परन्तु जिस सामयिक राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक चेतना से प्रेरित होकर कवि ने यह अनुवाद प्रस्तुत किया है वह किस रूप में और श्लाघ्य है और उसमें कवि किस प्रकार सफल हुआ है इसे हम ऊपर देख चुके हैं।[५१]

छन्द

'धर्मसंवाद' और 'विदुर प्रजागर' दोनों ग्रंथों में विविध छंदों का प्रयोग हुआ है। इनमें मात्रिक और वर्णिक, सम अर्द्धसम और विषम तथा साधारण और दंडक सभी प्रकार के छंद हैं। धर्मसंवाद केवल चार सर्गों की अपेक्षाकृत छोटी सी रचना है, परन्तु विदुर प्रजागर नौ सर्गों की अपेक्षाकृत बड़ी रचना है। अतः 'विदुर प्रजागर' में 'धर्मसंवाद' की अपेक्षा अधिक छंदभेदों का प्रयुक्त होना स्वाभाविक हुआ है। 'विदुर प्रजागर' की रचना के समय कृष्ण कवि

५०. हि० सा० वृ० इ० भाग ७ पृ० ४९६।
५१. देखिए पृ० ३२।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'बिहारी सतसई की टीका' में लिखकर पर्याप्त कवियश अर्जित कर चुके थे। अतः प्राप्त कवियश की रक्षा के लिये तत्कालीन परिस्थितियों में विविध छंदों पर अपना अधिकार प्रदर्शित करने की प्रवृत्ति भी उनके लिये स्वाभाविक थी। छंदों की विविधता के लिये यह भी कारण हो सकता है कि अनुवाद करते समय मूल संस्कृत के कथ्य को जिस छंद में रखना कवि के लिये मुकर हुआ, उसी छंद में उसका अनुवाद उसने प्रस्तुत किया होगा। इस संबंध में उनका कवियशः प्रार्थी होना इस बात से भी सिद्ध होता है कि अपनी पहली ही रचना 'धर्म-संवाद' में भी वह अपने आपको 'कवि' ही कहता है : "अत्र भाषा कवि कृष्ण कहि बांचतु है सब कोइ" और "कवि वासी भांडेरि के"।

निश्चित रूप में भक्तिकाल के 'रामचरित-मानस-कवि तुलसी' की भांति रीतिकाल के कवियों की वृत्ति 'कवि न होउँ नहिं चतुर कहाऊँ' में व्यक्त कवि-यश के प्रति व्यक्त उदासीनता की नहीं रही। रीतिकाल के कृष्ण कवि भी इसके लिये अपवाद नहीं हैं। यदि कृष्ण कवि (या कवियों) ने अपने 'धर्मसंवाद' और 'विदुर प्रजागर' में विविध छंदों का प्रयोग न किया होता तो उन्हें गुरु-कुलक्लिष्ट, काव्य शिक्षा प्राप्त कवि न समझा जा कर 'जनकवि' ही समझा जा सकता था। संस्कृत मूल से भाषापद्यानुवाद होने के कारण 'धर्मसंवाद' और 'विदुरप्रजागर' में काव्यकला संबंधी यश को तो उनके द्वारा विविध छंदों का प्रयोग ही प्रथित करता है। कवियशः प्रार्थी होने पर भी कृष्ण कवि आम जनता के लिये सामयिक राजनीतिक सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों में उपा-देय और समुचित उद्‌बोधनपरक संस्कृत ग्रंथों का अनुवाद जनता के लिये सुगम भाषा में करने के लिये प्रवृत्त हुए इसके लिये हमैं उनकी प्रशंसा ही करनी चाहिये।

'धर्मसंवाद' में मात्रिक सम छंदों में तोमर (प्रतिचरण १४ मात्राएं), चौपई (१५ मात्राएं), चौपाई (१६ मात्राएं), अरिल्ल (२१ मात्राएं), हरि गीतिका (२८ मात्राएं), वीर (३१ मात्रायें), अर्द्धसम में दोहा दोहरा, सोरठा और विषय में कुंडलिया और छप्पय (छपद) प्रयुक्त हुए हैं। सामान्य सम वर्णिक छंदों में प्रमाणिका, भुजंगप्रयात, तोटक, सवैये और दंडकों में कवित्त (घनाक्षरी) का उपयोग हुआ है। जिन हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर यहां यह सब पाठ प्रस्तुत किया गया है उनमें छंदों के नामनिर्देश के संबंध में कुछ गड़बड़ी हुई दिखती है। हो सकता है इसका कारण प्रतिलिपिकारों का प्रमाद मात्र रहा हो। धर्मसंवाद का पहला मंगलाचरण का छंद ही ३१ मात्राएं प्रतिचरण वाला 'वीर' छंद है परन्तु उसे 'दंडक' लिखा गया है जब कि मात्रिक छंदों में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३२ मात्राओं से अधिक वाले छंदों को ही दंडक कहा जाता है। इसी प्रकार प्रतिचरण १५ मात्राओं की चौपाई और १६ मात्राओं की चौपाई में भेद नहीं किया गया है और चौपई के साथ चौपाइयों की पंक्तियों को मिला भी दिया गया है। इसी प्रकार 'दोहा' और 'दोहरा' में भी भेद नहीं किया गया है। इसमें सवैयों को भी कवित्त कहा गमा है (जैसे कि इस काल की प्रायः सभी हस्तलिखित प्रतियों में सामान्यतः देखा जाता है) और 'कवितु' छंद नाम दे कर सवैये और घनाक्षरी दोनों एक साथ भी लिखे गये हैं। (पृथ्वीराज राससो) जैसे अधिक प्राचीन समझे जानेवाले ग्रंथों में 'कवित' छप्पय के लिये लिखा मिलता है, भक्ति और रीतकाल की हस्तलिखित प्रतियों में वह सवैयों के लिये और तदनन्तर रीतिकाल में ही घनाक्षरी रूपघनाक्षरी आदि के लिये रूढ हो गया दिखता है) चार यगण बाले भुजंगप्रयात को धर्मसंवाद में भुजंगी लिखा गया है जो तीन यगण और एक लघु गुरु इस प्रकार १५ वर्णवाला ही छंद है। नराच या पंचचामर लघु गुरु लघु गुरु इस क्रम से १६ वर्णो का छंद है और लघु गुरु लघु गुरु के क्रम से ८ वर्णों के प्रमाणिका छंद से नराच दुगना होता है। धर्मसंवाद में २ प्रमाणिका वृतों को एक में मिला कर उसे नराच (नराज) छंद लिखा गया है (देखिये धर्मसंवाद वि० १ छंदांक ६१) संयुता (संजुता) छंद का लक्षण भिखारीदास जी ने अपने छंदार्णव में 'ललगालगाललगालगा' दिया है। धर्मसंवाद में इस नामसे दो वार छंद प्रस्तुत हुआ है परन्तु उसमें इस लक्षण का निर्वाह नहीं हुआ है :

'तुम पूछियौ हमकों अबै। यह बरनिहैं देखौ अबै।
नहिं पाप कौं मन में डरैं। नर नरक मांझै ते परैं। धर्म० ३।७०

इसमें द्वितीय और चतुर्थ चरणों की गणव्यवस्था उपर्युक्त लक्षण के अनुसार नहीं है। हो सकता है कि ये चरण क्रमशः 'यह बनिहौं लखियौ सबै' और 'नर नर्क मांझहिं सी परैं' रहे हों और प्रतिलिपिकारों के प्रमाद से ही उनमें यह दोष आ गया हो। इसी छंदांक धर्म० ३।७० अन्तर्गत जो अन्य 'संजुता' छंद है वह उपर्युक्त लक्षण के अनुसार निर्दोष है। परन्तु इसके अन्तर्गत १८ चरण ही है, इस प्रकार साड़े चार छंद ही है, हो सकता है कि प्रतिलिपिकारों के प्रमाद से दो चरण छूट गये हों। आगे चौथे सर्ग में ४०,४१ छंदांक के अन्तर्गत वास्तव में तीन 'संयुता' छंद है और वे उपर्युक्त लक्षण के अनुसार निर्दोष ही है।

विदुरप्रजागर

हम ऊपर यह नोट कर ही चुके हैं कि 'विदुरप्रजागर' की छंद समृद्धि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'धर्मसंवाद' से कहीं अधिक है। इसमें मात्रिक छंदों में धर्मसंवाद में प्रयुक्त हुए छंदों के अतिरिक्त रोला, पादाकुलक, समानसवैया ३२ मात्राएं प्रति चरण जिसे 'बड़ी चौपही' कहा गया है), त्रिभंगी और पद्मावती आदि का भी उपयोग हुआ है। वर्णिक सम छंदों में मालती, मल्लिका, उपेन्द्रवज्रा .पजाति, दोधक, तोटक, मुक्तादास, तारक, मालिनी, पंचचामर (नरा) आदि का भी प्रयोग किया गया है। विदुरप्रजागर की प्रतियों में भी छंदों के नामनिर्देश में कुछ प्रमाद हुआ दिखता है। बहुत संभव यही है कि यह प्रमाद छंदशास्त्र से अधिक परिचय न रखने वाले प्रतिलिपिकर्ताओं से हुआ होगा।

उदाहरण के लिये हस्तलिखित प्रतियों में पाठ यह प्राप्त है :

खेल जुवा गहि केस सभा में द्रौपती आनी।

मैं तुमसों कर जोरि करी बिनती सु न मानी ।। विदुर० ६।२१

इसे 'सुन्दरी' छंद कहा गया है। स्पष्ट है कि यह शब्द वास्तव में रोला है।

छंदनाम संबंधी कुछ ऐसी त्रुटियों को कहीं तो पाठसंपादन में शुद्ध कर ही दिया गया है, कहीं उनकी सूचना पादटिप्पणियों में दे दी गई है। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रतिलिपिकारों ने 'त्रिभंगी' और 'पद्मावती' को एक ही छंद समझ लिया है और उसे कहीं 'त्रिभंगी' तो कहीं 'पद्मावती' नाम उनके भेद को समझे बिना दे दिया गया है।

'जो पर घर जारै बिस दै मारै, सोमबल्ल दै लेय धनै' आदि विदुर-प्रजागर के चौथे सर्ग के ५१ वें और ५२ वें संख्या के छंदों को पाठ में 'त्रिभंगी' लिखा गया है, परन्तु यह छंद 'पद्मावती' है, 'त्रिभंगी' नहीं। समान गति के ऐसे छंदों के संबंध में छंदों से अधिक परिचय न रखनेवालों से ऐसा प्रमाद हो ही जा सकता है।

इसी प्रकार अंबिकातनै तबै विचार चारु यों कियौ। वि० १।५६ इसे चंचला छंद कहा गया है। आचार्य भिखारीदास जी ने इस छंद का जो लक्षण अपने छंदार्णव में दिया है उसके अनुसार इसके अन्त में एक लघु वर्ण और होना चाहिये था। उसके अभाव में यह 'चामर' छंद है।[५२]

इसी प्रकार 'जीवत चोर प्रमतन सौं अरु वैद जियै जुत रोगन सौं' वि० २।२५ को 'चकोर' सवैया लिखा गया है, परन्तु यह 'मदिरा' है। 'मदिरा' के

५२. भिखारीदास, प्रथम खंड, छंदार्णव, संपादक विश्वनाथप्रसाद मिश्र ना० प्र० स० काशी पृ० २३९।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्त में एक लघु वर्ण बढ़ाने से 'चकोर' बनता है।[५३]

विदुरप्रजागर की इन आधारभूत प्रतियों में सवैया को कवित्त नहीं कहा गया है, जब कि धर्मसंवाद में ऐसा आम तौर पर हुआ है। यह स्पष्ट है कि धर्मसंवादकर से 'विदुरप्रजागरकार' का छंदोज्ञान समृद्धतर है, छंदनिर्माणकौशल भी अधिक विसित है, प्रयुक्त छंदों की संख्या भी अधिक है और रचना में अपेक्षाकृत अधिक कौशल और सफाई है।

आवश्यक लिपि-संकेत

छंद के संबंध में यहां यह भी नोट कर लेना चाहिये कि कृष्ण कवि ने भी अन्य सभी की भांति दीर्घ के लघु उच्चारण और लघु के गुरु उच्चारण की सुविधा से भी काम लिया है। जैसे 'बड़े त दीरघ नैन' यह तोमर छंद की १२ मात्राओं की पंक्ति है, इसमें 'बड़े' का 'ब' यद्यपि ह्रस्व है परन्तु छंद की आवश्यकता और गति-वशात् उसका उच्चारण गुरु है। पूज्य आचार्य विश्वनाथ-प्रसाद मिश्र जी ने मुझे कृपापूर्वक बताया है कि पुराने लिपिकार प्रायः वर्णो को दित्व रूप में लिखना टाल जाते थे और अगले वर्ण के द्वित्व होने का संकेत वे उसके पहले के वर्ण के ऊपर एक खड़ी रेखा लगा कर देते थे। जैसे 'वेड़े' बड्डे के लिये लिखा जाता था और फिर उस खड़ी रेखा को छोड़ भी दिया जाने लगा था। इस प्रकार 'बड़े' 'बड्डे' के लिये ही लिखा जाता था, संयुक्त वर्ण के पूर्व का ह्रस्व को छंद शास्त्र के 'संयुक्ताद्यं दीर्घं...' के अनुसार ऐसे संयुक्त वर्ण के पूर्व का ह्रस्व वर्ण गुरु हो ही जाता था।

'पदान्तस्थं विकल्पेन' के अनुसार अन्त के ह्रस्व वर्ण का आवश्यक होने पर गुरु पाठ होता है और फिर मात्रिक छंद में भी उसकी दो मात्राएं ली जाती हैं, जैसे : "कहि किस्न सुफल जीवन जुगत जग कीरति जागत जिमि", उल्लाला के इस द्वितीय चरण में १३ मात्राएं 'जिमि' के 'मि' का गुरु उच्चारण और उसकी दो मात्राएं ले कर ही पूरी होती हैं। धर्मसंवाद और विदुरप्रजागर के पाठ को पढ़ते समय इस बातों का ध्यान रखा जाना आवश्यक है, ऐसा न करने पर कहीं कहीं व्यर्थ ही छंदोभंग दोष दिख सकता है।

अलंकार

हम देख चुके हैं कि 'धर्मसंवाद' और 'विदुरप्रजागर' दोनों ही ग्रंथों का निर्माण विशिष्ट राजनीतिक परिस्थितियों में जनता के उद्वोधन के लिये जनता

---

५३. काव्य प्रभाकर भानु कवि ना० प्र० सं० काशी पृ० ४६।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के श्रद्धाभाजन ही सकनेवाले संस्कृत ग्रंथों के भाषापद्यानुवाद के रूप में हुआ हैं। वे अलंकार–कौशल के प्रदर्शन में रुचि रखने वाले काव्यकलाप्रेमी पंडितों को नहीं, सर्व साधारण जनता, 'सब कोइ' को ही संबोधित हैं। अतः इन ग्रंथों में अलकार जनता के लिये अवगम्य सरल भाषा के आवश्यक अंगों के रूप में आए हैं। सभंगपद और अभंगपद श्लेष जैसे अलंकारों के लिए इस में अवकाश ही नही है। 'यमक' का उपयोग भी कहीं हुआ है तो इसी प्रकार कि भाषा की सरलता और प्रवाह में कोई रुकावट न पड़े।

'काहे तैं परत नर नरक मझार देखौ, (धर्म० ३।८)
'कैयौ लोक लोकपालै प्रगट ही धार है। (धर्म० ३।५८)

जैसी सरल पंक्तियों में 'यमक' अलंकार आया अवश्य है परन्तु साग्रह लाया गया कहीं नहीं दिखता। शब्दालंकारों में 'वृत्यानुप्रास' और 'छेकानुप्रास' आदि की स्थिति भी इन कृतियों में ऐसी ही है।

'देखिए दुर्बल दीन महा जिन्हैं दारिदु बारा ही बार सतावै (धर्म०३।१८)
'तारन तरौवर जुगै जुग जु जानियतु……' (धर्म०३।५८)

जैसी पंक्तियाँ छेकानुप्रास और वृत्यानुप्रास–मयी हैं अवश्य, परन्तु ये अलंकार उनमें साग्रह नियोजित नहीं ही दिखते। सरल स्वाभाविक भाषा के प्रवाह में अपने आप चले आए ही दिखते हैं।

अर्थालंकारों में उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, व्यतिरेक जेसे समतामूलक अलंकारों का ही उपयोग हुआ है और सरलता से हुआ है।

उपमार (धर्मलुप्ता) : दारैं पयौं छुधारथी, आपुन भीतर खाइ।

अन्न गऊ के मांस सम, सुरापानि जलु आइ ॥ धर्म०३।११। उपमार पूर्ण। :'ताही समै यौं वड़ौ तन अंबर ज्यौं उमगै परवाह कौ पानी। विदुर; १।१२२

उत्प्रेक्षा : वहु भांति लसै कर की पुतरी। अब ही जनु ये नभ तैं उतरी। विदुर० हियैं भूर सुख पुंज बिहारे। मनहुंप्रान मृत देहन धारे विदुर०१।८०

सकुन कुमंत्री मिलौ मनौ पावक घृत नायौ विदुर० १।१०८

व्यतिरेक : छुटै धनुष तैं बान, हनै कै एकहिं ना हनै।

बुध सर बल मतवान, हनै राजकुल देस जुत ॥ बिदुर०२।३७

प्रतीप : प्रभा कहां लौं कहिए सभा की। लहै सुधर्मा समता न ताकी विदुर०१।६६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामान्य निरंग रूपक भाषा के प्रवाह में ही आए हैं जैसे 'बुधसर वल मतबान' में बुध (बुद्धि पर सरा शर) का आरोप किया गया है। ऐसे अलंकारों के संबंध में यह ध्यान में रखने की आवश्यकता है कि ये अलंकार मूल संस्कृत में ही आए हैं और कृष्ण कवि ने यहाँ उनका अनुवाद मात्र ही प्रस्तुत किया है। सांग रूपक का उपयोग एक दो जगह ही हुआ है और वहाँ वह बड़े मनो–रम रूप में कथ्य को बल देता हुआ ही आया है, जैसे :

झूठ मुसाहिब्र, पाप अमीन, दिवान दगा, तिहिकौ उनमानौ ।
लालच सैन्यापती जिहिकौ, अपकीरति नेतनगारिन बानौ ।।
क़िस्न कहै पटरानी वहै कुमतै किनि क्रोधनि पुत्र बखानौ ।
राव जुधिष्ठिर जू सुनियौ तुम लोभ कौ एतौ लबाजमा जानौ ।।
धर्म० ४।१९

संवाद में जहां आक्षेपयुक्त बात की आवश्यकता होती है वहाँ 'काकुव–क्रोक्ति' बड़ी स्वाभाविक रूप में आती है, जैसे जरासंघ के छद्मवेषधारी कृष्ण भीम और अर्जुन के प्रति इस कथन में :

बड़े बंस छत्री बड़ी लाज धारी । भली भिच्छकी वृत्ति जी में विचारी ।।
धर्म० १।८८

नीतिकाव्य में उल्लेख, दीपक, तुल्ययोगिता जैसे अलंकारों के स्वाभाविक रूप में आने के लिए बहुत अवकाश रहता है। तुल्ययोगिता अलंकार का इन कृतियों में प्रचुर मात्रा में उपयोग हुआ है, परन्तु बड़े ही सरल रूप में अर्थ की प्रासादिकता और भाषा के प्रवाह को भली भाँति बनाए रख कर :

होम करै बिन मंत्रहि जे अरू जे बिन हू तिल पिंड पराबैं ।
जे निरवै निज पुन्न सबै, अपनौ जस बार ही बार बताबै ।
क़िस्न कहै कवि कूप तडाग लगावत औरिन का काम न आवै ।
राव जुधिष्ठिर जू सुनियौ तुम ए इतने फल कौं नहिं पावै ।। धर्म०३।३१

वह परचंड रूप होत गुन आपनै ।। ई यह परचंड वेदभेदन पढोई है ।
वह देत वार द्रुम डंडन कौ बनु देखौ, यह करै छार और कुमति किनि सोई है ।।
दुज और दावानल एक सम दोई हैं धर्म०४।७०

दुरबल साधन–हीन जुद्ध सबले हस मंढै
सर्वसु जाकौ हरै कोइ अरु सोच न छंडै
पर तिय सौं रत करै कामकेलसिह चित लाबै
नित हरै पर दरब इनहिं निस नींद न आबै ।। विदुर०२।११

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वै जन ये या जगत में लहैं न सौभासाज ।
उद्दिम तजै ग्रहस्त अरू जती करै बहु काज ।। विदुर० २।५६

उल्लेख : निरबल कौ बल जानिअै, अनबोलत के बैन ,
जिनकौ जग सूझै नहीं, तिनके राजा नैन ।। धर्म० ३।९

पदार्थावृति दीपक :

चोरन कौ बलु बौलिबौ झूठु सु बालक कौ बल रोइ बतायौ ।
पंछिन कौ बलु आइ अकासु सु मीननि कौ वल जौ जलु पायौ ।।
ब्राम्हन कौ बलु वेद पढ़ै, पुनि मूरिख कौ बलु मौन ही आयौ ।
है सब कौ सब ई बल किस्न सु धर्म ही कौ बल सांच है ठायौ ।।
धर्म० ३।८

द्वैस को दीपक है किनि भान, सु रात कौ दीपक चंद्रमा होई ।
देह कौ दीपक है किनि ग्यान, यहै पुनि जानहु जू सब कोई ।।
किस्न कहै कवि तीन हू लोकिन दीपक धर्म वतावत सोई ।
राव जुधिष्ठिर जू सुनियौ कुलदीपक पुत्र सुपुत्रहि होई ।। धर्म०४।८०

आश्चर्य के भाव के साथ सन्देह अलंकार का मनोरम और स्वाभाविक रूप में प्रयोग हुआ है :

हौ अग्नि, बरून, विरंचि कैधौ संकरै जू हौ सही ।
कै किस्न आपैआपु आए जानियै जिय में यही ।
गुर सुरनि के सुरपति कैधौ चंद्रमा कै भान हौ ।
वसु वेद मूरितवंत मानौ गौरिनंद निदान हौ ।। धर्म० ४:३०

उसी प्रकार आश्चर्य के साथ विषम (तृतीय) यह प्रयोग भी अपनी स्वाभाविक के लिए दर्शनीय है ।

अधिक खर्च ज्यौं ज्यौं करै घृतराष्ट्र उ कौ नंद ।
दरब उमग त्यौं त्यौं बढत निरखि खिस्यानौ मंद ।। विदुर०१।१०१

बिहारी सतसई के टीकाकार कृष्ण कवि से यह अपेक्षा तो थी ही कि वह अलंकारों के प्रयोग के संबंध में बिहारी की इस युक्ति से प्रभावित हों :

लख न परत समान दुति कनक कनक से गात ।
भूषन कर करकस लगत परस पिछाने जात ।

और मानहु वा तन अच्छ छवि स्वच्छ राखिवे काज
दृग पग पौंछन कौं किए भूषन पायंदाज ।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आम जनता के लिए रसलता से बोध्य नीतिकाव्य के रचयिता कृष्ण कवि ने कहीं भी अपने कथ्य को अलंकारों से बोझिल नहीं होने देने का ही प्रयास किया है, ऐसे अलंकारों का सायास उपयोग नहीं ही किया जो कथ्य पर बोझ बन कर आम जनता के लिये उसे दुर्बोध्य अतः व्यर्थ ही कर दें। हम कहते हैं कि वह इसमें पूरी तरह से सफल हुए हैं। संस्कृत मूल में आए अलंकारों का उन्होंने जहां तक हो सका उन्हें बनाए रख कर ही अनुवाद किया है, जहां बदला भी है वहां कथ्य की सुगमता और मनोरमता का ध्यान रखा है :

'इंद्राय स प्रणमते, नमते यो बलीयसे' में निदर्शनालंकार है। इसका अनुवाद किया गया है : 'लहत इंद्र कौ भोग जे नमत बली सौं आन' में निदर्शनालंकार भी माना जा सकता है, और ऐसा अर्थ लेकर कि नमस्कार बली को किया जाता है, परन्तु 'भोग' (प्रसाद) इंद्र से से पाया जाता है इसमें असंगति अलंकार भी माना जा सकता है।

आधारभूत हस्तलिखित प्रतियों का परिचय

धर्मसंवद–

धर्मसंवाद की एक हस्तलिखित प्रति श्री हरगोविन्द गुप्त चिरगांव, जिला झांसी से प्राप्त हुई। इसकी लम्बाई २१'५ सेंटीमीटर हैं जिसमें लिखित भाग हाशिया छोड़ कर १६'५ सें० है। चौड़ाई १६'५ सें० और उसमें लिखित भाग १० सें० है। लिखाई चौड़ाई में है। इसमें ५२ पन्ने यानी १०४ पेज हैं। प्रति की अवस्था जीर्ण है। ऊपरी दाहिनी कौने पर कुछ भाग कभी फट गया होगा, अतः उसमें कागज चिपका कर फटे भाग में रहे लेख को लिख दिया गया है और इस प्रकार पाठ पूरा कर लिया गया है। अन्त के कुछ पन्ने नीचे वांए कौने पर फटे हुए हैं, परन्तु उन्हें कागज चिपका कर सुधारने का प्रयास नहीं किया गया दिखता, संभवतः इस लिये कि उससे पाठ का कोई भाग नष्ट हुआ नहीं समझा गया होगा।

इस हस्तलिखित प्रति के पहले पेज की यथाप्रति प्रतिलिपि इस प्रकार हैं :

श्रीगनेशायनमः ।। श्रीसरस्वृतीन
म : ।। अथधर्मसंमाधलिष्यते ।।
दंडकु ।। ऐकदंतग जवदनविरा
जैसुंदरताईउ रहउदार ।। अ
धिकविराजमानदेवनि मैं इ्दी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वरऊपरअयवार ।। तुम हीप्रथ
मजग्य की पूजासु निकरिवेदनि
नक्श्रविचार ।। श्रीगनेसगवरी के
नदनतुमहीसवहिसि द्विदा
तार ।।१।। दोहा ।। प्रथमहिमुमि
रिसरस्वतीवसी कंठ मैं आनि
दीनी सुमतिग नेसजूअव कवि
कस्नवषानि ।।२।। रावदुदिष्टल

धर्मसंवाद का अन्तिम पृष्ठ इस भांति है :

सातअैसत्य कहैंवचनैसी हियाकेसुनैंइतने
फलपावै ।।९६।। सोरठा ।। अैसौहीपरिमान
फलपावैंजगिनिकरै ।। ताकौउपजैग्यान ।।
जोयाकौवाचैमुनै ।।९७।। इतिश्रीधर्मसमाधे
ग्यानप्रभाववर्ननंधर्मदु दिष्टसंवादे अत्यक्ष
दर्सनोनामचतुर्थमोविलास ।।४।। वैसाष
वदि७भौमेसंवतु १८०३ मुकामुऔडछौ ।। लि
षतं प्रधानस्यामजू ।। जथाप्रतितथालिष्यते ।।
मामोदोषीनदीयते ।। अथठाकुरदासकीसा
षीलिष्यते ।। कामीकलहलोभसौप्रीति

कृष्ण कवि ने धर्मसंवाद की रचना संवत् १७७५ वि० में की थी और यह प्रति ओरछे में १८०३ वि० में उतारी गई है। इस प्रकार यह रचना के वाद केवल २८ वर्ष बाद की गई प्रतिलिपि है। बहुत संभव है यह कृष्णकवि के जीवनकाल में ही उतारी गई हो। कृष्ण कवि की अन्तिम ज्ञात रचना 'विदुर-प्रजागर' सं० १७९२ की है। इसे यह धर्मसंवाद की 'क' प्रति कहा गया है।

इसकी एक अन्य प्रति पं० कृष्णलाल पांडे (अध्यापक सरस्वती पाठशाला इंटर कालिज झांसी) से प्राप्त हुई। इसे पं० कृष्णलाल पांडे ने किसी एक अन्य पुरानी प्रति से स्वयं उतारा है, अतः पुरानी हस्तलिखित प्रति का यथा-प्रति उतारा यहां नहीं दिया जा रहा है। इसके आरम्भ में, जैसा कि पांडे जी ने उतारा है, इस प्रकार है :

सिद्धश्रीगणेशआयनम्हा श्रीसरमुतीपरमगुर
भेनम्हा ।। अयाधर्मसंवाद लिखते ।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रति को यहां धर्मसंवाद की 'ख' प्रति कहा गया है।

विदुरप्रजागर

विदुरप्रजागर का पाठ दो पुरानी हस्तलिखित प्रतियों से तैयार किया गया है। एक प्रति झांसी के विद्वद्वर पं० गौरीशंकर द्विवेदी जी से प्राप्त हुई है। इसे बानपुर (जिला झांसी) में सं० १९१० वि० पं० रामप्रसाद चौबे ने लिखा था। इसकी लम्बाई २४ सें० और चौड़ाई १५ सें० हैं, हाशिया छोड़ कर लम्बाई चौड़ाई क्रमशः २० सें० और ११.५ सें० है। इसमें ५० पन्ने यानी १०० पेज हैं और प्रत्येक पेज में २० पंक्तियां है। आरम्भ के पृष्ट में एक हाशिया पुष्पचित्रों से सजाया गया है।

आरम्भ के पृष्ठ की यथाप्रति नकल इस प्रकार है :

।। श्रीगणेशायनमः ।। अथा
विदुरप्रजागररलिष्यते ।। दोहा
सुमतसदनसिदुरवदनऐक ।।
दंतवरदांन ।। घरूचिविधान ।।
विपत्तसवगनपतमोदिकया
न।।१।। सरधमुधानिधिवदन
दुतिमुमिरौसारदमाय।। जा
केद्रयाकटाक्षथैविमलवु ।।
ध्घअधिकाय ।।२।। वंदौगुरगो
विंदकेचरनकमलसविलास
कहौजथामनतिवरनकछुभार
थमतिई तिहांस ।। घृतराष्टसौ
विदुरनैकहौकछुसंवाद ।। क
क्षतिकृष्णभाषावरनसुनत ।

इस प्रति के अन्तिम लिखित पृष्ठ की अन्तिम ११ पंक्तियों की नकल इस प्रकार है :

मैंविदुरविचार ।।३४।। राजाआरजमल्लकी अ
गयाअतहितजान।।विदुरप्रजागरकस्नकवि
भाषाकरौबषान।।३५।।मैअतहीढीठौकरीक
विकुलस रलमुभाइ।।भूलचूककछु होइसो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लीजेसमुझवनाइ ।।३६।। संत्रहसैअरुवानवै
संवतकातिकमास।।सुकल्पछपांचुगैरौकी
नौग्रथप्रकार ।।३७।। इतिश्रीमहाभारथेउद्देग
पर्वनविदुरजागरेघृतराष्टअंवादेनवमोध्या
या ।।९।। इतिश्रीविदुरप्रजागरसंपूर्ण।। मिति
वैशाखसुदि ।।७।। संवत् १९१०।। मुकामवा
नपुर।। लिष्षतंपंश्री चौवे रामप्रसाद।। राम

श्री गौरीशंकर द्विवेदी जी से प्राप्त इस प्रति को विदुरप्रजागर की 'के' प्रति कहा गया है।

विदुरप्रजागर की एक अन्य प्रति श्री भगवतनारायण रावत नई बस्ती, झाँसी से प्राप्त हुई। इसकी लंबाई चौड़ाई २२.५ सें० और १३.५ सें० है। यह प्रति सं० १९२८ वि० में 'लोहागढ़ रिक्षासद समसेरगड' में मुजानसिंध'द्वारा उतारी गई थी। यह लोहागढ़ वर्तमान लोहारी गांव और शमशेरगढ़ रियासत समथर का पुराना माम है, यह सूचना श्री हरगोविन्द गुप्त (चिरगांव) ने दी है। इसका पहला पन्ना ऊपरी दाहिने कोने पर फटा है। इसकी आरम्भ की १० पंक्तियों की यथाप्रति नकल इन प्रकार है :

श्रीगनेसजी
सुमतसदन
नविनासकरिग
निधिवदनसुतसुम
तेविमलवुधअधकाइ।।
कमलसूविलास।। कहौकथाकछू
तहास।।३।।घृतराष्ठसीविदुरनेकहोध
तकस्नभाषावरनसुनतविलायविषाद।।४।। ना
गनगरमहपैवसैकुरवंसीतहाभूप।।तिनकेजसकीजो
तजग।।जगमगरहीअनूप।।५।।म्हाराजसंतनभऐ

अन्तिम ८५ वें पृष्ठ पर ग्रंथसमाप्ति की पुष्पिका है। अन्तिम पंक्तियों की नकल इस प्रकार है :

राजमल्लकी अग्याहतहितजांनवि
दुरपृजागरक्रस्नकवभाषांकहौवषांन २७
सत्रासैअरुवानवैसंवतकातिकमास सुकल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पछ्छ्पाचैगुरूकीनौगृंथपृका इतिश्रीमहाभा
रथेउदोगगपर्वगृंथविदुरप्रजागरेनममोउध्या
९मितीमाहवदी ५संवत १९२८ मुकाम
लोहागडरिआसदंसमसेरगलिषतेसु
जार्नासघजोकोउवांचैसुनैतिनकौश्रीसी
तारामपौहुचौ

इसे यहां विदुरप्रजागर की 'ख' प्रति कहा गया है।

संपादनविधि

धर्मसंवाद का पाठसंपादन श्री हरगोविन्द गुप्त से प्राप्त 'क' प्रति से किया गया है श्री कृष्णलाल पाँडे से प्राप्त 'ख' प्रति 'क' प्रति से संपादित पाठ के टंकित हो चुकने के वाद मिली थी, अतः समें दिखे पाठान्तरों को बगल में प्रति का संकेत 'ख' लिखकर उसके आगे हाथ से अंकित कर दिया गया है। पाठान्तर प्रस्तुत करने में शब्दों के लिखित रूप को महत्व नहीं दिया गया है, जो शब्दान्तर दिखे उन्हें ही अंकित कर दिया गया है।

विदुरप्रजागर के पाठसंपादन में श्री गौरीशंधर द्विवेदी जी से प्राप्त प्रति को आधार बनाया गया है। श्री भगवतनारायण रावत से प्राप्त प्रति से मिलान करते हुए जहाँ इसी प्रति के पाठ से ही अर्थ अधिक स्पष्ट और भूल-नुसारी दिखा तो पाठसंपादन में उसे ही स्वीकार किया गया है और 'क' प्रति का पाठ नीचे पादटिप्पणी में दे दिया गया है। पाठान्तर प्रति का संकेत करके नीचे पादटिप्पणियों में ही दिये गये हैं।

पाठ को भूल संस्कृत पाठ से मिला कर देख लिया गया है और जहां कुछ उल्लेखनीय भिन्नता दिखी तो उसकी सूचना संस्कृत का मूलपाठ देते हुए पाद-टिप्पणियों में अंकित कर दिया गया है।

जो शब्द अथवा अक्षर हस्तलिखित प्रतियों में लिपिकारों के प्रमाद से छूट गए प्रतीत हुए उन्हें पाठ में कोष्ठक ( ) में रख कर संयोजित कर दिया गया है। जो शब्द संभवतः लिपिकारों के प्रमाद से अशुद्ध उतार लिये गये प्रतीत हुए उनका यथासंभव शुद्ध पाठ ही कोष्ठक में दिया गया है और प्रति का संकेत करके उसका पाठ पादटिप्पणी में दे दिया गया है।

छंदों के विवेचन में इस बात को सूचित किया ही जा चुका है कि पुराने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिपिकार प्रायः वर्णद्वित्व को अंकित करना टाल जाते थे और ऐसे वर्णद्वित्व को सूचित करने के लिए वे पहले तो उसके पूर्व के वर्ण पर एक खड़ी रेखा लगा दिया करते थे, परन्तु कालान्तर में यह रेखा लगाना भी छूट गया। छंद की गति के अनुरोध से ऐसे वर्णद्वित्व मूचित हो ही जाते थे। अतः उनको यहां जैसे का तैसा ही रहने दिया गया है।

पुरानी हस्तलिखित प्रतियों में 'ख' के लिये 'ष' ही लिखा जाता था। जहाँ स्पष्ट-ही कवर्ग के द्वितीय वर्ण की आवश्यकता है वहां संपादित पाठ में उसे 'ख' ही कर दिया गया है, परन्तु जहाँ 'ष' चल सकता है उसे 'ष' ही रहने दिया गया है। परन्तु यह ध्यान रखा जाना चाहिये की यहां भी इसका उच्चारण तो पुरानी हिन्दी की प्रकृति के अनुसार 'ख' ही होता है।

पुरानी हस्तलिखित पोथियों में 'ब' को 'व' को 'व़', और 'य' को 'प़' लिखा जाता था। सपादित पाठ में उन्हें आज की पद्धति के अनुसार क्रमशः 'व' व) और 'य' ही लिखा गया है।

हस्तलिखित प्रतियों में किसी में कोई, किसी में कोई, छंद छूट गया है। संपादित पाठ में जहाँ जिस प्रति में कोई छंद छूटा दिखा तो उसके पूर्व उस प्रति का संकेताक्षर लिख कर उसके आगे शून्य लगा दिया गया है। इस प्रकार 'क०' से यह संकेत मिलता है कि इसके आगे का छंद 'क' प्रति में नहीं है।

यहां छंदांक संपादित पाठ के अनुसार ही रखे गये हैं। मूल हस्तलिखित प्रतियों में छंद छूटे हुए होने के कारण उनके छंदांकों से संपादित पाठ के छंदांक भिन्न हो गए हैं।

पादटिप्पणियों में बहुत से ऐसे शब्दों का अर्थ स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है जो सामान्यतः पुरानी बुन्देली में प्रयुक्त होते रहे, परन्तु जिन्हें आज समझने में आसानी नहीं है। अंत में भी ऐसे शब्दों का अर्थ देने का प्रयास किया गया है।

उपसंहार

साहित्य के इतिहासों में कृष्ण कवि का उल्लेख बिहारी की सतसई के पद्यटीकाकार के रूप में होता रहा है और रीतिकाल्य के परिप्रेक्ष्य में उनकी इस कृति की पर्याप्त सराहना भी हुई है। 'धर्मसंवाद' और 'विदुरप्रजागर' अभी तक अल्पज्ञात और अज्ञात ही रहे हैं। सतसई की टीका के आधार पर कृष्णकबि के संबंध में अभी तक इतना ही ज्ञात रहा कि यह जयपुर के राजा सवाई जयसिंह के मंत्री राजा आयामल्ल के आश्रित थे और उन्हीं की 'आज्ञा'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से इन्होंने उक्त टीका संवत् १७८१ में लिखी थी। यदि धर्मसंवाद और विदुर-प्रजागरकार एक ही व्यक्ति हो तो यह बात उतनी प्रसिद्ध नहीं हुई कि वह भी बिहारी की ही भाति जन्मतः बुन्देइखण्डी थे और यह भांडेर और ओरछा के निवासी थे। 'धर्मसंवाद' और 'विदुरप्रजागर' दोनों संस्कृत से अनूदित भाषा पद्यरचनाएं हैं। 'धर्मसंवाद' के मूल संस्कृत का पता अभी तक नहीं लगा है, 'विदुरप्रजागर' तो महाभारत के उद्योगपर्व के अन्तर्गत विदुर द्वारा धृतराष्ट्र को किये गये नीतिउपदेश 'विदुरनीति' का ही अनुवाद है।

'धर्मसंवाद' की रचना कृष्ण कवि ने सं० १७७५ वि० में की थी। 'विदुर प्रजागर' की रचना राजा आयामल्ल की ही 'आज्ञा' से इन्होंने १७९२ में हुई थी। बिहारी की मृत्यु सं० १७२० में हुई मानी जाती है, इस दृष्टि से यह कृष्ण कवि न तो बिहारी के पुत्र ही हो सकने हैं और न शिष्य ही जैसा साहित्य के कुछ इतिहास ग्रंथों में लिखा मिलता है।

इन दोतों ग्रंथों के रचनाकाल में भारत की राजनीतिक स्थिति बड़ी ही डांबाडोल थी। औरंगजेब की मृत्यु सन् १७०७ ई० (संवत् १७६४ वि०) में हो जाने के बाद उसके शाहजादों में राजसिंहासन पर अधिक.र करने के लिए संघर्ष चला। इस स्थिति का लाभ स्वातंत्र्य के लिये हिन्दू राजे अपने सामन्ती दुर्गुण आपसी विद्वेष के कारण ही न उठा सके, वे इस या उस मुगल सिंहासन के दावेदार का पक्ष लेकर आपस में ही लड़ते रहे। मुगल राजसिंहासन पर इस परिस्थिति में बड़े ही कमजोर सम्राट बैठते रहे। ऐसी स्थिति निश्चित रूप में हो गई थी कि यदि हिन्दू राजे मिल कर प्रयास करते तो पुनः दिल्ली पर, यानी भारत में, हिन्दू राज्य स्थापित हो सकता था और जनता को उस मजहबी विद्वेष से प्रेरित अत्याचार से मुक्ति मिल सकती थी जो औरंगजेब के ही नहीं शाहजहां के शासन काल में भी उस पर हुए थे और अब भी हो रहे थे। सिख वीर बंदा की पाशविक नृशंस हन्या फर्रूखसियर के शासन काल और कृष्णकवि के रचनाकाल में ही हुई थी। इस मजहबी अत्याचार से त्राण पाने के लिये आम हिन्दू जनता अपने हिन्दू राजाओं की ओर ही आशा से देख सकती थी, परन्तु वह देखती ही रही, और ये सामन्ती हिन्दू राजे आपसी सामन्ती फूट के शिकार बने रहे। वे परिस्थिति का लाभ उठा कर मुगल शासन को निरस्त करने और इस प्रकार हिन्दू जनता को त्राण देने में प्रवृत न हुए। बड़े बड़े हिन्दू राजे ऐसे हिन्दू राजाओं के बिरुद्ध ही मुगलों के अनुचर बने युद्ध करते रहे जो मुगलों के अधिपत्य से मुक्त होने के लिए स्वातंन्त्रविद्रोह करते थे। जनता की दृष्टि में मुगलों के अनुचर बने ये राजे अधर्म की नीति अपना कर अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजसी भोगविलास में ही लिप्त रहे।

इस स्थिति में आम जनता के मन में यह भाव उत्पन्न होना ही चाहिये था कि जो राजे धर्मनीति अपना कर जनता के कष्टों को दूर करने के लिए युद्ध कर रहे हैं वे 'उत्तम' राजा है और जो जनता को कष्ट में देखते हुए भी उसके त्राण के लिये युद्ध से कतराते रहते हैं और उल्टे उसके ही विरुद्ध युद्ध करते हैं, अपने राजसी भोगविलास को कनाए रखने के लिये, वे 'अधम' राजा है। चांडालरूप धर्मराज और युधिष्ठिर के संवाद रूप 'धर्मसंवाद' का यही केन्द्रीय भाव है। कवि जनता की आशा आकांक्षाओं और धर्मरक्षा संबंधी उसके इस सर्वोपरि भाव से परिचालित हुआ है। उसका यह काव्य काव्यपंडितों की अपेक्षा आम जनता को ही सम्बोधित रहा है, भाषा भी जनता के अधिक निकट है।

'विदुरप्रजागर' का कवि राजाश्रित था, मुगलों के अनुचर बने राजा सवाई जयसिंह के मंत्री राजा आयामल्ल का आश्रित। अतः राजाश्रय का प्रभाव उसके काव्य पर पड़ना स्वाभाविक था। 'विदुरप्रजागर' की रचना में काव्यपंडित अपेक्षाकृत रूप में अधिक उभर कर आया है, भाषा, छंदों और अलंकारों का वैभव भी उसमें अधिक प्रदर्शित हुआ है।

'विदुरप्रजागर' के दो मुख्य प्रतिपाद्य हैं। एक तो यह है कि भाई-भाई में युद्ध नहीं होना चाहिये क्योंकि इससे दोनों भाइयों की ही हानि होती है और शत्रुओं का ही लाभ होता है। परिस्थितियों को ध्यान में रख कर यदि इसके मर्म को परखा जाय तो इससे यही व्यंजित होता है कि हिन्दू राजा आपस में भाई-भाई हैं, उन्हें आपस में नहीं लड़ना चाहिये, इससे जनता की उत्पीड़क आततायी मुगल सत्ता का ही लाभ होता है। 'विदुरप्रजागर' का दूसरा प्रति-पाद्य यह है कि जो बलबान से बिरोध करता है वह मूर्ख है, जो बलवान की अधीनता स्वीकार कर लेता है वह वास्तव में इन्द्र को ही नमस्कार करता है और इन्द्र के प्रसाद का भागी होता है। यह बात दुधारी है। इसकी व्यंजना कवि के आश्रयदाता आयामल्ल या सवाई जयसिंह के लिये जो मुगल अनुचर बने हुए अन्य हिन्दू राजाओं के दमन में ही लगे हुए थे, यदि 'वे ठकुरसुहाती ही सुनना चाहें, तो यही थी कि उन्होंने जो बलवान मुगल सम्राट की अधीनता स्वीकार कर ली वह बुद्धिमानी की बात है, धर्म्य इन्द्रपूजा है, और यदि वे गूढ व्यंजना को समझ सकें, और उसे ग्रहण कर सकें, तो आम जनता के साथ ही सभी हिन्दू राजाओं के लिये भी यही व्यंजना है कि सापेक्ष्य रूप में अधिक बलशाली राजाओं के नेतृत्व में संगठित हो कर उन्हें जनता के त्राण के लिये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आततायी मुगल शासन को ध्वस्त कर देना चाहिये और ऐसा धर्म्य शासन स्थापित करना चाहिये जो जनता के लिये कल्याणकारी हो।

सामाजिक परिप्रेक्ष्य में समीक्षा

जब से आर्थिक कारणों से समाज में 'ऊंचनीच' समझी जानेवाली जातियों का विकास हुआ तभी से इस ऊंचनीच के प्रति विरोध की भावना भी बढ़ती रही है। तत्वदर्शन के रूप में ब्राह्मण और चांडाल में समता भी प्रतिपादित होती रही है, परन्तु व्यवहार में आर्थिक कारण बौद्धिक मन्तव्यों से सदैव अधिक बलवान प्रमाणिक हुए हैं, अतः जातियों की ऊंचनीच की स्वीकृति व्यवहार में समाज में बनी रही। व्यवहार और आदर्श का यह द्वन्द्र विरोध धर्मसंवाद में भली प्रकार प्रतिफलित हुआ है।

सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में

हमारी संस्कृति के विकास की धारा के दो तट रहे हैं: एक तो अभिजात वर्ग का तट, जिनमें राजा या राज्य की ही सर्वोपरिता रही, और दूसरा जनता का तट। अभिजात वर्ग के तट पर जो बांध बंधते रहे उनमें निरन्तर सरलता से जटिलता, सादगी से आलंकारिक आडंबर का ही विकास होता रहा, परन्तु इसमें जब-जब गतिरोध उत्पन्न हुआ तो जनता में विकसित सांस्कृतिक माध्यमों का ही आश्रय ले कर अभिजात वर्ग के तट पर बांधों का निर्माण होता रहा। विदुरप्रजागर की भावधारा के भी इस प्रकार दो तट रहे। काव्यरीति-सम्बन्धी पांडित्यप्रदर्शन की रुचि इसमें प्रदर्शित हुई अवश्य है, परन्तु उसमें जनता के भाव भी अभिव्यंजित हुए हैं।

नीति और काव्य

'धर्मसंवाद' और 'विदुरप्रजागर' दोनों नीतिकाव्य हैं। समय-विशेष की परिस्थितियों में नीतिउपदेश के लिये किसी मौलिक रचना की अपेक्षा जनता में श्रद्धाभाजन बने हुए पौराणिक ऐतिहासिक आख्यानों और उपाख्यानों का अनुवाद प्रस्तुत किया जाना अधिक प्रभावोत्पादक सिद्ध हुआ है। कृष्ण कवि ने सामयिक धर्मनीति के उपदेश के लिये चांडालरूप धर्मराज और युधिष्ठिर के संवाद को मूल संस्कृत से भाषापद्यानुवाद के रूप में अपने 'धर्मसंवाद' में रखा है, और महाभारत की सुप्रसिद्ध 'विदुरनीति' का अनुवाद 'विदुरप्रजागर' के रूप में प्रस्तुत किया है। इसके लिये वह हमारे साधुवाद के पात्र हैं क्योंकि इसमें वह जनोपयोगिता के इसी भाव से इसी समझ से परिचालित रहे। ऐसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुवाद रचनाओं को किसी मौलिक काव्य से कम महत्व का समझा जाना उचित नहीं है। यों तो सूरसागर और रामचरितमानस क्रमशः श्रीमद्भागवत और रामायण के कथानुवाद ही तो हैं, परन्तु वे अपने निर्माण की परिस्थिति विशेष में विशिष्ट व्यंजनाओं से समन्वित है और अभीष्ट कर्मशीलता उत्पन्न करते हैं।

नीतिकाव्य की रचना में प्राय सभी समर्थ कवि प्रवृत हुए हैं। नीतिकाव्य को काव्य की श्रेणी से बहिष्कृत करना, या उन्हें अधम या मध्यम कोटि का काव्य गिना जाना, या केवल सूक्ति और पद्य मात्र ही समझा जाना, उचित नहीं प्रतीत होता। नीतिकाव्य से हमें केवल बौद्धिक बोध ही नहीं, भावतोष और भावबल भी मिलता है। 'कथारस' की भांति एक 'नीतिरस' की स्थिति को भी स्वीकार किया जाना चाहिये। नीतिरस की दृष्टि से कृष्णकवि के धर्म-संवाद और विदुरप्रजागर उत्तम कोटि की ऐसी रचनाएं सिद्ध होती है जिनमें तत्कालीन परिस्थितियों में जनता की आशाआकांक्षाएं और उसका भावजीवन भलीभांति अभिव्यक्त हुआ है, उनमें आवश्यक कर्मशीलता के लिये भी प्रचुर प्रेरणा है।

—००—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संपादित पाठ

।। श्रीगणेशाय नमः ।।

।। श्री सरस्वत्यै नमः ।।

अथ धर्मसंवादलिख[1] यते

दंडकु : एकदंत गजबदन बिराजै सुंदरताई उरह उदार ।
अधिक बिराजमान देवनि मैं इंदीवर[2] ऊपर असवार ।।
तुम ही प्रथम जग्य की पूजा सुनि कर बेदनि कृस्त बिचार ।
श्री गनेस गवरी के नंदन तुम ही सबहि सिद्धि दातार ।।१।।

दोहा । प्रथमहि सुमरि सरस्वती बसी कंठ मैं आनि ।
दीनी सुमति गनेसजू अब कवि कृस्न बखानि ।।२।।
राव जुधिष्ठिर[3] की कथा पिता पुत्र की आदि ।
पहिले दरसन मिलन की बरनी धर्मसमादि ।।३।।
तब जु हती यह संसकृत अर्थ सक्ति नहि होइ ।
अब भाषा कवि कृस्न कहि बांचतु है सब कोइ ।।४।।
संवत सत्रह सै पचहतरि, समये[4] कीलक नाम ।
सावन सुदि परिमा तिथी, सुरगुर पहिलौ जाम ।।५।।
ताही दिन या ग्रंथ कौ, कीन्यौ कृस्न बिचार ।
कवित सवैया दोहरा, बेद भेद व्यौहार ।।६।।
कबि बासी भांडेरि के रतनगंज सो ठांउ ।
निकट चत्रभुज वैतबै नगर ओडछौ गांग ।।७।।
संनाबढ साबरन कुल रावत कुलहि बखान[5] ।
सेबक सबई दुजनि के कविता कृस्न निदान ।।८।।
बरनत धर्मसमाधि कौ तनमन धरि सब ध्यान ।
यह प्रताप गुरु कौ भयौ कृस्न सुकबि कौ ग्यान ।।९।।
येक समै बूझी यहै, जनमेज्य जू आनि ।
धर्म जुधिष्ठिर की कथा कहिअै वैसंपानि ।।१०।।
कौन भांति दरसनु दयौ, धर्मराइ नै आइ ।

---

१. क प्रति में 'संमाध' है । विभिन्न प्रतियों में इस ग्रंथ का नाम 'धर्मसंवाद' 'धर्मसमाधि' और 'धर्मसंवाद' लिखा गया है ।
२. ख में 'मिहदी' । संभवतः मूल में 'उंदिवरे' 'उंदुरवर' पाठ रहा होगा । अर्थ है मूषक ।
३. क में सर्वत्र 'दुविष्टल' लिखा हुआ है । ख प्रति में दुधिष्टल और दुधिष्टिल है
४. ख सत्रा सो पचत्तर समयो ।
५. ख एनवडिया वरन कुलि रावत करे बखान ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राव जुधिष्ठिर कौ अबै, सुन्यौ चाहिजतु ठाइ ॥११॥
बरन्यौ बैसंपानि जू, जनमेजय सह जौन ।
सोई सुनि कबि विस्न यह, कह्यौ कबितन तौन॥१२॥

कबितु : एक समै सब देवता आपनै लोक तै इंद्र के*मंडिल आए । ख*मंदिर
ब्रह्महु बिस्न महेस गनेस सरस्वती चन्द्रमा सूरज ठाए ॥
गंगहु गंध्रप तेतीस कोटि हते हुनि धर्म समेत बताए ।
ब्रिस्न कहै मुनि नारद जू तह राजा जुधिष्ठिर के गुन गाए ॥३१॥
नारद से मुनि अस्तुति कौ बरनै हम चक्कवै देखे हैं सोऊ ।
बैनि बली बलि लोचन[६] से हरिचंद की कीरति जोरियौ जोऊ ॥
किस्न कहै कबि मानहिधातव औ नलघोष[७] वतावत दोऊ ।
राजा जुधिष्ठिर के सम कौ महि मंडल में भयौ भूप न कोऊ॥१४॥

दोहा : अैसे बचन सुनै जही, धर्म अधिक सुख पाइ ।
कीरति मेरे पुत्र की, सुरपुर पहुची आइ ॥१५॥
अंमृत से लागे सबै, नारद मुनि के बैन ।
धर्म कसी कब दिखिबौ, राजा अपनै नैन ॥१६॥

सोरठा : मन मै धर्म बिचारि । देखौं राव जुधिष्ठिरै,
अैसौ रूनु सु धारि । जातै वह जानै नहीं ॥१७॥
चानडार कौ रूप । लीनौ धर्म बनाइकैं
पुरी हस्तिना रूप । देखत नग्र चरित्र कौं ॥१८॥

कबित : बाह्मन बेद पढै धुनि सौं सुनि बानी विचार महा सुख पाए ।
कोऊ न देखौ दुखी कहु एक सुखी सब आनद सौं अति छाए ॥
किस्न कहै कवि धर्महि कौ पनु पालत सातऊ पौनि सुहाये ।
नग्र चरित्र लख्यौ चित मैं तब राजा जुधिष्ठिर के ग्रह आए ॥१९॥
कंचन के झलकैं सब धाम चुनी मनिपन्ननि जोतिविराजै । ख-अतिपन्नग
भाट बबारत वेद पढै दुज गंध्रप गावत दुंदभी बाजै ॥२०॥
झूंमत पौरि पगार गधै गज दिग्गज से उपमा पर छाजै ॥ ख-वर
किस्न कहै कबि भिम बली हनिवंत सौ राजतु है दरवाजैं

---

६. अर्थ है वेणु वलि और वह्निलोचन ख , बैनि बलो बयलोचन
७. अभिप्राय है : मांधाता और राजा नल से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोरठा : भिमसैनि सौ बैन । चानडाल अैसे कहै ।।
नाम आपनौ लै न । मंदिर[८] है ए कौन कौ ।।२१।।

भिमसैनि कौ बचनु :कबितु :

मंदिर राजा जुधिष्ठिर के जिन्हि कौ जसु तीनि हू लोक में छायौ ।
भीम कहावत नाम हमैं सुत बाव[९] कौ किस्न बतावत ठायौ ।।
मूरिख कै मतिभंद भई किधौ ठैमठै बातनि में बहकायौ ।
जानतु नाहिनै पूछै कहा अरे कोहै तू कौन दिसानितै आयौ ।।२२।।

चानडाल कौ बचनु : कबितु :

ताति कौ तार सुनै इक मंदिर तारी* कौ पैंड पचास बतायौ । ख*ताली
तूर की तान सुनै तन दूरि लौं कोस पै कोसनगारिन गायौ ।।
किस्न कहै कबि भेरि कौ जोजन द्वादस लौं धन कौ ठहरायौ ।
दानि कौ नामु तिहू पुर मैं सुनि कैं सुनि भिम सौं जाचन आयौ ।।२३।।

कुडरिया :

राजा के बांम्हन बसैं सहस अठासि हजार ।
इच्छाभोजन[१०] करत हैं सौने ही के थार ।।
सौने ही के थार करैं द्रव्यै अति पावें ।
बरषत कंचन धाम मेघ जैसें झर लावै ।। ख–धार
यह जिय माझ विचारि पाइ कीबौ सब काजा ।
धर्मराइ के पुत्र हमैं दै हैं कछु राजा ।।२४।।

भिमसैनि के वचन : चौपही :

ब्राम्हन की जै प्रथम बखानु । दूजै छत्री रनहि प्रमान ।।
तीजै बैस्य बताऊं तोहि । चौथे वर्म सूद्र कौ होइ ।।२५।।
इन्हि तै नीचौ जो नर आइ । अंतिज कथा कही नहि जाइ ।।
वेद कहै कीजै अब सोइ । बरजै दान कौन विधि होइ ।।२६।।

दोहा : भिमसैनि अैसै कहै, सुनि अतीत तूं बैन ।

---

८. क प्रति में यहां भी 'मंदिल ' है । प्राय: अनेक स्थानों पर इस प्रति में 'र' के स्थान में 'ल' मिलता है ।

९. अभिप्राय है 'वायु से ।

१०. इस प्रति में अनेक स्थानों पर 'छ' की जगह प्रतिलिपिकार ने 'क्ष' लिखा है । यहां 'इच्छा' की जगह 'इक्ष्या' लिखा गया है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धर्मपुत्र देखत नहीं चानडाल के नैन ॥२७॥

चानडार कौ बचन : कबितु :

एक ही ब्रह्म बनावन कौ वह पंचऊ तत मिलै घट साजा।
एकई सौ तनु एकई सौ मनु एकई सौ दुख सुख्ख सु साजा ॥
एकइ सौ कबि किस्न कहै रकतै अरु इंद्रिनि पंच समाजा।
भिम कहौ यह कारन कौन सु दान हमैं नहि दैइगे राजा ॥२८॥

भिमसैनि कौ बचनु : सोरठां :

पूजतु हैं सब ग्राइ। देखौ या संसार मैं ॥
गदहा जौ छी जाइ। तौ कीजै अस्नान कौं ॥२९॥

चानडार कौ बचनु : कबितु :

राग छऊ छगुनी गिनि रागिनी राग बिना सव झूठ हैं गाये।
तीरथ एक नहीं परसे तौ कहा भयौ कोस हजारक धाए ॥
किस्न कहै कह बेद पढै जिन्ह ग्यान कौ मूल न अछिर पाए।
आतमा ब्रह्म कौ जान्यौं नहीं तौ कहौ जू कहा अब दानि कहाए ॥३०॥

भिमसैनि कौ बचन : सोरठा :

उत्तम कीजै दान। दीजै देखि बिचार कै ॥
बेदनि हीं की मानि। आदि अंत लौं यह कही ॥३१॥

चानडार कौ बच :दोहा :

भिमसैनि देखौ इतै चारि *बचन चित लाइ। ख*बरन
चानडाल जासौं कहैं ताके सुनौ सुभाइ ॥३२॥
चुगिली औरन की करै निन्दा सुनै निहाल।
अैसे लछन जासु मैं सो कहिअै चंडाल ॥३३॥

चौपाही : परके धनै छीनि घर आनै। दया धर्म*कछुवें कर नहिं जानै ॥ख*कछुकइ
दूध गऊ कपिला कौ खाइ। चानडाल कहियतु है ताइ ॥३४॥
बेदन *ही कोइ सो टारै ॥ मातपिता *कों हाथ पसारै ॥ ख*पै
चरतन मारि बिडारै गाइ। चानडाल कहितु है ताइ ॥३५॥
बैठि बिरानी निंदा करै। पंच लाज जिय मैं नहिं धरै ॥
सोवन घर विस्वा कैं जाइ। चानडाल कहियतु है ताइ ॥३६॥
सु गुर अरु दही एक ही सानै। तामै के बासन मैं आनै ॥
अैसौ भोजन करै बनाइ। चानडाल कहियतु है ताइ ॥३७॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋतु बिरानौ मैटै जोइ । अरु विस्वासघातिका होइ ॥
धार्मु करतु मैटतु है आइ । चानडाल कहियतु है ताइ ॥३८॥
ब्राम्हन जौन बेद नहिं पढ़ै । साँझ सबारै राम न *रढै ॥ ख*रडै
बिनुअस्नानै अन्न *कराइ । चानडाल कहियतु है ताइ ॥३९। *जोखाय
वन मैं ठाडौ आगि लगावै । सूतक दान अन्न कौ पावै ॥
दुज दारा ग्रह गवनु कराइ । चानडाल कहियतु है ताइ ॥४०॥
माता पिता ब्रध्ध जौ होइ । *दुर्बल दीन देखिअै सोइ ॥ ख*दुर्लभ
जो सेवा नहि पुत्र ब्राइ । चानडाल कहियतु है ताइ ॥४१॥
सांझ भोर दुपहर के समै। इहि बिरिया नारी सौं रमै ॥
लोक की लाज नहीं सकुचाइ[११] । चानडाल कहियतु है ताइ ॥४२॥
मानस जाके घर दस रहै । जेठौ सबै एकसौ कहै ॥
वहु सबै बैठौ खाइ *दुकाइ। चानडाल कहियतु है ताइ ॥४३॥*कछु मीठौ दुराय
राहु केत कै सनि कौ दान । पंडतु होइ कै नेइ अयान ॥
अरु जो बेटी कौ धनु खाइ । चानडाल कहियतु है ताइ ॥४४॥
बिनु अपराध नारि कौं छाँडै । आठ पहर *कलहै किनि मांडै ॥ ख*पुनि कलहै
वोलै वैन काग से ठाइ । चानडाल कहियतु हैं ताइ ॥४५॥
कुधारती * जाकै ग्रह आवै । वाकौं कछू नहीं पहुचावै ॥ ख*छुधारती
आपुनु बैठौ भोजनु पाइ । चानडाल कहियतु है ताइ ॥४६॥
जाके घर में नारी दोइ । देखत नहीं एक सम होइ ॥
जो जिय मैं *दुरबुधि कराइ । चानडाल कहियतु है ताइ॥४७॥ख*दुविधा बताय
गर्भवंत जौ *अस्त्री होइ । महिना आठ नौक *कै होइ ॥ ख*इस्त्री की सोइ
जो अैसे मैं सेजै जाइ । चानडाल कहियतु है ताइ ॥४९॥
जो कोऊ कहू कै आवै । आसा *सौं सेवा करवाबै ॥ ख*दै
देत न कछू रहै *वहिकाइ । चानडाल कहियतु है ताइ ॥४८॥ ख*बाराय
*पर की नारी पर कर धरै । पाप पुंनि कौं नैक न डरै ॥ख*पराई नारी आप
परमेश्वरै पेट मैं नाइ । चानडाल कहियतु है ताइ ॥५०॥
जाकै जियै दया नहिं दौरै । पुंनि करत बरजत है औरै ॥
करै बिछोहौ ब्रच्छा गाइ । चानडाल कहियतु है ताइ ॥५१॥
पहिलैं भयौ रहैं बैरागी । माया लोभ मोह कौं त्यागी ॥
भेषै छांडि ग्रहै फिरि जाइ । चानडाल कहियतु है ताइ ॥५२॥

११. लोक लाज जिय में न घराय ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पसुनि *मधि गदहा सौं कहैं । पंछिनि *बीच काग ज्यौं लहैं ।। ख*मांझ
जोगी *जोई क्रोधु कराइ । चानडाल कहियतु है ताइ ।।५३।। ख*हुई मैं
अरजबंतु द्वारे मैं ठाडौ । आगैं होइ आगऊ आडौ ।।
प्रभ लौं खबरि नहीं पहुचाइ । चानडाल कहियतु है ताइ ।।५४।।
दोहरा : चांनडाल इहि सबनि तैं अधिक *जानिवौ ताइ ।। ख*जानवी
जौ पर की निंद्रा करै पंचन ही मैं आइ ।।५५।।

भिमसैनि कौ बचन : दोहा :
भिमसैनि अैसे वचन सुनै उठे अकुलाइ ।
चानडाल चुपु कै रहै *ब्रात नहीं अधिकाइ ।।५६।। ख*(अधिकचरण) बोलौ वचन सभारकै

बकितु : देखि ल्यौ नख तैं सिष लौं सब रूप वन्यौ बिधि जैसौ बनायौ ।
बोलतु है इमि कर्कस बैन मनौ हिनि कागन कौ गुरु आयौ ।।
कीजतु यातैं गई कहि किस्न कहू कहू बेदनि कौ गुन गायौ ।
औरनि सौं चनडाल कहै सुनि आपु ही तौ चनडाल है ठायौ।।५७।।

चानडाल कौ वचनु : कबितु :
नौनौ इंदीरिन कौ फलु होइ नहीं वह*इंम्रत मूर लहावै । ख*इमिरित मूरह पावै
ऊच जौ नीच के काम करै सोइ नीचन की पदब्री पहुचावै ।।
राम के नाम *कौ काहू लयौ सोइ साध भयौ कवि किस्न बतावै । ख*जो जोई
देह कौ नाम नहीं सुनि भिम सु कर्म करैं चनडाल कहावै ।।५८।।

भिमसैनि को वचन :कुडरिया :
ग्यानी हौ जू तुम बडे पराचीन के हेत ।
यातैं लछ्छन जानिअै बचन कहैं सब देत ।।
बचन कहैं सब देत बेद कौ भेदु बतायौ ।
यहु धौ कारनु कौनु रूपु जातै यह पायौ ।।
किस्न कहै करतार बात कीनी मनमानी ।
जानि परी सब हमैं बडे तुम हौ जू ग्यानी ।।५९।।

चानडाल कौ बचन : सोरठा :
भिमसैनि तुम हाल । राजाजू सौं यह कहौ ।।
आयौ इकु चनडाल । तासौं चरचा कीजिये ।।६०।।

भिमसैनि कौ वचन : अरिल्ल :
दान तुहमै हम दैंहि सोइ अब लीजिअै ।
जाउ घरैं फिरि आपनै कारज कीजिएै ।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टेक करो किहि काज कही नहिं मानि हैं।
राव जुधिष्ठिर वेद के भेदनि जानि हैं ।।६१।।

चानडाल कौ बचन : कुडरिया :

हमसौं किनि चरचा करै राव जुधिष्ठिर आनि।
तीन लोक मैं होइ जो सोई कहौं बखानि ।।
सोई कहौं बखानि मानि लीजौ यह सांचौ।
जौ न बैन पतिआउ देखियौ बेदनि बाँची ।।
किष्ण कही सब सही पाइलीबौ जू परचा।
जानि बडे तुम कहत करैं हमसौं किनि चरचा।।६२।।

दोहा : भिमसैनि कौं सुनत ही मन मैं उपज्यौ ग्यान।
देखत कौ चनडाल *यह बोलत बचन निदान ।।६३।। ख*है
चांनडाल ठाडौ रहै ऐक पलक *इक ठाइ ख*यहि
जौ लौं राजा सौं कहौं खबरि तिहारी जाइ

इति श्री धर्म *समाधे ग्यान प्रभाबर्ननं भिमसैनि अतीत चरचाकरन*प्रथम बिलास
ख*सम्वादे नो ख*प्रकास

धर्मसंवाद दूसरा विलास

दोहरा : भिमसैनि पहुंचे जहां राव जुधिष्ठिर ठाइ।
करि प्रनाम ठाडे भए कर सौं करहि लगाइ ।।१।।

राजा कौ वचन : सोरठा :

भिमसैनि सौं बैन। तब राजा अैसे कहै ।।
कहिअै कारन अैन। तुम आए या ठौर लौं ।।२।।

भिमसैनि कौ वचन : कवितु :

मैं हूं कह्यौ अपनै जियतैं जितनौ कछू बेद के भेदनि गायौ।
किस्न सुन्यौ सव ही चितु दै कहुं वाहु के ग्यान कौ अंतु न पायौ ।।
तीनि हूं लोकनि कौ परिमान बताबत ठीक तैं ठीक हि ठायौ।
आपुनु सौं चरचा करिबे कह एकु इहां चनडाल है आयौ ।।३।।

राजा कौ बचन : सोरठा :

भिमसैनि तुम बैन। कहे सबै नीके लगे ।।,
वाकौ रूपरु बैन। दीजै हमहिं बताइ कैं ।।४।।

भिमसैनि कौ वचन : छंद तोमर :

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सब निरखि वाकौ अंग । जिमि काग कोइल रंग ।।
बडे त* दीरघ नैन । *मनु अरुन कीनै सैन ।। ख* बड्डु तो
भूरेत* ठाडे बार । अति छीन हीन कयार ।। ख*भूरे तौ कहिये
लामी*त् घीच दिखाइ । सोइ कुचित बसन सुहाइ ।। ख*तौ
सुनिअै सुभुब्र के भूप । इहि भांति वाकौ रूप ।।५।।

दोहरा : रूप सबे चनडाल कौ तुमकौं दयौ बताइ ।
मनौ बेद ब्रंह्मा पठै ग्यानवंत इमि आइ ।।६।।

राजा कौ बचन : छंद नराज :

भलीत भिम तें कही । यही त बात मैं लही ।।
पठीत वेद मानिअै । जुगैत चारि जानिअै ।।
पुनीत नैन देखिअै । ब्रिचार चारि लेखिअै ।।
कुरूप रूप ताहिकौ । *सुन्यौ भदेस वाहिकौ।।७।ख*सुनो भेदसब वाइकौ

सोरठा : दरसन कह्यौ न लैन । देखौ अैसे नरनि कौ
बरजत बेदनि वैन । चरचा हम कैसे करें ।।८।।

भिमसैनि कौ वचन : दोहा :

राव जुधिष्ठिर जू सुनौ, हम तन बातें दोइ ।
वाकौ दरस न लीजिअै विमुख राम तें होइ ।।९।।

कबितु : पाछिले कर्मनि के परताप भयौ यह रूप सु जानियै ठायैं ।
हाल तौ लाल गुपाल ही के गुन आठऊ जामनि सौ दिन गावै ।।
किस्न कहै कवि ग्यान ही कौं पुनि मूरतिवंत हियै मैं लखावै ।
राव जुधिष्ठिर जू सुनिअै *वह तौ सब बेदनि भेद बतावै ।।१०।।
ख*एतौ सब देहन बेद वतायौ ।

राजा कौ वचन : दोहा :

नीच पढै पुनि वेद कौ जद्दपि कैहू बेर ।
तद्यपि अैसौ जानियौ असलि नकल कौ फेर ।।११।।

कवितु : नौनौ इंदोरिन कौ फल होइ नही वह इम्रत मूल लहावै[१२] ।
उज्जिल ताल भरे अति ही पुनि क्यौकरि गंग कौ नीर कहावै ।।
किस्न कहै कबि भिम सुनौ नहिं छाडत आपनै कोऊ सुभावै ।
जद्यपि काग सयाने महा तो कहा वह हंसनि की मति पावै ।।१२।।

---

१२. मूल ही तें बिस कौ बिरवा फल नौनौं भयौ नहीं इम्रत पावै ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भिमसैनि कौ बचन : दोहा :

बेदनि मैं जैसौ कहौ धातनि कौं परिवान ।
तैसौ ई सुनि लीजिए देखौ बचन निदान ॥१३॥

कबितु : देखौ सरोबर कौ जलु ज्यौं पुनि भानु उवै जग पै जिमि वैसौ ।
मेघ धरा मधिवे बरसै सब उतिम मधिम ऊपर तैसौ ।
और तरोबर ज्यौं फलहारेन बूझत काहे नहीं किनि कैसौ ।
किस्न कहै जिय माझ धरौ यह दातनि कौ परिमान है ऐसौ ॥१४॥

राजा कौ बचन : कुडरिया :

हम सौं सब सांचे कहे देखौ जू किनि आइ ।
दरसन करैं चंडार कौ तन असुद्ध होइ जाइ ॥
तन असुद्ध होइ जाय दिन तीनिक कौ सोई ।
सुद्ध होइ तब फेरि जपै गाइत्री सोई ॥
किस्न कहै कबि यहै बेद भेदनि पुनि बांचे
भिमसैनि तुम बैन कहे हम सौ सब सांचे ॥१५॥

दोहा : चानडाल के धर्म बह हूहै करत जुठाइ ।
ताही तैं चरचा सुनौ हम पर करी न जाइ ॥१६॥

भिमसैनि कौ बचन : कबितु :

औगुन वामैं अनेग भरे गुन सौ तौ कहा कछु छीनि कै लीजै ।
द्वार मैं तैं फिरि जाइ *अतीत तौ पाछिले पुन्यनि के फलु छीजै ॥ ख*अतीथ
किस्न कहै अपने व्रत कौ पनु जामै पलै सोइ कारजु कीजै ।
काम कहा उहि के कुल धर्म सौं दान *कुधारथी कौं कछु दीजै॥१७॥ख*धुधारती

दोहा : रौति यहै सव धर्म की बेद बनावत सोइ ।
दान देउ सनमान कै जथा सक्ति जो होइ ॥१८॥
पसु पंछी नर *कुंजरै कह छोठौ कह थूल । क*कुंजलै
सब मैं देखै एकु प्रभु यहै ग्यान कौ मूल ॥१९॥

राजा कौ वचन : सोरठा :

ख* भिमसैनि सुनि जाइ । जौ तुम कही सु मानिहैं ॥
अंतर कपरा ल्याइ । तव वासौं चरचा करैं ॥२०॥ख*
राजा बैठे आनि । अंतर कपरा लाइकैं
भिमसैनि तुम जाउ । ल्यावौ वह चंडाल कौं ॥२१॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आए भिम लिवाइ। बैठाऔ सनमान सौं
राजा की ढिग आइ। अंतर कपरा बीच मैं ।।२२।।

इति श्री धर्मसंमाधे ग्यानप्रभत्रबर्ननं राजाभिममैनिचरचा दुतियौ विलास।।२।।

धर्मसंवाद तीसरा विलास

राजा कौ बचन चांडाल सौं : दोहा :

तक राजा पूछी यहै एक ब्रचन सति भाइ।
भयौ तिहारौ आइबौ कौन दिसनि तैं आइ ।।१।।

चानडाल कौ बचन :दोहा :

एक ठौर विलमैं नहीं इन्हि कौ यही सुभाइ।
पंछी पवन अतीत की दिसा कौन सी आइ ।।२।।
और सुनौ तुम सौं कहौं आगै भलौ विचार।
देखौ इतने नरनि कौ राजा होइ अधार ।।३।।
निरबल कौ बल जानिअै अनबोलत के बैन।
जिनि कौं जग सूझै नहीं तिनके राजा नैन ।।४।।
मातापिता जिनिकैं नहीं कुटुम बंधु कहु और।
तिनकौ राजा होति है तैसे तेही ठौर।।५।।
रक्ष्या गौवन की करैं विप्रनि के प्रतिपाल।
भोजन देत कुधारथी निर्धन करत निहाल ।।६।।
आठ पहर ढिग देखिअै क्रिस्न सु बैठे पास।
यातैं राजा जानिअै दरसन छऊ निवास ।।७।।

कबितु : चोरनि कौ बलु बोलिबौ झूठु सु बालक कौ बल रोइ बतायौ।
पंछिन कौ बलु आइ अकासु सु मीननि कौ बल जौ जसु पायौ ।।
ब्राम्हन कौ वलु बेद पढै पुनि मूरिख कौ बलु मौन ही आयौ
है सब कौ सब ई बल किस्न सु धर्म ही कौ बल सांच है ठायौ ।।८।।

दोहा : यह देखौ तुम सौं कह्यौ जुग जुग कौ व्यौहार।
और सुनौ वरनत अबै यहै मूल कौ सार ।।९।।

सोरठा : कुधारथी जो दार । आवै अतरेफी कहूं ।।
वाकौ देइ अहार। या फल कौ अंतैं नहीं ।।१०।।

कुडरिया : फल पावै जगनि करै अैसौ याकौ जानि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आवत देखि अतीत कौ विधिपूरंब सनमानि ।।
विधिपूरव सनमान आनि सुख आसन दीजै ।
भोजन भले कराइ त्रपित तब ताकौं कीजै ।।
किस्न कहै कबि यहै अन्न कौ दान बतावै ।
कोटि जग्य के करे करे कैसौ फलु पावै ।।११।।

सोरठा : देखौ सवै सु आनि । वेदनि के भेदनि कहै ।।
अन्न बराबरि दान । या सम और न दूसरौ ।।१२।।
जाकै नहिं संतान । ताके पिंड गया भरै ।।
पूजै वासिव थान । फलु पावै सौ जग्गि कौ ।।१३।।
बडौ दोष यह जान । राखै बिसुख कुधारथी ।।
वाकौ कछू न दान । आपुनु जौ भोजनु करै ।।१४।।

कुडंरिया : ताकौ भोजनु ध्रंकु है आपुनु बैठौ खाइ ।
द्वारै पयौ कुधारथी ताहि नहीं पहुचाइ ।।
ताहि नहीं पहुचाइ दया मन मैं नहिं *ल्यावै । ख*आवै
एतेहू पै और वचन कर्व से सुनावै ।
किस्न कहै किहि काज जगत जीवनु जू वाकौ
विमुख जो जाइ अतीत घ्रंकु भोजन है ताकौ ।।१५।।

दोहा : दारैं पर्यौं कुधारथी आपुतु भीतर खाइ ।
अन्न गऊ के मांस सम सुरापान जलु आइ ।।१७।।

राजा कौ वचन : सोरठा :

राजा पूछै बैन । चानडाल हम सौं कहौ ।।
जाकै कछू न हैन आवै घरै कुधारथी ।।१७।।

कबितु : देखियै दुर्बल दीन महा जिन्है दारिदु बार ही वार सतावै ।
पाछिले कर्मनि के पुनि हीन निसैदिन पेट के चेटक धावै ।।
किस्न कहै कबि ऐतेऊ पै फलफूल कै कंद के मूलनि पावै ।
अैसिन के घर आवै कुधारथी ताकौ कहा जतनै जू बतावै ।।१८।।

चानडाल कौ बचन :

दोहा : जोई आपुनु खात है कंद मूल फल पानि ।
सोई सब वाके धरै आगै देखि सु आनि ।।१९।।

छंदु भुजंगी : धरै आनि आगै सुनौ देखि सोई ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिलै कंद मूलै फलै फूल जोई ॥
भरै नीर सीरै करै तौन आनै ।
महा प्रेम की प्रीति की प्रीति मानै ॥
भलीभाँति भोजनु वाकौं किरावै ।
तबै फेरि पाछै सु आपूंनु पावै ॥
कहै हाथ जोरे भए जू दुखारे ।
करी आप किरपा इहां पाइ धारै ॥
जिही भांति सनमान संतुष्ट कीजै ।
तिही भांति तैसौ तही* जस लीजै ॥ख*तहां सन्त
यहै धर्म कौ मूल तत्वै* बखानौ । ख*तातैं
बडौ दान अैसौ नहीं और जानौ ॥
करै जग्य जेते जितै जो न होई ।
कहै किस्न तासौ जुरैगौ न कोई ॥
सुनौ भूप भुव के अहै ग्यान अैसौ ।
कढै बेद के भेद मैं देखि तैसौ ॥२०॥

राजा कौ बचन :

दोहा : राव जुधिष्ठिर पूछियौ बेदभेद व्यौहार ।
चानडाल तैं तौ कहौ याकौ कहा विचार ॥२१॥

कुडरिया : ताकौ दूषनु है कहा हमकौं देहि बताइ ।
राखै छुधित कुधारथी जो कबहूं कै आइ ॥
जौ कबहूं कै आइ वाहि कछूवै न दिबावै* । ख*नहिं पावै
किस्न कहै कबि सुनौ कौन फल लागै याकौ ।
विमुख जु जाइ अतीत* कहा दूषन है ताकी ॥२२॥ ख*जो अतिथ

चानडाल कौ बचन :

दोहा : राव जुधिष्ठिर जू सुनौ एकु वचनु चितु लाइ ।
जिहि घर फिरै कुधारथी बडौ दोष यह* आइ ॥२३॥ ख*है

छप्पय : प्रथम हीन जस होइ दुतिय कीरति कुल भाजै ।
त्रतिय तात सुर लोक तहां देबनि मैं लाजै ॥
चौथे पुंनि कराइ हाल पाछे कै छीजै ।
पिंड पांचये परै गिया पित्रै नहिं लीजै ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छठअँ त छार तिन की छढी सत सातअँ किस्न जहं ।
अठअँ धूक उन नरनि कह सु बिमुख जाइ अतीत तहं ।।२४।।

दोहा : और सुनौ तुम सौं कहौं राजा बचनक दोइ ।
दया करैं बिनु सांच की कपट जानिबौ* सोइ ।।२५।। ख*जानबी
पूजा देबनि की करैं मन भावना न आइ* । ख*होय
ते नर या संसार में फलै न पावैं ठाइ* ।।२६।। ख*सोय
ब्रत करैं तीरथ फिरैं जौ प्रतीति नहिं होइ ।
ते तौ फल पावै नहीं यह जानौ सब कोइ ।।२७।।
देखौ जाके जग्य में बिमुख कुधारथी जाइ ।
सो तौ फल पावै नहीं सुनौ जुधिष्ठिर राइ ।।२८।।

सोरठा : चोर होइ चंडाल । जदपि बैरी बाप कौ ।।
आवै भोजन काल । वा काजै कछु दीजिए ।।२९।।
यहै बचन सुनि लेउ । जाति बरन बूझौ कहा ।।
भूखे भोजन देउ । बडौ धर्म यह जानियौ ।।३०।।

कबितु : हौम करै बिनु मंत्रहिं जे अरु जे बिन हू तिल पिंड परावै ।
ते निरवैं नित पुन्न सबैं अपनौ जस वार ही वार बतावै ।।
किस्न कहै कबि कूप तडाग लगावत औरनि काम न आवैं ।
राव जुधिष्ठिर जू सुनिऔं तुम ए इतनै फल कौं नहिं पावैं ।।३१।।

दोहा : देखौ जा ग्रह कारिका जौ रितवंती होइ ।
पित्र पिंड पावै नहीं बिमुख जात हैं सोइ ।।३२।।
जे नर या संसार में बेटी कौ धन खात ।
तेई निजुकै जानियौ कुंभी नर्कैं जात ।।३३।।

कबितु : लागै पुकार गऊ दुज की अरि के दल ऊपर कौ दल साजा ।
लोभ नही तन और न कौ षट ऊ दरसै निकरै सुष काजा ।।
किस्न कहै कवि देखत यौ परजा अरु पुत्रनि एक समाजा ।
जे इतने पन पालत हैं मुनि पावत हैं सुरलोक सुराजा ।।३४।।

दोहा : राजा यह तुम सौं कह्यौ धर्म तत्व व्यौहार ।
आगै और जू पूछिहौ सो करिबौ उपचार ।।३५।।

राजा कौ बिचार :

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोहा : राजा सुनि अैसे बचन मन मैं क्यौं विचार।
ये तौ कोऊ हैं बड़े या जुग में अवतार ।।३६।।
राजा जब पूंछी यहै कहौ गुसाँई बैन।
धर्म तत्व जामें बढ़ै जियकौ उपजै चैन ।।३७।।

कबितु : काहे सौं धर्मनि की उतपाति* सु आदिक आछिर मूल सुनावौं।
ख*उतपत्त
थापना धर्मनि की कहि कौन सु वेद भेदनि माझ लखावौं।।
क्रिस्न कबि धर्मनि की विधि कैसे बनै तिनि कौं ठहरावौ।
काहे सौं धर्म विनासत है इन्हि के सत के निरनै सु बतावौ ।।३८।।

अतीत कौ वचन :

कबितु : सांच तैं धर्मनि की उतपाति* भई यह आदि के आछिर मानौ :ख*उतपत्त
थापना धर्मनि की जु छिमा पुनि बेद के भेदनि मांझ बखानौ।
क्रिस्न कहै कबि धर्महि की विधि होइ दया जब ही उर आनौ।
क्रोध बिनासत है किनि धर्मनि ए सबके निरनै निजु जानौ ।।३९।।

दोहा : राजा हम तुम सौं कही चित मानि अति प्रीति।
या प्रकार* की जानिबौ यहै धर्म की रीति ।।४०।। क*प्रकाल

राजा कौ बचन :

दोहा : ए अतीत पूछत तुम्हैं आगै एक बिचार।
सोई हम सौं कहौ भलीभांति व्यौहार ।।४१।।

छंद नराज : हौ कहे भले जु बैन बेद में कहे कि अैन,
मित्र कौ विदेस मैं सु देस देख जानिऔ।
है सब जहान जान, देखियौ निदान दान
और कौन होत मित्रग्रेह मांह मानिऔ ।।
आतुरीत* कौन आइ, किस्न यौ दई बताइ ख*अतरीत
अंत काल कौन की सहाइ आइ ठानिअै।
ए अतीत जानि जानि लीजिये कही कि मानि
कौन मित्र कौन कौ सु बेगि दै बखानिअै ।।४२।।

अतीत कौ बचन :

तब अतीत एसौ कहैं राजा सुनौ सुचेत।
जैसौ उ तुम पूछियौ तैसौ ऊतर देत ।।४३।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कबितु : राजा जुधिष्ठिर पूछी हमैं तिहि कौ तुम्है भेदु बतावत सोई ।
विद्या विदेस विषै पुनि मित्र कै गेह में नारि बताबत* जोई ।। ख*पतिव्रत
किस्न कहै कबि आतुरता महि मित्र बडौ धन मानत होई ।
अंत ही काल समै सुनि पुंनि सु राम बराबर औरु न कोई ।।४४।।

दोहरा : देखौ राजा धर्म तैं और मित्र नहिं होइ ।
जैसे तीनू लोक में प्रभु तैं बडौ न कोइ ।।४५।।
प्रभु तैं और न दूसरौ तीनि लोक मैं आइ ।
तेई प्रभु तुम कौ सदा देखौ करत सहाइ ।।४६।।

राजा कौ बचन :

दोहरा : राजा अैसे सुनि बचन पूछत भलौ बिचार ।
अहो गुसांई तुम कहौ एक और निरधार ।।४७।।
विप्र कहत सब स्वस्ति कौ सो ई या को आइ ।
उपजी हैं किहि ठौर तें हमकौं देउ बताइ ।।४८।।

अतीत कौ बचन :

दोहा : गाइत्री के बीच तें दुहि* काढी इक बार । ख*यही
उपजी स्वस्ति बिरंचि तें या कौ यहै विचार ।।४९।।

राजा कौ बचन :

दोहा : अहो गुसांई जू इतै एक बचन सुनि लेउ ।
आगैं अब पूछत तुम्हैं ताकौ ऊतर देउ ।।५०।।
चंद्रग्रहन कौ कौन फल सूरज कौ कह आइ ।
कैसौ घर बैठे दअै कैसौ तीरथ ठाइ ।।५१।।

कबितु : कोऊ देत मनि मुकताहल बिसाल लाल
कोऊ देत अन्न आछे भोजन करावहीं ।
कोऊ देत हेम ह्य बसन गयंद गाअै
कोऊ देत विद्या किस्न मंत्र हि सुनावहीं ।।
कोऊ देत जिमि गावैं जेतौ है सकित जामैं
कोऊ असनान तीर तीरथ के ठावहीं ।
पूछत जुधिष्ठिर यौ सुनिअै गुसांई चन्द—
सूरज गहन दान कौन फल पावहीं ।।५२।।

अतीत कौ बचन :

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोहा : जो राजा तुम पूछियौ सौ हम कहत बखान ।
चंदा सूरज ग्रहन कौ धर्मनि कौ परिवान ।।५३।।

कबितु : चंद गहन दान होत किनि लछि गुनौ
सूरज कौ या ही तें अधिक आइयतु* है । ख*पाइयतु
तीरथ के तीर कोटि कोटिन बढतु जानौ
किस्न कबि बेदनि के भेद गाइयतु है ।। ख*सरधा
सारधा१ की महिमा कौ पावत न पार कोऊ (१अर्थ–श्रद्धा)
वैठे घर घनै तौ सहस पाइयतु* है । ख*ठाइयतु
अन्न हेम बसन गयंद गाअैं और सब
जैसौ जोई देत ताकै तैसौ पाइयतु है ।।५४।।

राजा कौ बचन :

दोहरा : राजा अैसे सुनि बचन पूछत है तिहि बार ।
अहो गुसांई तुम कहौ आगै और बिचार* ।।५५।। ख*एक और निरधार

कवितु : गंगा धन्हाअैं कहा फल होइ वतावहु बेद के भेदनि सोई ।
और कहौ जमुना जल की महिमा महिं मंडल में किमि होई ।।
पूछत राजा जुधिष्ठिर जू कबि किस्न कहै सुनिऔ सव कोई ।
पिंड गया महं पारत जे नर ताके कहा फल पावत सोई ।।५६।।

अतीत कौ बचन :

दोहा : गंग जमुन असनान कौ गया पिंड फल सोइ ।
सोई हम तुम सौं कहैं जाकैं जैसौ होइ ।।५७।।

कबितु : गंगाजू :

तारन तरोवर जुग जुग जू* जानियतु ख*के
कैयौ लोक लोक पालै प्रगट* ही धार है । ख*परलोक प्रघट
किस्न कबि कहै सुनी बेदनि के भेदनि मैं
दारावती बदरी* के दार किनि डार है ।। (प्रति में बदली
जाति हूसमूल फल चायौं* ई पदारथ ऐ ख*जोतिहू निर्मल फल
छीटा तन परै पाप जारत पहार है ।
अस्तुति करत ब्रंह्मा किस्न औ महेस देखौ
गंगा जू की महिमा की कीरति अपार है ।।५८।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कबितु जमुना जू की :

बांके वांके अधम जनम जेते जेतिन के
कबहूं न छांडें करै ऊसे उतपात है ।
आठ हूं पहर पराचित कौ अहारू मानौं* ख*पर चिन्ता कौ अहार मानै
एकै पल नहीं राम नामहिं सुहात है ।।
तेऊ केहू बार कहूं कढे मझियाइ जलु
आवत ही तीर पाप कोटिन विलात है ।
किस्न कवि बेदनि मैं सुनी यह भेदनि में* ख*कहै (सुनी) बेदन बिचारबानी ।
जमुना अन्हाअैं जम लोकहि न जात है ।।५९।।

छपद गया कौ :

ख* पुरिष अधोगति जाइ ताहि सुरलोक पठावहि ।
पित्र करै हुनि आस त्रपति तन तिन्है करावहि ।। ख*
ख* कुलदीपक उजियार चार देसनि जस छावत ।
अर्थ धर्म अरु काम मोछि सु पदारथ आवत ।। ख*
कहि किस्न सुफल जीवन जुगत* जग कीरति जागत जिमि । ख*जगत
भरत पिंड गया मह जे नर ते नर फल पावत इमि ।।६०।।

दोहा : स्वर्ग लोक बंछत यहै कुल मैं अैसौ होइ ।
आवै पिंड गया भरै उरन पिता तैं सोइ ।।६१।।

राजा कौ बचन :

कबितु : बूझत राजा जुधिष्ठिर गू कहियौ तुम बेदनि भेद बिचारे ।
काहे तैं होत है आंधरे पंग सु काहै तै अंगनि भंग बिकारे ।।
काहे तैं दारद के दबटैं नर काहै तैं रोग महा तन भारे ।
काहै तैं एकें दुखी जग में अरु काहै तैं एकें सुखी अधिकारे ।।६२।।

अतीत कौ बचन :

दोहा : राजा तुम पूछत हमैं दुख सुख कौ व्यौहार ।
सोई सुनि सब लीजिए* बेदनि भेद बिचार ।।६३।। ख*सब चित दै सुनौ

तोटक छंद : सुनि बेदनि, भेद बिचारि यही । गति कर्मनि की सब होति सही
बिषमानन जे पर द्वार गए । इनि पापनि तैं तेई अंध भए ।।
निसु वै दिन मास अहार जिन्हैं । तुम जानियौ होत हैं पंग तिन्है ।।
पर के धन कौं पुनि छीनि धरैं । तिहि तैं दल दारिद मांझ परैं ।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिय मारत जानै दया न करी । तिनि की सब रोगनि देह भरी ।।
दुजराजनि कौ तन घात क्यों । तिनि कौं सुनि पुत्र विछोह परौ ।।
पर निंद्रक बैठ सभा मैं करै । उहि तैं उनिके किनि कुस्ट परै ।।
इनि बातनि* तैं सुनि होत दुखी । अब और कहूं तिनि जानु सुखी ।।६४।।

ख*पापन

दोहा : दुखी होत जिमि कह लए तुम सौं राजा आइ ।
सुखी होत संसार मैं तिनि कौं वरनत ठाइ ।।६५।।

छंद तोटक : पग आपनै तीरथ दौरि गए । सुखपाल सजे हिनि आनि लए ।।
धरि व्रतनि कौं पनु मांझ मनै । षट ख रस ब्रिजन भौग बनै ।।
गजराज तुरी अरु गाउ दये । उनतें अधिके अति आनि लए ।।
तप सौं तिनहि तन जारि दयौ । भुवपालनि कौ नरपति भयौ ।।
नित अंननि कंचन सौ बरषै । सोई निर्मल सुख सरीर लसै ।।
यह और की और न होति भई । विधि नै लिखि मांझ लिलाट दई ।।
भुगतै भली भांति वनाइ अबै । करतार कौ लागै कछू न तबै ।।
दयौ दातव आपनौं पावत है । कबि किस्न सुनी सु बतावत है ।
तुम पूछी जुधिष्ठिर राव सही । निजु जानियौ बात बिचारि यही ।।६६।।

राजा कौ बचन :

दोहा : सुनि राजा अैसे बचन पूछत है तिहि बार
अहो गुसांई तुम कहो हम सौं और बिचार ।।६७।।

कबितु : काहे तैं परत नर नरक मझार देखौ
काहे तै सुलछि चवरासी जोनि जावहीं ।।
काहे तैं फिरत चंदा सूरज पहर आठ
काहे तैं सु तारायन चार्यौं दिसि धावहीं ।।
काहै तैं कुमति औ सुमति साजै मन मांहि
काहे तैं सु कहौ किस्न कबिता बतावही ।।
काहै तैं फिरत* भूत प्रेत पहुमी (मैं) पुनि ख*भमंत
काहे तैं सु गर्भनि बसेरौ सुनि पावहीं ।।६८।।

अतीत कौ वचन :

दोहा : तब अतीत अैसौ कह्यौ सुनौ जुधिष्ठिर राइ ।
सोई हम बरनत अबै जो तुम पूछी आइ ।।६९।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छंद संजुत : तुम पूछियौ हमकौं अबै । यह वरनि है देखौ सबै ।।
नहिं पाप कौं मन मैं डरैं । नर नरक मांझैं ते परैं ।।
तिनि राम नाम नहीं लयौ । वह लछि चवरासी गयौ ।।
रबि चंद तारायन धरैं । डर काल कौ फिरीबौ करैं ।।
अरु क्रोध तैं कुमतैं भई । सोइ सील तैं सुमतै ठई ।।
हिनि भूत प्रेत भए फिरैं । सव कर्म नीचनि तैं घिरैं ।।
नर देह देखौ पावहीं । गोपाल गुन नहिं गावहीं ।।
तप तीरथैं करि ना लए । वस बास गर्भनि कै भए ।।
तुम जानियौ निजु कै यहै । कबि किस्न बेदनि की कहै ।।७०।।

राजा कौ वचन

दोहा : अहो प्रभू रिषि राज जू बिनती सुनौ हमारि
बूझत हैं तुमकौं अबै सो सब लैहु विचारि ।।७१।।

छप्पय : कितिक दूर आकास कितिक तारायन होई ।
कितिक धार करि मेघ आनि वर्षत है सोई ।।
कितिक धरनि नव खंड कितिक पाताल बखानौ ।
कितिक सात हू सिंध चंद सूरज उनमानौ* ख*अनुमानो
कहि किस्न कितिक जागंत जग पवन पूरि आवंत जंह ।
यहि ऊतरि बूझत हौं तुम्हैं इन सव के परिमान कह ।।७२।।

अतीत कौ वचन :

दोहा : तुम पूछी हम सौं अबै सोई बरनत आइ
सोई सत्र सुनि लीजिए मन चित कर इक* ठाइ ।।७३।।ख*एकै

छंद भुजंगी : सु कै करौ डाइ मन चित काजं । सुनौ रूप बैराट कौ नाथ साजं ।।
जितौ दूर लिल्लाट काजै बखानं । इतौ दूरि आकास कौ आहि जानं ।।
धरैं मेघ ऐते बरंषंत धारं । जितौ ई दसौ द्वार देखौ बिचारं ।।
लगे देखिए ए अबै नैन दोयं । यहै चंद सूरज्ज की जोति जोयं ।।
सबै हाथ साडे भई तीन देहं । यहै खंड नौ ऊ जिमी जान लेहं ।।
भए सिंधु सातौ सबै रुद्र मानं । पगै आहि हाताल की जौति थानं ।।
लसै नैन तारा तही तै सुदेसं । भई अंग अंगै प्रभा आनि बेसं ।।
जगै एक हंसै वही तौन ततं* । सबै ओर सौ त्रै गुनै रूप मन्ते ।।
ख*गजे एक हू ले यही तोंन तन्ते ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बढ़ै बाव एतौ दसौ देस आवं । तनै तौन स्वासा प्रमानै बतावं ।।
कहै किस्न एसौ बसै बास पिंडं । विधाता बनायौ सु तैसौ ब्रह्मंडं ।।७४।।

दोहा : यहै देह सब होति है पंच तत्त मिलि आइ ।
पिरथी जल वावै अगिनि अरु अकास कौ ठाइ ।।७५।।

राजा कौ बचन :

दोहा : बूझत और तुम्हैं अवै सोई देउ बताइ ।
ब्रह्म सबै या देह मैं वसत कौन से ठाइ ।।७६।।

कबितु : हाथ कै पाइ किधौ अंगुरी नख कै पिडुरी कटि जंघन केरौ ।
नासिका नैंन मुखै रसना सवनै सुनि सीस हिअै हठि हेरौ ।
किस्न कहै कबि बूझत है करियौ किनि वेदन भेद निवेरौ ।
देह मैं नाम अनेग धरै सोइ ब्रंह्म लियौ किहि ठौर बसेरौ ।।७७।।

अतीत कौ वचन :

दोहा : तुम बूझी हमकौं यहै सुनि लीजौ चितु लाइ ।
ब्रह्म वसत या देह मैं तैसौ बरनत आइ ।।७८।।

कबितु : जैसौ ई पंकज माँझ पराग लसै उपमा अपनै मन आनौ ।
वा बिनु और न ठौर कहूं सुनि तेल तिली मधि कै उनमानौ ।।
किस्न कहै कबि ता घट पूरन बेदनि भेद बिचारि बखानौ ।
रौमहि रौम रह्यौ रमि कै बसबास यहै किनि ब्रह्म कौ जानौ ।।७९।।

दोहरा : राजा अैसे सुनि बचन मन ही मांझ बिचारि ।
अंतर कपरा बीच कौ तवहि दयौ वह डारि ।।८०।।

इति श्री धर्मसंमाधे ग्यानप्रभावर्ननं राजा अतीत चरचा अंतर पट खोलनं नाम तृतीयो हुलास ।।३।।

धर्मसंवाद ४

दोहा : अंतर कपरा टारि कैं दरसन कीनौ ठाइ ।
मन ई सौं पूजा करी विधिपूरब जो आइ ।।१।।
पूजा करि अस्तुति करी बेदन भेद बनाइ ।
जनम सुफल कीनौ सबै अबै हमारी आइ ।।२।।
सेवक जानि कृपा करी मेंटन दुख के दंदु ।
दरस तुह्मारे तैं भयौ हमैं परम आनंदु ।।३।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तब राजा विनती करी अहो महारिषिराइ ।
माफ करौ हमकौं सबै बचन दोष जो आइ ।।४।।

कबितु : जायौ नहीं तुम कौं तब मैं मति मंद किधौ रघुनाथ हरी है ।
आदर भाउ भयौ न इहां तेहितैं इतनी बिनती जु करी है ।।
आपुनु तौ हौ वडे रिषिराज कछू मनमैं नहिं एक धरी है ।
किस्न कहै कबि माफ करौ हमतैं इतनी अब चूक परी है ।।५।।

बिनती करत राजा दोइ कर जोरि ठाडे
अरज इतेक अंसी याहि सुनि लीजिअै ।
किस्न कबि कहै सेवा करें भांति भांतिन की
परसै चरन बैठे राम रस पीजिअै ।।
हौं तौ वडौ सेवक जनम जेते जेतिन कौ
ताही तैं दयाल कृपा जानि जन कीजिअै ।
आठ हू पहर साठ घरी पल ऊपै पल
ए जू महाराज अब दरसन दीजिअै ।।६।।

सोरठा : बचन एक सुनि लेउ । जनकौ एजू जानिकैं ।।
बैठे दरसन देउ । इंश्या[13] के भोजन करौ ।।७।।ख*इच्छा

अतीत कौ बचन :

दोहा : राजा के अैसे बचन सुनत भए रिषिराइ ।
वरनत है देखौ इतै चित माझ ठहराइ ।।८।।
तव अतीत ऐसी कही धर्म तत्त की बात ।
राजनि ही के अन्न कौं सुनि हम नाहीं खात ।।९।।
बेदनि मैं वरजी यहै तातैं कह्यितु आइ ।
भोजन राजनि के घरनि करन कह्यौ नहि जाइ ।।१०।।

राजा कौ वचन :

दोहा : राजा अैसे सुनि बचन कही करैं हम सेउ ।
जौ भोजन नाहीं करौ दान कछू किनि लेउ ।।११।।

कबितु : गाम जिमि गजराज तुरी मनि औ मुकताहल है सब सोई ।
अंमर भांतिन भाँतिन के सु जरी जरवाफ गनै किनि कोई ।।

---

१३. इच्छा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किस्न कहै कवि कीजै कृपा करतार के कौन कमी हिनि होई ।
भोजनु जौ तुम नाहीं करौ प्रभु लीजिए दान लगै मन जोई ।।१२।।

अतीत कौ वचन :

धर्म समाधिय मैं* बरजी सोइ वेद के भेद करैं तैं लखावै । ख*समाधिहि ए
जद्यपि राज तिहूं पुर कौ कवि किस्न कहै तिनिकौ ठहरावै ।।
ताही की चाह नहीं तिनकौं मनि औ मुकताहल कौनु बतावै ।
राजनि के घर कौ सुनि दान सु काम कछू हमरे नहिं आवै ।।१३।।

राजा कौ बचन :

दोहा : रिषि के अैसे सुनि बचन राजा ऊतरु देत ।
भोजन दान इहां सवै नित हू ए रिषि लेत ।।१४।।

कबितु : ब्राह्‌मन देखौ अठासी हजार करैं हिनि भोजन बैठि सबैई ।
दीजतु है दिन ही दिनु दान परै परभी पुनि आनि जबैई ।।
किस्न कहै कवि कंचन अन्न पढै दुज पूरन लेत तबैई ।।
नाहीं करौ तुम कारन कौन कहौ हमसौं किनि आपु अबैई ।।१५।।

अतीत कौ बचन :

सोरठा : भोजन करत बनाइ । ब्रॉह्‌मन ए यातैं सुनौ ।।
धन के लालच आइ । लोभी करत कहा नहीं ।।१६।।

दोहरा : वसी भए सव लोभ के ये तौ ब्राह्‌मन आइ ।
माया श्री रघुनाथ की मुनि कौं मोहत जाइ ।।१७।।

कबितु : लोभनि तैं मति होइ लटी अरु लोभइ तैं जिय पापु बसाई
लोभइ तैं धन धर्मु घटै किनि लोभहि तैं जस कीरति जाई ।।
लोभनि तैं नहिं और लटौ कबि किस्न सु बेद के भेद वताई ।।
लोभ मैं एते भरे अपलच्छन लोभ कहौ सु* कहा न कराई ।।१८।।ख*जू
झूठ मुसाहिब पाप अमीन दिवान दगा तिहि कौ उनमानौ ।
लालच सैन्यापती जिहिकौ अपकीरति नेत नगारिनि बानौ ।।
किस्न कहै पटरानी बहै कुमतै किनि क्रोधनि पुत्र बखानौ ।।
राव जुधिष्ठिर जू सुनिअै तुम लोभ कौ एतौ लवाजिमा जानौ ।।१९।।

सोरठा : सब दोषनि कौ मूल । लोभ अहै अैसौ सुनौ ।।
पहिल होत है फूल । जैसैं फल पाछैं लगै ।।२०।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंडित षढ़ै* सयान । लेत नहीं यातैं सुनौ ।।   ख*बडे
राजनि ही कौ दान । बिष समान सो जानिबौ ।।२१।।

दोहा : जे तौ राजन के घरै आवत भोजन पाइ ।
तिनि काजै पातिक लगै सब्र दोषनि कौ राई ।।२२।।
पढत* बेद के भेद मैं सुनौ जुधिष्ठिर बैन । ख*कडात
इति तैं राजनि कैं कह्यौ भोजन कछू न लैन ।२३।।

सोरठा : होत बडो फल आइ । राजनि कौ दरसै लअै ।
छिअैं दोष लगि जाइ । धर्म तत्त बरजी यहै ।।२४।।

राजा कौ बचन :

दोहा : सुनि सुनि कैं अैसे बचन राजा बूझत जात ।
यह तौ तुम हमसौ कहौ अहो गुसांई बात ।।२५।।

कबितु : काहे तैं राजनि कौ दरसै पुनि लैन कह्यौ सुफलै किनि आई ।
काहे तैं द्वारन* कौ अपराध लगै वह कौन से बेदनि गई ।। ख*धारेन
काहे तैं दूछन* आइ छिअैं कबि किस्न कहै करियौ ठहराई । ख*दूषन
बूझत हैं तुम कौं तिहि तैं प्रभु देउ हमैं किनि आपु बताई ।।२६।।

अतीत को बचन :

कबितु : पाछिले पुंनि करैं इतने जितनौ जग बेद के भेदनि जोई ।
तीरथ पर्वनयै गुन ग्यान वचे इनि पै इनि मैं नहिं कोई ।।
अंस दसौ द्रगपालनि के तुम जानहु किस्न बताबत सोई ।
याही तैं राजनि कौ दरसैं पुनि लैन कह्यौ सुफलै सब होई ।।२७।।
दुष्ट महानर जे जग मैं तिनि के धन धामनि भीतर आनौ ।
लीन अलीन कौ नाहीं बिचार कहै कबि किस्न कहा लौं वखानौं ।
उतिम मद्धिम और निकस्ट सुतीनि हू कौ हिनि एकु ठिकानौ ।।
राजा के धारन* कौ अपराध सु याही तैं लागतु है तुम जानौ ।।२८।।
ख*राजन के धन
जैस ही नारे नदी उमड़ी पहचै हुनि गंग कौ नीरु कहावै ।
याहू तैं आगै समुद्रैं गई तब खारी भई मिलि कै इकि ठावै ।।
जानहु अैसौ बिचार यहै कवि किस्न सु बेद के भेद बतावै ।
याही तैं छीजतु नाहीं सुनौ सब दोष सु राजनि के घर आवै ।।२९।।

राजा कौ बचन :

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोहा : सुनि राजा अैसे बचन तब पूछत है और ।
दीजै अपुनु बताइकैं सोई सब इहि ठौर ।।३०।।

सोरठा : सो सब देउ बताइ । कहा लगत देखौ* छिअैं ।। ख*दूषन
राजनि ही कै आइ । कौन दोष भोजन करैं ।।३१।।

अतीत कौ बचन :

दोहा : तुम पूछी हमकौं अबै कहैं बेद विधि देत ।
तब अतीत अैसौ कहयौ राजा सुनौ सुचेत ।।३२।।
राजनि कैं भोजनु करैं तन असुद्ध कौ पाप
सुद्ध होत लाखनि करैं गाइत्री कौ जाप ।।३३।।

कबितु : जैसे छुवै दस स्वानिनि के सु कुलाहल* एक बतावत तैसौ । ख*सुफलाहल
और इन्हैं दस बीसक तैं तन तैलिय कौ किनि लेखत बैसौ ।।
क्रिस्न बताबत एतिन तैं रजकैं जिमि जानहु जू जग जैसौ ।
देखहु राजनि ही कैं छिअैं पुनि पातकु लागतु है यह अैसौ ।।३४।।

अठासी हजार रिषिन कौ बिचार :

दोहा : सुनत भये देखौ तबै उनि सब ई कौ ग्यान ।
बैन जु कहतु अतीत यह ज्यौ खांडे बिन म्यान ।।३५।।

सोरठा : मतौ करत मिलि तौन । आपुस मैं बैठे सबै ।
राजा के हुनि जौन । सहस अठासी रिषि हते ।।३६।।

कबितु : बैन अतीत नै अैसे कहे सुनि सब बेद कौ भेद सवावौ ।
तातैं रह्यौ नहिं जात इहां किनि कोऊ जू कोट विचार बनावौ ।।
पूछत हैं कबि किस्न सुनौ पठिता पुनि पुरन बेगि बतावौ ।
आपुस मांझ कहैं सबई अब आपुनु कौन मतौ ठहरावौं ।।३७।।
कोऊ कहै चलिअै अब ही अरु कोऊ कहै जलुवै नहि पीजै* ।
ख*सब ही सुनि लीजे
कोऊ कहै कछु और कहै* यह ताहू कौ आपुनु ऊतर दीजै ।। ख*पडे
कोऊ कहै भअैं भोर भलै अरु कोऊ कहै सब ई सुनि लीजैं* ।
ख*जल हियांन पीजे
बैन अतीत नै अैसे कहे कहि किस्न इहां रहिकैं कह कीजै ।।३८।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोहा : अग्र विप्रनि* कीनौ मतौ आपुन मांझ बिचार । ख*जब ही रिषन
अपनैं अपनैं ग्रेह कौं सबई भए तयार ॥३९॥

छंद संजुता : सबई तयार भये तबै । उठिकैं चले हुनितैं जबै ॥
तब आसिका नृप सौं कही । हम जात है ग्रह कौं सही ॥४०॥
अब दानु तौ नहि लैंइगे । दरसै नहीं पलु दैंइगे ॥
इहि तौं अतीत यहै कही । सब बेद की वरनी सही ॥[१४]
जब ग्यान ती जिय मैं भयौ । सुनिकैं सबै बचनै ठयौ ॥
अब सीख एतिक मानिबौ । इनि कौं बडौ प्रभु जानिबौ ॥४१॥

रिषि कौ बचन :

सोरठा : सुनहु जुधिष्ठिर राइ । जात इहां तैं हैं सबै ॥
अब ही देखौ आइ । बचन कहे अैसे रिषिन ॥४२॥

दोहरा : जब ही सब रिषि उठि चले देखौ ह्यांतैं आइ ।
धृक धृक तबै अतीत सौं कहत जुधिष्ठिर राइ ॥४३॥

छंद हरिगीता : कहियौ जुधिष्ठिर राइ नैं (सु) अतीत सौं धृक्काल ई ।
इनि आनि जग्य विध्वंस कीनौ देखियतु है हाल ई ॥
तुम तौ बडे पापिष्ठ पहुमी बैन आनि सुनाइयौ ।
करियौ सबै अपमान एतौ एसवै रिषि जाइयौ ॥४४॥
नहि होत आइ अतीत अपनौ चित माझै मानिबौ ।
अनजान छौचतु आनि काजै डाठिबौ जिमि जानिबौ ॥
किहि काज काहुव दोसु लावैं कर्म की गति है भई ।
कहियौ तबै कबि किस्न अैसी होइगी विधना ठई ॥४५॥

दोहा : जग्य विधानस है कियौ बोलत बैन अनिष्ट ।
तुम तौ पूरब जनम के आउ बडे पापिष्ट ॥४६ ।

अतीत कौ बचन :

दोहा : सुनि अतीत अैसे वचन राजै ऊतर देत ।
जोई* नर पापिष्ट जग एतौ नहि करि लेत ॥४७॥ख*जेई

कबित्तु : कातिक जे न करैं असनान नहीं अरु माघ विषै करि लैई ।
और परैं परभी जब ही बयसाख समै* जसु दान न देई ॥ ख*विषै

१४. ख यहाँ पद्य का क्रमांक नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किस्न कहै भगवंत गुनै न सुनै अधमै जिय जानहु जेई ।।
देखहु राव जुधिष्ठिर जू तुम पापी कहावत हैं नर तेई ।।४८।।

दोहा : बरजत देतनि और कौं आपु करै नहि आइ ।
रितु[१५] मानै निसु कुही [१६]कीते नर पापी ठाइ ।।
तीरथ ब्रत करै नही निंद्रत औरनि जाइ ।
वडौ अधमु सिसार मैं कहिनु देखौ ताहि ।।५०।।

राजा कौ वचन :

दोहरा : सुनि राज ऐसे बचन विनती कीनी ओर ।
सोई सब्र सुनि लीजिए प्रभु जू अैही ठौर ।।५१।।
साध मिलै फलु होतु है बेदनि दई बताइ
दरस तुमारै तें अबै सबै चले रिषि राइ ।।५२।।

अतीत कौ वचन रिषिन सौं :

दोहा : तव अतीत पूछी यहै तुम रिषि काहे जात ।
सोई सब्र हम सौं कहौ अपनै जिय की बात ।।५३।।

सहस अठासी रिषिन कौ बचन :

दोहरा : : बचन भयौ सब्र रिषिन कौ अैसौ एकहि बार ।
तुम ही तौ प्रभु जू कह्यौ हमसौं यहै बिचार ।।५४।।

कबितु : धर्म के तत्तमझार कढ्यौ यह राजा के धारन* कौ परिमानौ ।
ख*राजन के धन
आपुनु तौ पुनि दीनौ बताइ सु बेद के भेदनि ठौर ठिकानौ ।।
ताहितै किस्न कहै कबिता ब्रजमंडन* की महिमा उर आनौ।।ख*ब्रजमंडल
सो सुनि ग्यान भयौ उर में अब याही तैं जात सबै रिषि जानौ ।।५५।।

अतीत कौ बचन :

दोहा : तुम रिषि काहे जात हौ इतै सुनौ दैकान ।
राजा अरु पुनि तीरथै जानौ एक समान ।।५६।।

कबितु : छोटे छोटे नाररिन कौ पीवत न नीर कोऊ
पहुचै तरंगिनि में ताही सम आनिबौ ।

---

१५ अर्थ रति
१६ अर्थ–कुहू अमावास्या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऊच अरु नीच सब आवत नरिंदनि कैं
याते छऊ दरसै निवास निजु मानिबौ ।।
जैसौ जौन ध्यावै तैसौ तौन फल पावै उन्हैं
कछु न लगावै किस्न कबिता बखानिबौ ।
प्राग पुहकर गंगा जमुना औ गौमती जू
तीरथ समान तुम राजनि कौं जानिबौ ।।५७।।

अठासी हजार रिषिन कौ बिचार :

कबितु : कबहूं कहत राज धारन असुभ है जू
कवहूं कहत सोई सुभ कै लहत हौ ।।
कबहूं कहत वेद भेदनि विचार वानी
कवहुं अयानी बात ताहू कौं गहत हौ ।।
कवहूं कहत किस्न कबिता सुमति देखौ
कबहूं कुमति हू की कीरति चहत हौ ।
कैधौ भयभीत तुम भए हौ अतीत अब
वैसी ही कहत अब अैसी ई कहत हौ ।।५८।।

अतीत कौ बचन ।

दोहा : राजा पुनि विबि भांति के होत सुनौ संसार ।
सोई बरनत हैं बेदनि भेद बिचार ।।५९।।
उतिम तिसि कौं जानिबौ देखौ सब रिषि राइ ।
तीरथ से राजा कहे तिनिके सुनौ सुझाइ ।।६०।।

कबितु : लागत पुकार गाल ब्रह्मन की सुनत ही
ताही छिन त्यार तन लोभै न गहत हैं ।
करैं रन हंक हो निसंक समसेरन सों
बांके बांके बैरिनि के दल कौं दहत हैं ।।
किस्न कबि कहै जाकी परजा अनंद अति
आठ हू पहर जस कीरति चहत है ।
वेद मत मानैं दया धर्मन निधानैं देखौ
तीरथ समान अैसे राजनि कहत हैं ।।६१।।

---

१७. यहां हस्तलिखित प्रति में पुनः ५६ अंक पड़ा है, इस प्रकार उसमें क्रमांक में दो० का अंतर पड़ गया है। यहां क्रमांक ठीक करके दिये गये हैं ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोहा : उतिम के गुन कहि लए तुम सौं याहीं ठौर ।
मद्धिम राजनि के सुनौ लच्छिन बरनत और ।।६२।।

कबितु : प्रजा दुखित जाकी देखियतु है जू अति
आपुनु सुखित अनरीतिनि कौ ठानहीं ।
करै न निसाफ अव साफ सब दोषन कौ
जांचक न आबै, दया मन में न आनहीं ।।
जुरै रन जंग संक चीनति न राम कौं (सो
ताको जस कैसें ऋस्न कबिता बखानहीं ।।
लीजिये न दान तुम सुनौ ऐसे राजन कौ
जाय बेद भेदन के कहे कौं न मानहीं ।।६३।।

रिषिन के बचन :

दोहा : दुजन सुनै ऐसे बचन वा अतीत के आय
नव ही तौ पूछत भये मिलिके एकई ठाय ।।६३अ।।
उत्तम मद्धिम कहि लये जे राजा सब और
राब दुधिस्टिल जू अवै कैसे है यही ठौर ।।६३ब।।

अतीत कौ बचन :

दोहा : पाछिले (सु) राजा भये जनकादिक जे आइ ।
तैसेइ सब्र तुम जानियौ अबै जुधिष्ठिर राइ ।।६४।।

छंद भुजंगी : अवै जानियौ जू जुधिष्ठिर रावै ।
कहे और पाछे भये भूप ठावे ।।
(जुगै सत में वे) हरीचंद राजा
तवै राम त्रेता सबै सुक्ख साजा ।।
सुनी है पृथ की सु है कीर्ति भारी
नवौं खंड जानैं सु पृथ्वी सुधारी [१८]
बडे दानि देखौ बली जे कहाये
धरैं रूप वावन्न कौ नाथ आये ।।

---

१८. क: प्रति में छंद सं० ६१ से ६५ तक पन्ना खो जाने से मिले नहीं। ख: प्रति में ये दो पंक्तियां इस प्रकार हैं : सुनी प्रथी की किन कौ रति भारी। नब खंड जातें पृथवी सुधारी ।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नलै और नल्घोष ते तौंन दोई
जबै मानिधता सुने और कोई
बलीलोचनै और ते तौन वैसे
दलीपै दया कौं प्रियाव्रत जैसे
भये और भारत कौं जौंन जाने
धं रंमातमासी घरा पै निदाने
इते भूप जेतौ कहे क्रस्न जैसे
इन्हें जानियौ जू अबै आइ तैसे ।।६५।।

दोहा : जैसे हम तुम सौं कहे ए सब राजा आइ
तैसे ही तुम जानियौ अबै जुधिष्ठिर राइ ।।६६।।
एतौ राजा चलत है बेदनि के परिमान
ताही तें तुम लेउ जू देखौ रिषि हौ दान ।।६७।।

रिषिन कौ वचन :

दोहरा : तब सब रिषि बोले यहै सुनौ गुसाईं बात।
धारन राजनि के अबै लेतनि जिअैं डरात ।।६८।।

अतीत कौ वचन :

सोरठा : गुन तौ एकौ आइ। ब्राह्मन अगिनि सरूप कौ ।।
देखौ जू रिषि राइ। जिय में कहा डरात हौ ।।६९।।

कबितु : वह परचंड रूप होत गुन आपनै ई
यह परचंड बेद भेदनि पढो ई है।
वह देत बार दुम डंडनि कौं बनु देखौ
यह करै छार औ कुमति किनि सोई है ।।
याकौ बाकौ एक ही सुभाव कबि किस्न कहै
इन उन बिना सिद्ध कारज न कोई है।
काहे कौं डरात राजधारन कौं रिषि तुम
दुज अरु दावानल एक सम दोई है ।।७०।।

दोहरा : हम तौ बेदन भेद की तुम कौं दई बताइ।
सहस अठासी रिषि सुनौ बैठौ जू हिनि आइ ।।७१।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रिषि बैठे सुनि कैं सबै अपनैं अपनैं ठौर।
वेद भेद बांचन लगे अति उछाह सौं और ।।७२।।

राजा कौ विचार :

सोरठा : राजा कैं पुनि आइ। जिय मैं अति आनन्द भयौ ।।
अपनै अपनै ठाइ। बैठे सब रिषि देखियौ ।।७३।।

दोहा : राजा जब जिय मैं कयौं अैसौ यहै विचार।
एतौ पुनि कोऊ बडे जानि परे अवतार ।।७४।।
जिन ही काजैं करत ते जग्य जाप अरु दान।
तिन ही तौ दरसन दयौ देखौ हम कौ आत ।।७६।।

छंद हरिगीता :

(तुम) लगत कोऊ पुनि बड़े किनि देवता से मानियौ।
(मैं) पूछियौ तिहितैं अबै निजु नाम जौन बखानियौ ।।
(हौ) अग्नि बरुन बिरंचि कैधौ संकरै जू हौ सही।
कै किस्न आपै आपु आए जानिअै जिय मैं यही ।।
गुर सुरनि के, सुरपति, कैधौ चंद्रमा, कै भान हौ।
वसु बेद मूरतिवंत मानौ गौरिनन्द निदान हौ ।।
ग्रह नछत्रै गंधूपै कै (हौ) और सबनि बताइयौ।
कैधौ पिता तुम धर्म मेरे रूपु धरिकै आइयौ ।।
(मैं) करतु हौं बिनती इतै कर जोरिकें सुनि लीजिए।
किरपा करौ जन जानिकैं दरसै अबै निजु दीजिए ।।
अपराध कीजै जू छिमा अनजानतैं बचनै कहे।
कबि किस्न भनि पुनि आइ राजा धाइकै चरनै गहे ।।७७।।

धर्मराइ कौ बचन :

सोरठा : तुम तौ उपजे आइ। धंनि धनि कुल में बड़े।
लीने धर्म उठाइ चरननि तैं राजा तबै ।।७८।।

दोहा : धंनि तुम्हारे पिता कौं धंनि तुम्हारी माइ।
धंनि तुम्हारी सुमति कौं सुनौ जुधिष्ठिर राइ ।।७९।।

कबितु : द्यौस कौ दीपक है किनि भान,
सु रात कौ दीपक चंद्रमा होई।
देह कौ दीपक है किनि ग्यान
यहै पुनि जानहु जू सब कोई ।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्रिस्न कहै तीनि हू लोकनि
दीपक धर्म बतावत सोई।
राव जुधिष्ठिर जू सुनियौ
कुलदीपक पुज सुपुत्र हि होई ॥८०॥

दोहा : जैसे ए दीपक कहे सुनौ जुधिष्ठिर राइ।
तैसे तुम दीपक भए कुलै हमारे आइ ॥८१॥
देव लोक बैठे सुन्यौ सुजस तुम्हारौ आइ।
वडौ भयौ आनंद जिय देख्यौ तब ही आइ ॥८२॥

सोरठा : अैसौ रूपु बनाइ, लैन परिछया आइयौ।
धर्मराइ हम आइ, सुनो पुत्र तुहयरे पिता ॥८३॥

कबितु : प्रीति परमारथ सौं आठउ पहर पुंन्न
दान काजै संकर सुभाउ सम लेखे हौ।
जग्य जाप तीरथ बरत सौ सुहात अति
ग्यान ध्यान बेदनि के भेदनि विसेखे हौ॥
मूरित मनोहर बसति जिय माँझ जाई
सेबत सुमति औ कुमति ताकौं तेखे हौ।
किस्न कबि कहै धर्म सुनियौ जुधिष्ठिर जू
काननि सुनेते तैसे आंखिनि ही देखे हौ ॥८४॥

दोहरा : जस बरनौं कहं लौं अबै सबै तुम्हारौ गाइ।
अस्तुति करन कही नहीं पितै पुत्र की आइ ॥८५॥

जुधिष्ठिर कौ बचन :

दोहरा : घर्म राइ के सुनि बचन राजा अस्तुति कीन।
जनम सुफल मेरौ भयौ तुमनै दरसन दीन ॥८६॥

कबितु : पहिलैं सुफल यह जान्यौ है जनम जोई।
दूसरैं सुफल नैंन दरस कौ दीनौ है।
तीसरैं सुफल सोई तनहि तपस्या तौन
चौथे के सुफल जग मांझ जस लीनौ है॥
पांचअें सुफल सोई सबै परवार देखौ
छटअैं सुफल धन धरमैं धरीनौ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किस्न कबि कहै राजा अस्तुति कहा लौं करौं
आपुनु तौ ऐतिक सुफल मोकौं कीनौ है ।।८७।।

दोहरा : तात क्यों तुमनै सुफल मो काजैं सब ठौर।
सुनि लीजौ बिनती इती बरनत हौं जू और ।।८८।।

सोरठा : आपुनु होहु दियाल, क्या करौ मो पर अबे।
विनती सुनियौ हाल, देत रहौ दरसै सदा ।।८९।।

कवितु : हौं जिय मांझ डरात रहौं यह तौ सिनसार है सागर सोई।
माया हिलोर मझांर परैं पुनि सालिम जात भए नहिं कोई ।।
कैसें कै हूजत पार कहौ कबि किस्न सु बूझत है अब जौई।
दीजिअै जू उपदेश यहै जिहि तैं सुफलैं सब कारज होई ।।९०।।

धर्मराइ कौं बचन :

दोहा : राजा के अैसे ब्रचन सुनत भए तिहि बार।
दयौ सिखापनु धर्म नैं कीजतु यह उपचार ।।९१।।
जो तुम वंछत मुक्ति कौं सुनौ पुत्र इत बात
तौ देखौ इतनैनि तैं रहियौ अधिक डरात ।।९२।।

कबितु : परै न कुदिस्टि कहूं जाइ पर नारी पर
औ धन पराए काजैं भूलिकैं न चहियौ।
लोभ अभिमान क्रोध जीव कौ हतन निंद्रा
तजियौ निदान सांचे बचन कौं गहियौ ।।
किस्न कबि करुनानिधान गुन गाइ मन
आठऊ पहर जस कीरति कौं लहियौ।
याही तैं बनत दोइ लोक परलोक देखौ
वंछत मुकति तौ बिचारैं एतौ रहियौ ।।९३।।
धरम तैं सीतल रहत सोइ ग्रह देखौ
धरम तैं होति बयकुंठहि बसाई हैं।
धरम तैं जुरै रन-जंग जोई जीतियतु
धरम तैं सत्रुन कौ नास अधिकाई है ।।
धरम तैं बडे रोग दूर होत पराचीन
धरम की बात धरनी पर सुहाई है।
धरम जू तत्त तातैं तुम सौं कह्यौ है किस्न
यहै सीख लीजौ कीजौ धरम सदाई है ।।९४।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोहरा : सावधान रहियो भए देखो बातैं दोक ।
अैसौ राजा सौं कह्यौ धरम गए सुरलोक ।।९५।।

कबितु : ग्यान जिअैं उपजै पहिलै पुनि दूजैं दया मन मांझ बसावै ।
तीसरैं तीरथ लौं अएनान सु चौथे कौं बेद निभेद दिखावै ।।
पांचअैं प्रीत लगै प्रभु सौं छटअैं कौं छिमा कबि किस्न बतावै ।
सातअैं सत्य कहै बचनैं सोई याके सुनैं इतने फल पावै ।।९६।।

सोरठा : अैसौ ई परिमान, फल पावै जग्गिनि करैं ।
ताकौं उपजै ग्यान। जो याकौं बांचै सुनै ।।९७।।

इति श्री धर्वसमाधे ग्यानप्रभा वर्ननं धर्म जुधिष्ठिर संवादे प्रत्यक्ष दर्सनो नाम चतुर्थमो विलास ।।४।।

—००—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री गणेशाय नमः

अथ विदुरप्रजागर लिख्यते

दोहा : सुमति सदन सिंधुर बदन एकदंत वरदानि
घनरुचि विघन विपत हर[१] , गनपति मोदक पानि ।।१।।
सरद सुधानिधि वदन दुति, सुमिरौं सारद माइ
जाके कृपा कटाक्ष तैं विमल बुद्धि अधिकाइ ।।२।।
वंदौं गुरु गोविन्द के चरन कमल सविलास
कहौं जथामति वरन कछु भारत मत इतिहास ।।३।।
धृतराष्ट्रहि सौं विदुर कौ भयौ कछुक संवाद[२]
कहत कृष्ण भाषा वरन सुनत विलाइ विषाद ।।४।।
नाग नगर महि पै बसै कुरु वंसी तहं भूप
तिनके जस की जोति जग जगमग रही अनूप ।।५।।
महाराज सांतन[३] भए तिहि वंस बिख्यात
सप्त दीप नव खंड में मंडित गुन अवदात ।।६।।

पद्धरि : सुत भए तीन तिनकैं प्रचंड । इक भीषम उ दित वल अखंड
……… ……… …… । ……… ………[४] ………
तिन तत्व[५] सार जिय में बिचार । निज राज छांड परपद[६] निहार
सब विषय वासना दई जार । उर धर्म धार नहि करिय नार
दूजौ चित्राँगद तेज रुद्ध । मंधर्व साथ जिन करव जुद्ध
तहं जुद्ध करत तिहि भयौ काल । लघु भौ विचित्रवी रज नृपाल ।।७।।

दोहा : नृप विचित्र राजा भयौ, तिहि कुल तेज निधान
उदय अस्त लग अवनि पर, मानत तिनकी आन ।।८।।

---

१. कः विघनविपत्ति सब, खः बिघन विनास कर

२. कः धृतराष्ट्र सो विदुर नें कहो कछु संवाद, खः धृतराष्ट्र सौं विदुर ने कहो धर्मसंवाद

३. कखः संतन

४. खः तिन नगर कुदंड दंडै नव खंड विहंडे मुन दंड । पद्धरि के ये दो चरण ठीक से समझे नहीं जा सके । ये दोनों क प्रति में छूटे हुए हैं ।

५. खः सत्य । ६. खः परदन (संभवतः अभिप्राय है 'परमपद' से)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तोटक : पुन ता नृप कैं सुत तीन भये । सुनि व्यास कृपा कर आप दये
धृतराष्ट्र सु पंड बली भनियै । विदुरौ हरिभक्तन में गनियै ॥९॥

सोरठा : धृतराष्ट्रहु द्रगहीन विदुर भये दासी गरभ
राजा पाँडि प्रबीन, राजनी तिके मत करे ॥१०॥

तोमर : तिहि देस भूपति पंड । अति ही भयौ बलबंड
सब सत्रु खंड प्रचंड । महि जीतियौ नव खंड
छिति यौ कियौ तिहि राज । दिव ज्यौ भयौ सुरराज
इक द्वैस कै चित चाउ । मृगया गयौ कुरु राउ
रिषि आपनी तिय संग । मृग ह्वै रचौ रतिरंग
सर मारियौ इक तान । तिहि प्रान की भई हान
कहि बैन यौ अति दीन । यह श्राप भूपहि दीन
रति ज्यौं करैं तिय साथ । बिन प्रान हो नरनाथ
मृग श्राप भूप विचार । अपनौ कियौ उर धार
मन में भयौ सु उदास । वन में कियौ तिहि वास ॥११॥

दोहा : पंड उभय पतिनि सहित, विपिन गये तज साज
धृतराष्ट्रहु लागौ करन, महि मंडल कौ राज ॥१२॥
धृतराष्ट्रहु नृप के तनय, भये एक सै एक
दुरजोधन तिनमें बडे, अभिमानी अविवेक ॥१३॥

चौपही : छत्र चमर धृतराष्ट्रौ धरै । राजकाज दुरजोधन करै
मानत आन चार हू चक्क[७] । प्रबल प्रताप तपै जिमि अक्क[८] ॥१४॥

दोहा : दैव पतिनी नृप पंडि कैं, परम रूप अभिराम
अति सुसील पतिदेबता, कुंती माद्री नाम ॥१५॥
विपिन वास पति संग रहैं, गात न छ्वावै गात
सावधान सेवा करैं, सुमिर श्राप की बात ॥१६॥

कबितु : कुंती कहं आवत हो आकर्षन मंत्र एक
दीनौ हतौ मुनि दुरबासा नै बताइकैं ।

---

७. ख: चहूं दिस चक्क । ८. क: अक्कं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ताके मन आई मति संतति उपाइबे की
कीनौ सुमिरन लीने[९] देवता बुलाइ कैं।
एक पुत्र धर्म तैं सु दूसरौ प्रभंजन तैं
तीसरौ पुरन्दर तैं लीनौ उपजाइ कैं
जुधिष्ठिर भीम अरजुन तीन्यौ सुतन के
कीने नाम सकल मुनिन तहां आइकैं ।।१७।।

दोहा : बहुर सपतनी कौं निरख कह्यौ बचन तिहि येहु
एक देवता सुमिर कैं एक पुत्र तुम लेहु ।।१८।।
उन सुमिरै बडवा तनय, धार हियैं यह भेव
तिनतैं ताकैं दैव भये, नकुल और सहदेव ।।१९।।
एक दिना लघु तिय निरख, नरपत्ति भयौ सकाम
एकांतस्थल जानकैं, निकट दुलाई बाम ।।२०।।
उन उतर बहुविध कियौ, तदपि न मानी एक
होनहार ह्वै ही रहै, भूलत सबै विवेक ।।२१।।
सुरत रंग कर भूव नैं, प्रान तजे तिहि काल
पतनी करत विलाप बहु, समझावत मुनि बाल ।।२२।।

रोला : मद्रसुता तब सौंप सपतिनी कौं सुत दोऊ
पावक कियौ प्रवेस गई भरता संग सोऊ।
निरख द्रवे मुनि चित नैन करुना भर आये
राजरमनि[१०] अरुपुत्र हस्तनापुर पहुचाये ।।२३।।

कुंडलिया : आये सुन नृप पंड सुत, पुरजन अति सुख पाइ
विविध बधाये साजकैं आगैं आये धाइ
आगैं आये धाइ साज सब सकल सुहाये
वंदनमाला द्वार[११] त्रिपन बहु मंगल गाये
गाये मागध सूत विरद जैसे मन भाये
कहत नगर के लोग हमारे रच्छक आये ।।२४।।

दोहा : साष्टांग वंदन करौ, महाराज कौ आइ
धृतराष्ट्रहु सिर सूंघ कै, लीनौ अंक लगाइ ।।२५।।

९. क: तीनौ। १०. क: राजरवन : राजरमन। ११. क: वार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जथाजोग सबकौं मिलेः उदित पंडसुत देख
दुरजोधन के चित यह, चिन्ता भई विशेष ॥२६॥
बहुत भांत तब बधन के लागौ करन उपाइ
कहा करें तिनकौ दुवन, जिनके क्रस्न सहाइ ॥२७॥
दुरजोधन कृत ईरषा, अधिक अनीत निहार
नगर छांड सुत लै चली, कुंती समय विचार ॥२८॥
सब नीतन की नीत यह, राज रंक जो कोइ
समय दैखकैं अनुसरै, अंत सुखी बह होइ ॥२९॥

चौपही : गजपुर छोड पंडसुत चले ।देस देस अवलोकत भले
लच्छाग्रह पावक तें बचे । क्रस्न प्रीति सौं तन मन रचे ॥३०॥
विप्रवृत्ति निरवाहत काल । ठहरे आन देस पंचाल
गंगा तीर बसे मन लाइ । लीनी परन कुटी इक छाइ ॥३१॥
भिछ्या लावैं पुर तें जाइ । धरैं मात के आगैं आइ
माता कहै निरख बडभाग । बांट लेउ पाँचौ समभाग ॥३२॥
अग्या मान मात की अैसें । पांचौ भाग करैं वे तैंसैं
नित्य कृत्य कर भोजन करैं । इहि विधि समय पंडसुत भरैं ॥३३॥

दोहा : तहां स्वयंवर जग्य तब, रचौ द्रुपद नरनाह
देस देस के भूप सब, आए सहित उछाह ॥३४॥

चौपही : चंचल एक बनायौ मच्छ । ऊंचौ निपट वांधियौ लच्छ
घृत पूरन कराह इक ल्याइ । ताके तरहर धरौ बनाइ
कीन्ही नृपति प्रतिज्ञा यही । टेर सभा मैं सबसौं कही
आसमुद्र छिति के नरनाथ । सब ही सुनौ कान दै गाथ
घृत भाजन मैं देखै अच्छ । एक वान सौं बैंधै मच्छ
राज रंक जो कोई होइ । कन्यारतन लहै यह सोइ ॥३६॥

दोहा : उद्दित ह्वै सब देस के, पच हारे नरनाथ
लच्छ न काहू भेदियौ, गये सु मीडत हाथ ॥३७॥

रोला : जहां तहां सुन गाथ दुजन के संग सुहाए
कौतिक देखन काज तहां कुंती सुत आए
अरजुन जीतयो लक्ष कही ज्यौंही त्यौं कीनी
भई प्रतिज्ञा जान सुता नृप ताकौं दीनी ॥३८॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोहा : लै तनया नृप द्रुपद की कही मात सौं आन
लै आये निधि एक यह क्रस्न अनुग्रह जान ॥३९॥
आगैं जेसैं कहतती, बौली तिहि प्रवान
आपुस मैं कर लेहु तुम पांचौं भाग समान ॥४०॥

अर्जुन उवाच तोटक : तुम मात कहा यह बात कही
नृप की तनया यह जीत लई
तब मात कही जु कही सु सही
तुम पुत्र करौ निरवाह यही ॥४१॥

दोहा : सूछम गति अति धरम की, तरक नहीं उर आन
ताके पति पांचौ भये, वचन मात कौ मान ॥४२॥

गीतिका : तब दै सुता नृप पुत्र सौं नृप यौ कही यह कीजियै
द्विज कौन है किहि देस कौ सत्र सौध जाकौ लीजियै
निस एक तिनके सदन ढिग अप्रगट ह्वै कैं सो रहौ
नृप नंद परम प्रवीन तिनको भेद भाषा सुन लहौ ॥४३॥
कर जोर कैं पित सौं कही महराज यौ उर आनियै
नहिं विप्र वे कोउ बड़े कुल के सूर छत्री जानियै
नरनाथ निकट बुलाइयौ तब बूझियौ बहु भाइकैं
कुरु वंस के मनि जानिकैं हरषौ हियैं सुख पाइकैं ॥४४॥

दोहा : बहुत दाइजो नृपति दै विधि सौं कियौ विवाह
प्रगट भये नृप पंडसुत, दुरजोधन उर दाह ॥४५॥

गीतिका : कुरु भूप कौं पंचालपति पतिया लिखी इक रीति की
पठयौ पुरोहित आपनौ विनती लिखी बहु प्रीति की
अवधारियौ संदेस उर सब नृपन के सिरताज जू
सुत ये तुमारे भ्रात के इनकी तुमैं सब लाज जू ॥४६॥
कुल में विरोध ब्रथा न कीजै नीति चित विचारिए
अब राज इनकौ दीजिए जु भई सु बात विसारिए
सब मित्र मंत्री बूझ कैं कछु उचित होइ सु कीजियै
महराज तुम सरवग्य हौ यह जगत मैं जस लीजितै ॥४७॥

दोहा : प्रोहत राजा द्रुपद कौ आयौ कुरपति द्वार
राजसभा मैं लै गए तिहि बेर प्रतिहार ॥४८॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोरठा : आसिष दै बहु भाइ, पत्र दियौ मनुहार कर
कहौ संदेस सुनाइ, दियौ जु प्रभु पंचालपति ।।४९।।
सुन कुरभूप संदेस, दुरजोधन सौं यौ कही
दीजै, उनकौ देस, कुल कलेस नहिं कीजियै ।।५०।।
कहौ अनेक प्रकार, गंगासुत अरु विदुर हू
मंत्र करौ निरधार, अर्ध राज दीजै उनहिं ।।५१।।
प्रतिउत्तर सु विचार, लिक्यौ दुपद महराज कौं
सहित बहुत मनुहार, नृपति नृपति कौं ज्यौं लिखत ।।५२।।

भुंजगप्रयात : बड़े भाग जागे समाचार पाये । भये पंड भूपाल के पुत्र ठाये
भयौ और आनन्द उर मैं नवीनौ । बडे वंस सौं ईस संबंध कीनौ
कृपा ज्यौं करी त्यौं सदा कीजिये जू । इहां लौ भतीजे पठै दीजिये जू
करैं राज वे आपनौ आइ आधौ ।
विरौधै निवारौ सबै सिद्धि साधौ ।।५३।।

पादाकुलिक : साज चमू तब द्रुपद नरेसं । पंड तनय पठये गजदेसं
राजपुत्र निज देसहिं आये । धाम धाम प्रति होत बधाये ।।५४।।
कहै प्रजा अति आनन्द भीनी । धन जगदीस खरी यह कीनी
सज्जन बंध सकल रिष आए । कर अभिषैक लहै मन भाए ।।५५।।

चंचला : अंविका तनै तबै विचार चारु यौं कियौ
अर्ध राज बांटिकैं अजातसत्रु कौ दियौ
सासना प्रजा समस्त मोद जुक्त मानही
एक राजपुत्र चैन चित में न आनही ।।५६।।
हौहि द्वै बली महीप एक राज में जहां
सर्वथा विनास देह धारकैं वसैं तहाँ
पंडपुत्र जानकैं यही मतौ हियै धरौ
इंद्रप्रस्थ मंड राजथान आपनौ करौ ।।५७।।

मुक्तादाम : कियौ बसबास पुरन्द रप्रस्थ । सत्रै सुख पाइ भये जन स्वस्थ
दसौ दिस मंड प्रताप प्रचंड । विलोक उदंड नवै नव खंड ।।५८।।
बली लघु बंध पिता सम जान । ये आइ सु लैंइ सवै सिर मान
सवै पुर लोग रहे अविषाद । न कोऊ तजै अपनी मरजाद ।।५९।।
सदा सुनिये सब के सुभ कर्म । सवै सब भांत वडै धन धर्म
सवै गुन मंडित प्रग्य अदीन । सवै अति रूप उदार प्रवीन ।।६०।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भरें कर भूप वडे दरवार । चमू चतुरंग अभंग अपार
जगी जस जोत सवै जगपूर । पगी उर प्रीत मुकुंद की भूर ।।६१।।
कहां लग संपत कीवै बखान । प्रभाउ अपार करैं बहु दान
सदा सब वैरिन के उर साल । विराजत धर्म तनै नरपाल ।।६२।।

दोहा : उद्दित विक्रम सक्सुत, कीरत विरद कहाइ
हरौ अजीरन अगिन कौ, वन खाडीव दहार ।।६३।।
मय दानव निकसौ तहां, लीनौ बरत उबार
दीनी सभा बनाइ तिहि, प्रत्युपकार विचार ।।६४।।

मुक्तादाम : रची अयनी मय माया उपाइ । सभा की प्रभा न कही कछु जाइ
अनेक बने बहु अदभुत भाइ । रही तिहु लोकन की छवि छाइ
सवै ब्रह्मांड तहां दरसाइ । हिय भ्रम कौन कैं होइ न आइ ।।६५।।

उपेन्द्रवज्रा : प्रभा कहां लौ कहिये सभा की । लहै सुधर्मा समता न ताकी
अनेक माया मय निर्मई है । अमंद सोभा वसुधा छई है ।।६६।।

(उपजाति) : तहां बनाये बहू भाँत पच्छी । कूजंत वानी कलकूक अच्छी
फूले फले भूर हु सोभ साजैं । रितू सवै देह धरी विराजैं ।।६७।।

उपेन्द्रवज्रा : लसैं भरै नीर जहां न पान्यौ । भरै जहाँ जात[१२] तहां न जान्यौ
खुले जहां द्वार लखे न जाहीं । जहां न आहीं लखिये तहां ही ।।६८।।

तोटक : बहु भांत लसै करकी पुतरी । अब ही जनु ये नभ तैं उतरी
बहु रंगन अंग सिंगार धरैं । अपनैं अपनैं सब काम करैं ।।६९।।
तहं भूप विराजत धर्मतनै । जिनकी प्रभुता बरनी न बनै
हिय मैं हरि देव कौ ध्यान धरौ । चित चाहत हैं नृपसूय करौ ।।७०।।

दोहा : संग चमू चतुरंग दै, साज विविध बल साज
विदा करै चारौ अनुज, बहु दिस जीतन काज ।।७१।।

सोरठा : प्राची दिसि मगधेस, जुरासिंध विक्रम उदित
जीत जीत बहु देस, अवरूधे भूपत बहुत ।।७२।।

चौपही : महाराज जादौपति राजैं । द्वारावती नगर बल साजैं
भूपन की विनतौ लग आयौ । आन देत यौ बैन सुनायौ ।।७३।।

१२.कः भरै जहां जल । संभवतः पाठ होना चाहिये : लखै जहां जात

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीत जीत मागध नृप लीने। निगडबद्ध भूपति सब कीने
प्रबल और कोउ द्रष्ट न आवै । क्रस्न देव विन कौन छुडावै ।।७४।।
तिही बेर नारद मुन आए । समाचार ये हरिहिं सुनाये
इंद्रप्रस्थ कुंतीसुत राजा । ताकी प्रभू तुमहिं सब लाजा ।।७५।।
अब सहाय बल आप करें जौ। राजसूय आरम्भ करें तौ
सुन हरि हियै दया भरि आई । बोल उद्धवहिं बात सुनाई ।।७६।।
कहौ मंत्र जैसौ चित धरिये । पहिलें काज कौन सौ करिये
उद्धव कही ईस जस लीजै । एक काज में दोई कीजै ।।७७।।
राजसूय में राज पधारौ । छुटैं नृपत मगधेस हिं मारौ
मित्रमंत्र सुन बंध बुलायै । सब प्रयान के साज सजायै ।।७८।।
चहू अंग वाहिनी घनी लै । सोरह सहस साथ पतिनी लैं
सहित उछाह अधिक छवि छायैं । पांड पुत्र के भौन हिं आयैं ।।७९।।
निरख इष्ट श्री क्रस्न पधारे । भये विवस नहिं अंग संवारे
हिं यें भूर सुख पुंज त्रिहारे । मनहु प्रान मृत देहन धारे ।।८०।।

छप्पय : जथा रीत सब मिले हितू लखि हियै सिरायै
कुसल परस्पर बूझि अधिक तनमन सुख पाये
राजसूय की बात हती जिय जो अभिलाषी
अंजुल जोर नरेस सकल श्रीपत सौं भासी
प्रभु तुम प्रसाद दिस अरु विदिस, अनुज जीत आये सकल
मगधेस एक प्राची दिसा, जुरासिंधु बाच्यौ प्रबल ।।८१।।

तोमर : हंस यौं कही जदुनाथ । मगधेस की बल[13] गाथ
मुख तें कही नहिं जात । विख्यात है बहु भांत ।।८२।।
बहु धारहौ बल गाहि[14] नहिं जुद्ध जीत्यौ जाहि[15]
छल साजि हनियै ताइ । नृप पुंज कौ दुखदाइ ।।८३।।
करवै हमैं इम काज । तब जग्य कीजहु राज
यह में कियौ निरधार । नहिं होय आन प्रकार ।।८४।।

दोहा : क्रस्न भीम अर्जुन चले विप्र बेष अव धार
पहुचे मागध महिप ग्रह, समौ प्रभात विचार ।।८५।।

१३. कः सब। १४. ख : बहुधा रह्यो बल गाइ। १५. ख : जाइ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोरठा : बहुत कियौ सनमान, जान अपूरव भूमसुर
जांच लैहु द्रुज दान, जु कछु तुम्है चित चाहिये ।।८६।।

दोहा : जुद्ध दान जांचौ सुनौ अरु निरखी अनुहार
मगधनाथ पहिचान तब, वोले रिस उर धार ।।८७।।

भुजंगप्रयात : बड़े वंस छत्री बड़ी लाज धारी
भली भिच्छकी वृत जी में विचारी
बली जौ हते तौ भलै क्यौं न आये
हियै जानते जुद्ध के स्वाद पाये ।।८८।।

कहा हौं तुम्हैं भौन आये संघारौ
दया चित धारौं जनेऊ निहारौं
किती बेर तू छोड़ संग्राम भाज्यौ
कहा हौं बखानौं हियै नाहिं लाज्यौ ।।८९।।

सखा क्रस्न के जुद्ध माडौं न तोसौं
घरी दो भिरैं तौ भिरैं भीम मोसौं
रुपे वीर दोऊ गदा जुद्ध साजौ
मही व्यौम लौं पूरकैं नाद गाजौ ।।९०।।

प्रहारैं बचावै न हारैब कोऊ
तकैं आपनी आपनी जीत दोऊ
दिना बीस औ सात यौं जुद्ध गाहौ
तबै भीम श्री क्रस्न की ओर चाहौ ।।९१।।

तिनूका तहीं हाथ गोविन्द लीनौ
दुहू हाथ सौं चीर कैं डार दीनौ
वहै भीम नै दाउ जी मैं विचारौ
जुरासिंध कौं संध ही तैं विदारौ ।।९२।।

दोहा : जुरासंध के प्रान हत, बंधे छुडाये भूप
अपने अपने गृह गए हरि गुन गनत अनूप ।।९३।।

दीनौ ताके तनय कौं तिही देस कौ राज
इंद्रप्रस्थ लौं आइयौ राजसूय के काज ।।९४।।
करौ जग्य आरम्भ उर पूर भूर उतसाह
भांत भांत के की भैंट लैं आये सब नरनाह ।।९५।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छप्पय : राजसूय नृप रचौ सवै मुनि ब्रंद बुलाये
द्रोनाचारज आदि सकल गुरु[१६] गन तहं आये
कहै जितेक विधान तिते सब साज सुधारे
असन वसन बहु पूर भूर भंडार उधारे
गांगेय विदुर अरु बंधु सब, अति हुलास चित छाइयौ
अभिमानजुक्त जुरजोधनहु , नागनगर तैं आइयौ ।।९६।।

दोहा : राज लोग सब आइयौ इंद्रप्रस्थ चित चाइ
लख उदभव कुरवंस कौ, सुरपति विभव लजाइ ।।९७।।
पूजा कीजै कौन की लागे करन विचार
प्रथम क्रस्न कौं पूजियै, यही मंत्र है सार ।।९८।।

छप्पय : महाराज जदुराज सदा द्वारावति नाइक
सबन कियौ निरधार प्रथम ये पूजा लाइक
धर्मपुत्र मन मुदित क्रस्न पूजन अनुराग्यौ
कोप चंदेरी कंत तवै कटु बलगन लाग्यौ
तिहि सीस चक्र खंडन करौ, तहां रीत अदभुत ठई
सिसुपाल अंग तैं निक्स इक जोत लीन हरि तन भई।।९९।।

छप्पय : लगी वेद धुन हौन व्यौम सुर आनन्द पागे
अपने अपने काज सवैं नरपत तहं लागे
दुरजोधन कर पदम जान श्रीपत मत कीनौ[१७]
सरव दरव भंडार सौंप काके कर दीनौ[१८]
बहु दान मान सविधान कर महामोद विप्रन दियौ
सर सरधा समेत नरनाह इमि राजसूय पूरन कियौ ।।१००।।

दोहा : अधिक खर्च ज्यौं ज्यौं करत धृतराष्ट्रहु कौ नंद
दरव उमग त्यौं त्यौं बडत निरख खिस्यायौ मंद ।।१०१।।

सोरठा : श्रीपत कृपा अनूप, राजसूय पूरन भयौ
आठों दिस के भूप, कर सनमान विदा किये ।।१०२।।

रोला : राजसूय कर भूप कियौ सबकौ मनभायौ
राजसभा में बैठ सबैं परवार बुलायौ

---

१६. ख : गुन (गुणौं)
१७. क : कीनौ । १८. क : दीनौ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रबल प्रताप गुमान भरौ दुरजोधन आयौ
अदभुत सभा विलोक चकित चित संभ्रम छायौ ।।१०३।।
जल थल जानि न परौ खिसल पग अंग दुगायौ
भयौ भीत भटभेर अंध कौ अंध कहायौ
हस्यौ सभा कौ लोग सबै रनबास हसायौ
भीमसैन सौं बैन श्रवन सुन खरौ सिख्यायौ ।।१०४।।

दोहा : भीषम द्रोन समेत सव, नागनगर के लोक
महां मोद सौं आइयौ अपने अपने ओक ।।१०५।।
भैंट अंक दुख मैट सब, मांगी विदा सहेत
हरि आए द्वाराबती, अपने ब्रंद समेत ।।१०६।।

रोला : यौं दुरजोधन देख सभा अपने घर आयौ
ईर्षा आन भई जिय मैं अत ही अकुलायौ
अपनौ मातुल वोल सबै बिरतंत सुनायौ
खेल जुआ धन लेइ सवै यह मंत्र डिडायौ ।।१०७।।

छप्पय : सकुन कुमंत्री मिलौ मनो पावक घ्रत नायौ
करैं कपट के अच्छ कलह कौ मूल उपायौ
धृतराष्ट्रहु सौं जोर हाथ दुरजोधन भाषी
करी सभा में हसी मान मो मैं नहिं राखी[१८]
महाराज विनती यही अव इतनौ आयुस दीजियौ
हम करहिं जुआ आरंभ प्रभु, बोल धर्मसुत लीजियै।।१०८।।

मालती : सुनी सुत बात । कही सुन तात
जुआ अति हीन । उदार प्रवीन ।।१०९।।
उपद्रव मूल । छल्यौ अनुकूल
अनीत निवास । अधर्म प्रकास ।।११०।।
विचार विवेक । तजौ यह टेक
करौ कछु आन । उपाउ प्रधान ।।१११।।
भलै समुझाइ । कही बहु भाइ
करी नहिं कान । भयौ अभिमान ।।११२।।

---

१८. क : करी सभा में हास माम मौंमैं नहिं राखौ ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहै पुन बैंन । रिसैं भर नैंन
करौं नहिं आन । तजौं निज प्रान ।।११३।।

दोहा : जान हटी निज पुत्र कौं भाषी सहज सुभाइ
मंत्रि मित्र सब्र पूछकें, रुचै सु कीजै जाइ ।।११४।।

चौपही : सबन बुलाइ विदुर सौं कही । महाराज की अग्या यही
इंद्रप्रस्थ कौं आज सिधावहु । बोल धर्मसुत कौं लै आवहु ।।११५।।
छंता नाग नगर तैं धायौ । निकट जुधिष्ठिर नृप के आयौ
बहुत प्रीत कर कंठ लगायौ । कुसल बूझ अत हियौ सिरायौ ।।११६।।
करी कृपा किहि हेत सिधाए । महाराज तुम निकट बुलाए
तुमहिं लैन कौं मोहि पठायौ । बड़े भाग यह दरसन पायौ ।।११७।।

दोहा : अनुज सहित आजातरिपु, आयुस नृप कौ जान
विदुर द्रुपद तनया सहित गजपुर पहुचे आन ।।११८।।

छप्पय : आये कुंती तनय खबर दुरजोधन पाई
घूत सभा में बोल जुआ की बात चलाई
धर्मपुत्र धर्मग्य कछू छल छिद्र न जानैं
खेलन लागे जुवा कपट के पांसे ठानैं
सब राज साज संपत सहित, नारि जीत पल मैं लई
पुन भूम भौन भंडार धर, हार धर्मसुत की भई ।।११९।।

दोहा : राज जीत तिय जीत पुन, ठहराई यह बात
विपन वास तेरह वरस, बरस एक अग्यात ।।१२०।।
ताहू पांसे मैं भई दुरजोधन की जीत
आरंभौ अनुचित करम, क्यौं न होइ विपरीत ।।१२१।।
कृस्न सुमिर कृस्ना बची, परस पतिब्रत नार
विना बसन चाहत करौ, रहौ दुसासन हार ।।१२२।।

सवैया : भीषम द्रौन विलोकत द्रोपदी खैंच कैं राजसभा मह आनी
द्वारकानाथ कृपानिध केसव दीन पुकारत आंरत बानी
ताही समैं यौ बडौ तन अंबर ज्यौं उमगै परबाह कौ पानी
हार रहौ मन मार दुसासन खैंचत खैंचत बाँह पिरानी ।।१२३।।

दोहा : अनुज सहित आजातरिपु पुरतैं दये निकार
संग द्रुपद तनया चली पतनी धर्म विचार ।।१२४।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मौक्तिकदाम : पितामह द्रौन रहे गहि मौन । कहौ समुझाइ कहै अब कौन
किये दुरजोधन यौं उतपात । चले वन वीर हियै अकुलात ॥१२५॥

दोहा : अनुजन हू भ्राता वचन प्रतपालौ धर धीर
विपन बसे बारह बरस, दुख सुख सहे सरीर ॥१२६॥
बरस येक छिपकैं रहे, बदल भेष धर धीर
वीतैं अवध विराट घर, प्रकट भये नर वीर ॥१२७॥

चौपही वड़ी : पंडतनै प्रगटे बिराट घर वीती अवध भलौदिन आयौ ।
नागनगर धृतराष्ट्र नृपत सौं तब ही कहि संदेस पठायौ ॥
जुवा खेल तुम कहौ सु कीनौ दुख सुख भाल लिखौ सो पायौ
सुत सौं कहौ विरोध निवारौ राज देहु जौ हमैं बतायौ ॥१२८॥
भीषम द्रौन विदुर सब ही मिल दुरजोधन बहुविध समझायौ
भरौ गुमान कौन की मानै करौ जुद्ध निश्चे ठहरायौ
भूम न दैंहुं अग्र सूची सम प्रतउत्तर कर यहै सुनायौ
येऊ भए जुद्ध कौं उद्दित दुहू ओर छत्रीपन छायौ ॥१२९॥

चौपही : धृतराष्ट्रहु तब सोधहि लहौ । निकट बोल संजय सौं कहौ
समाचार उनके लै आवहु । वेग आइ सब मोहि सुनावहु ॥१३०॥
उनके उर कौ निहचै जान । बल कितेक उर मैं अनुमान
कहौ अजातसत्र सहैं जाइ । तजै विरोध इती गम खाइ
संजय नृप कौ आयुस पाइ । पहुचौ धर्मपुत्र ढिंग आइ ॥१३१॥

दोहा : कुसल बूझ परिवार की लीनौ निकट बुलाइ
सुन संदेस अपनी दसा, कही सबै समुझाइ ॥१३२॥
अब कहियौ महराज सौं, प्रनमत बहुत प्रकार
कहैं अधर्मी पूत के हम सौं तजै न प्यार ॥१३३॥
कहियौ सब समुजाइकैं, देख चले हौ[१९] अच्छ
राज छांड हम जाइ कित, करौ धर्म कौ पच्छ ॥१३४॥
समाचार सब देख सुन, संजय चलौ उताल
पहुचौ जाय जहां हतौ, धृतराष्ट्रहु नरपाल ॥१३५॥

मौक्तिकदाम : तब संजय आइ गहे नृप पाइ । सबै समझाइ कही बहु भाइ
सदा उनके उर केवल धर्म । करैं परमारथ के हित कर्म॥१३६॥

१९. ख : निज ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तजें नहिं सन्य गहैं न असत्य । प्रसन्न प्रजा उनसौं बहु नित्य
सदा तुव भक्त करें जुत हित । विरोध धरैं[२०]कवहू नहिं चित।।१३७।।
अनीत इतै निरखी भरपूर । भये अब उद्यत जुद्ध कौं सूर
अधर्म समेत तनै परतच्छ । करौ कुलकंटक की तुम पच्छ ।।१३८।।
इतौ चहिये न तुम्है नरनाह । लहौ अपकीरत लोकन माह
सो जान परी हमकौं चित मांह । कछू परनाम भलौ यह नांह ।।१३९।।
कहौ हमसू सब जानत है न । विचार करौ अपने मन में न
करें तब पुत्र किते उतपात । किती विध मारन कौं तकि घात ।।१४०।।
जुवा जब खेल लियौ धन जीत । तज्यौ तब ही किन जानि अनीत
दियौ दुख नार सभा मह लाइ । सबै सुन बात रहे चुप चाइ ।।१४१।।
तबै सिख दै कहते प्रभु सांच । तौ क्यौ दहते अब सोच की आंच
जुधिष्ठिर और कही कछू बात सभासद मैं कहिहौं प्रभु प्रात ।।१४२।।
इती कहि संजय कै परनाम । समौ लखि सांझ गयौ निज धाम
गयौ तब संजय आपनै गेह । दही तब सोच महीप की देह
निसा किह भांत वितावहि भूप । परौ चित चिंत के दारुन कूप ।।१४३।।
इति श्री महाभारते उद्योगपर्वणि[२१] विदुरप्रजागरे धृतराष्ट्रसंवादे प्रथमोऽध्याय:[२२]

२०- क : करैं

२१. मूल में क प्रति में : 'उदेगपर्वन' । २२. क : प्रथमोध्याय ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरा अध्यय

दोहा : द्वारपाल सौ बोल कैं, कहौ महामहिपाल
देख्यौ चाहत विदुर कौं ताह ल्याइ इहि काल ।।१।।

तारक : सुन दूत गयौ वह हो जंह छता । तब जय प्रनाम कियौ अतुरता
इम बैन कहौ प्रदु मोद विसेख्यौ । महाराज तुम्हैं अब चाहत देख्यौ।।२।।
यह बात सुनी तत्र ही उठ धायौ ः चल राज निकेत महांमत आयौ
लख भूपत सौं प्रतहार जनायौ । उन प्रीत कैं भीतर भौन बुलायौ ।।३।।
ढिग जाय करी नत अंजुल कीनैं । जंहृ भूप हतौ चित चितह लीनैं
इहि टेरकैं आपनौ नाम सुनायौ । प्रभु हौं तुव आयुस पाइकैं आयौ ।।४।।

दोहा : महाराज मैं विदुर हौं, आयौ अग्या जांन
कारज करबे होइ कछु, कहिये ईस बखान ।।५।।

घृतराष्ट्र उवाच कुंडलिया : पठयौ हौं संजय विदुर, धरमपुत्र के पास
मेरी निंदा कर बहुत, अपनै गयौ अबास ।।
अपनै गयौ अवास और अैसी कहि बातहि
कहे जुधिष्ठिर बैन सभा मैं कहिहौं प्रातहि
तब तैं चिता वही सबै उर कौ सुख नठयौ
बार बार पछतात याहि काहे कौं पठयौ ।।६।।

दोहा : कहा कहैगो प्रात वह इती न जानी बात
तातैं नींद न आवही सोच दहत मम गात ।।७।।
श्रेय लहौं जातैं कछू, जगत दहत जु गात
धर्म अर्थ में कुसल तुम, कहौ विदुर कछु बात ।।८।।
जव तैं आयौ सूत सुन पाँडसुतन के बैन
तब तैं मेरौ मन विदुर रंचक लहै न चैन ।।९।।
विकल होत इंद्री सबै भई निसा अति घोर
यही प्रबल चिंता बडी कहा कहैगो भोर ।।१०।।

विदुर उवाच छप्पय : दुरबल साधनहीन जुद्ध सबलै संह मंडै
सर्वसु जाकौ हरै कोइ अरु सोच न छंडै
पर त्रिय सौं रत करैं कामकेलहिं चित लावै
नित्त हरै पर दरव इनहिं निस नींद न आवै
नरनाह दोष देते कहे कहूं परस इनसौं भयौ
पर वित लियौ चाहत कछु अधिक चित चिता तपौ ।।११।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धृतराष्ट्र उवाच दोहा : धर्म सुनौ चाहत कछू, वचन परम कल्यान
विदुर हमारे वंस मैं, तुम पंडित बुधिवान ।।१२।।

विदुर उवाच : दोहा : पंडित मूरख जगत मैं द्वै मनुष्य की बांन
महाराज तिनके प्रगट लच्छन कहौं बखान ।।१३।।

रोला : सैवै जान प्रसस्त निंद आचरनन छंडै
अस्तबुद्ध चित धरै सदा सरधा मत मंडै
क्रोध हर्ष अरु दर्प खैंचि चित सकैं न जाकौं
लाज न कबहूं तजै बाम पंडित है ताकौं ।।१४।।
जाके मनकौ कृत्य पंत्र कोऊ नहिं जानै
भयौ काज देखिये प्रगट सब जगत बखानै
मान्य आपकौं मान गरब मैं नहिं लावै
ये छल छियैं न मनहिं नाम पंडित सु कहावै ।।१५।।
उस्न सीत भय प्रीत हियौ जाकौ न सतावै
करै कछू आरम्भ ताहि कौ विध्न न व्यापै
विमल बुद्ध अनुसरै धर्म अर्थ हिं अवगाहै
संपत नव और दरिद्र एक ही भांत निवाहै ।।१६।।
सुखतैं होइ जु अर्थ तिन्हैं उर मैं अभिलाषै
अपनी सक्ति समान कृत्य करवौ चित राखै
काहू कौ अपमान कहूं जातैं नहिं होई
करै जितौ कर सकै काज पंडित नर सोई ।।१७।।

दोहा : जान लेइ जो तुरत ही. सुनै बात चित लाइ
काम क्रोध सेवै नही, जानै अर्थ बनाइ ।।१८।।
विन पूछ पर काज कौं जुक्त न कबहूं होइ
लच्छन जामैं होइ ये, पंडित कहिये सोइ ।।१९।।
चाह न करै अलाभ की, गत कौ सोच न होइ
मोह न लहै विपत में, पंडित कहिये सोइ ।।२०।।
निश्चै कर कारज करै, होइ न अन्तर लीन
व्रथा काल खोवै नहीं, पंडित वहै प्रवीन ।।२१।।
गुन मैं धरैं न दोस चित, सजै भूत कर सांज
रज्जै आरज करम तैं, सो पंडित महराज ।।२२।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(हरिगीतिका) : मनकौं करै बस आपनै, हरषै नहीं सनमान तैं
अपमान तें न तपै हियें सर्वग्य होइ विधान तैं
पुन चित छोभ न होइ निश्चल गंग के दह ज्यौ रहै
सब बस्त के गुन कौं गहै महाराज पंडित है वहै ॥२३॥

दोधक : भूतन के सब तत्वहिं जानै । कर्मन के सब जोगहिं ठानै
प्रानन के जु उपाइ उपावै । सो नर पंडित नाम कहावै ॥२४॥
बातकहै अरु तरकहि जानै । दिव्य कथा इतिहास बखानै
बुद्धि नई नई जो उपजावै । ग्रंथहि देखत अर्थ बतावै ॥२५॥
जो मत के संग सास्त्रहिं लागै । सास्त्रहि के संग जो मत पागै
जो मरजाद तजै न पुरानी । सो कहिये नर पंडित ग्यानी ॥२६॥

मूरख लच्छन पंचचामर[२३] : सुनै नहीं गुनै नहीं गुमान ही घनौ करै
दरिद्र मौन मैं भरो मनैं महा बड़ौ करै
धरै जु आस अर्थ की उपाइ के बिना किये
करै बिना विचार काज मूढ सो वखानिये ॥२७॥

दोहा : जो सेवै पर अर्थ कौं अपने अर्थहि खोइ
मिथ्या कहि मित्रहिं छलै, मूरख कहिए सोइ ॥२८॥
छाड़ै वंछित काज कौं पचै अवंछित जाइ
वैर करै बलवंत सौं मूरख कहिये ताइ ॥२९॥

सवैया : सत्रह मित्र करै अपनौ निज मित्रह वैर कै मारवौ ठानैं
संसय ही सब ठौर धरै, उर कर्म मलीन करै रुचि मानैं
सत्वर काज करै चित ल्याइ सबै जग मैं निज कत्य बखानै
नीत की बात सुहाय न जा कहं ता कंह पंडित मूरख जानैं ॥३७॥

छप्पय : कबहूं न करै सराध सुरन की करै न अरचा
मित्रन सौं हित तजै धरम की सुनै न चरचा
अनवोलैं धंस जाइ बिना पूछैं मुख भाषैं
नहिं जानैं विस्वास मिलौ तासौं मन राखै
कछू दोष लगावैं और कौं आप करन सोई चहै
अरु करहि कोप असमर्थ नर मूरख कौ लच्छन यहै ॥३१॥

---

२३. मूल क प्रति में इसे 'नराच' छंद लिखा गया है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भुजंगप्रयात : वलै आपनै जो नहीं जीय जानै । तजै अर्थ धर्मै व्रथा बाद ठानै
विना कर्म कीयै अलाभै जु चाहैं ।
वहै मूढ ताकौं न कोऊ सराहै ॥३२॥
सिखावै तिन्हैं सीख जो जोग्य नाहिं । कदजैं भजै सून सैवै व्रथा ही
घनौ छोड़ जो अल्प के हेत धावै ।
करैं अन्यथा मूढ सोई कहावै ॥३३॥

दोहा : पाइ बढौ अैस्वर्ज अरु विद्या अर्थ समाज
विनय सील छोडै नहीं सो पंडित महाराज ॥३४॥
पहिरै सुंदर वसन अरु स्वाद बस्त जो खाइ
विना दियैं अनुचरन के घातक कहिए ताइ ॥३५॥
येक महापातिक करै सुख भुगतैं बहु लोइ[२४]
सुख भोगी छूटैं सबै करता दोषी होइ ॥३६॥

सोरठा : छूटैं धनुष तैं बान, हनै कै एकहिं ना हनै
बुध सर बल मत बान[२५] हनै राजकुल देस जुत ॥३७॥

दोहा : द्वै निहवै कर येक सौं, चहु कर त्रिय बस आन
पांच जीत छह आन उर, सात छांड सुख मान ॥३८॥
व्यवसायात्मिक[२६] कहत हैं, एक बुद्र नर वीर
ता कर धर्म अधर्म द्वै निहचै करत जो धीर ॥३९॥
साम दाम अरु भेद पुन दंड उपाइ जु चार
तिन कर मित्र उदास अरि त्रिय बस करहु विचार ॥४०॥
जीतहु इंद्री पाँच ये, जानौ छविधि निदान
वैंवध, विग्रह, संधि अरु, आश्रय, आसन जान[२७] ॥४१॥

---

२४. क: ख: लोक । तुम न मिलने से 'लोइ' ग्रहण किया गया

२५. क ख में यही पाठ है । अर्थ सरलता से निकले इस लिये 'बुध हर मति बलबान' पाठ संभवत: अधिक अच्छा होगा ।

२६. क प्रति में है : 'विविसइयेक आत्मिका' परन्तु ऐसे पाठ में दो मात्राएं बढ़ती हैं ख प्रति में है : 'विविसइयेक कौ' । यह पाठ तो बहुत ही अव्यवस्थित है । अत: छन्दशुद्धि और अर्थसौख्र्य की दृष्टि से गीतोक्त 'व्यवसायत्मिकाबुद्धि…'' अर्थ ग्रहण के लिये 'व्यवसायात्मिक पाठ ठीक समझा गया है ।

२७. अभिप्राय है क्रमश: द्वैधीभाव, विग्रह, संधि, स्थान (आश्रय), आसन और यान से । ख प्रति में विग्रह के स्थान पर पाठ 'संग्रह' है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काम, क्रोध अरु लोभ, मद, मत्सर, त्रस्ना, मोह
सात छांड संसार मैं सुखी सकल बिधि होइ ।।४२।।
विष रस मारै येक कौं, सस्त्र एक कौं काल
सुहित देस नासै प्रजा, मंत्र चूक भूपाल ।।४३।।

सवैंया : भोजन स्वाद अकेलौ करैं न, अकेलौ न अर्थ सभा मंह पागै ।
दुर्जन सौं न अकेलौ मिलै, तरुनी सौं अकेलौ न बातन लागैं ।
पंथ मैं धाइ अकेलौ चलैं न, अकेलौ न सूनै धसै ग्रह वागै ।
सोवत है वहु लोग परैं तंह आप अकेलौ आगर न जागै ।।४४

सोरठा : सत्य[२८] स्वर्ग सोपान, जैसे बोहत उदधि कौ
ता सम और न आन, जानत भूप कहा न तुम ।।४५।।
छमावंत कौ जान, लोक कहत असमर्थ है
सो यह दोष न मान, छमा बड़ौ धन जानिये ।।४६।।

दोहा : उत्तम धन छांडै छिमा, हियें धरै अत रोष
जानबूझ वह आपकौं बडौ लगावत दोष ।।४७।।

दोधक : श्रेय वड़ौ इक धर्म बखानौ । उत्तम समति छिमा उर आनौ
त्रप्ति बडी इक विद्या जानौ : एक अहिंसा बडौ सुख मानौ ।।४८।।

द्वैजथा : भूम ग्रसी इन दुहन की आवै[२९] । ज्यों अहि मूषक कौं गहि पावै
भूपत ह्वै न बिरुद्ध[३०] बडावै । पंडित विप्र विदेस न धावै ।।४९।।

दोहा : या जग में द्वै कर्म कर, नर पावै अत चैन
आश्रय[३१] करै न नीच कौ, कहै न करुये बैन ।।५०।।
बडी ठौर जो मानियैं अरु तिय कामित काम
ये ही द्वै या जगत मैं पर प्रतीत के धाम ।।५१।।
द्वै कंटक तीछन महा, देह सुखावन अर्थ
अधन करै चित कामना, कोप करै असमर्थ ।।५२।।
द्वै जन ये या जगत में लहैं न सोभा साज
उद्दिम तजै ग्रहस्त अरु जती करै वहु काज ।।५३।।
महाराज ये द्वै पुरुष स्वर्ग बसै वड़ भाग
छमा सहति भूपति बली, करै दलद्री त्याग ।।५४।।

२८—क : सत्व । ख : सन्त । परन्तु सत्य पाठ ही समीचीन प्रतीत होता है ।
२९—ख : भूम ग्रसन इन द्वैन कौं आवै ।
३०—वूब, विरोध । ३१—ख : आदर । ३२—ख : बड़ ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वै प्रकार तें होत है धन कौ नास निदान
पात्रहि कौ अपमान कर देत अपात्रहिं दान ॥५४॥
बांध गरै सिल डारिये ये.ही द्वै जल मांहि
दारिद्रौ तप ना तपै, धनी दान रत नाहिं ॥५६॥

त्रयजथा : उत्तम मध्यम अधम नर त्रिविध जानियें भूप
श्रेष्ठ (रु) मध्य कनिष्ठ ये, न्याय तिही अनुरूप ॥५७॥
जुक्त तिही विध करत हैं, तीन भांत के कर्म
तिन ही कौ फल भोगवत, प्रानी धर्म अधर्म ॥५८॥

सोरठा : पतनी सुत अरु दास, ये तीनी निरधन सदा
बस आभूषन वास, जाकौ ये ताकौ सबै ॥५९॥
हरै पराई दरब अर परतिय हित अनकूल
छांड़ै सेवा करत कौ[33], ये तीनौं छय मूल ॥६०॥
काम क्रोध अर लोभ ए खुले नरक के द्वार
तातें इन तीनौन कौ करै सदा परिहार ॥६१॥
भक्त होइ अरु सुद्ध चित भजैं मनो वच काइ
हौं तेरौ ये वचन कहि सरन रहै जो आइ ॥६२॥
रछ्या इन तीनौन की सदा करै सब कोइ
इनकौं पीठ न दीजिये संकट हू जो हौइ ॥६३॥

चत्वारि जथा : राज लाभ वरदान अर पुत्र जनम सुख मूल
क पकर छाँड़ियै सत्र कहं ये कत हू सम तूल[34] ॥६४॥

मालिनी : नृपत बल सम्हारै चार ये ही निवारै
मिल मत न विचारैं दीर्घसूत्री निहारैं
लघुमति जिहि होई होइ जौ भाट कोई
अलस प्रकृत[35] जानैं मंत्र तासौं न ठानैं ॥६५॥

चौपही : आरत जात जु दीन कुलीन। भगनी होइ जु संतत हीन
सखा दरिद्री समौ विचार। बसैं सपूत सदन ये चार ॥६६॥
चारौं होत तुरत ही तात। भाषी यहै ब्रहस्पत वात
पूछी प्रथम सुरन के राइ। ते हौं कहौं सुनहु चित लाइ ॥६७॥

३३—मूल संस्कृत में है : "सुहृदश्च परित्यागः "अर्थात मित्र का परित्याग।
३४—अर्थ है कि यह चौथा अकेला ऊपर कहे तीन के बराबर है।
३५—संस्कृत मूल में है : 'रभसैः' अर्थात जल्दबाजी करने वाले लोगों से मंत्र नहीं करना चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवन कौ संकल्प प्रभाउ । अरु बुधवंतन कौ अनुभाउ
कृतविद्यन कौ विनय विलास । पाप करम करता कौ नास ॥६८॥
(पंच जथा) माता पिता आतमा जान । आचारज पावक उर आन
पांचौ जानौ अग्नि सुभाइ । सावधान सैवै मन लाइ ॥६९॥

दोहा : पांचन की पूजा करै, जस पावै इहि लोक
देव पितर नर अतिथ अरु भिच्छुक आवै कोक ॥७०॥

सोरठा : मित्र अमित्र उदास, उपजीवी[३६] जन
ये रहिहैं तो पास, जहां जहां तू जाइगौ ॥७१॥

दोहा : नर कैं इंद्रिय पाच जौ येक खुलै तब वीर
बुध ताही मग श्रवत ज्यौं मसक छिद्र तैं नीर ॥७२॥

छंद तोमर : नर चहै संपत भूर । षट दोष टारहि दूर
भय नींद आलस मान[३७] रिस सोच दीरध[३८] जांन ॥७३॥

छप्पय : आचारज गहि रहै मौन मुख बैन न भाषै
रित्वज पढै न वेद नृप रच्छा अभलाषै[३९]
पतनी कहै कठोर वचन हित जो न निवाहै
नगर संचरै ग्वाल बस्यौ नाऊ वन चाहै
षट दोप तजै ये ई पुरष जी चाहै चिर आउ कौं
गहि दूर सलिल तैं डारियत जैसैं टूटी नाउ कौं ॥७४॥

दोहा : अनुसूया धीरज छमा अनालस्य अर दान
सत्य सहित ये छगुन नर कबहूं न तजै सुजान ॥७५॥

अरिल्ल : सेवा गाइ सिल्प विषन उर आनियै
खेती और नीचसंगत जिय जानियै[४०] ।
ये षट लहै विनासहिं जो न सम्हारियै
(पर हा) इन सौं अन्तर येक घरी नहिं पारियै ॥७६॥[४१]

भुजंगप्रयात : महा नम्र ह्वै कैं पढै जाय जासौं ।
भयै सिद्ध विद्या कहा काम तासौं

३६—उपजीव्य । ३७—संस्कृत मूल में हैं 'तन्द्रा' । ३८—अर्थ है दीर्घसूत्रता :
३९—संस्कृत मूल में है : "अरक्षितारम्" अर्थात रक्षा न करने वाला राजा ।
४०—संस्कृत मूल के ये ६ हैं : गौ, कृषि, भार्या, विद्या और वृषलसंगति ।
४१—मूल संस्कृत के यहां तीन श्लोक का अर्थ छटा हुआ है और एक का अथ क्रम से अलग है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जहीं भामिनी भौन मैं जोत मंडै ।
किहू दाइ सौं माइ सौ मोह छंडै ।।७७।।
जबै काम की कामना पूर गाहै । तबैं सुन्दरी की रती कौन चाहै
जबै चाहते काज की सिद्ध पावैं । तबै साधनैं चित हू मैं न लावै।।७८।।
तरैं नीर के नाव कौं को निहारै । गयैं रोग रोगी न वैंदे सम्हारैं
दसा येक ही रीत ये यौं निवाहैं । छहौ ये न पूर्वोपकारीहिं चाहैं ।।७९।।

चौपही : होइ जु रोग हीन रिन हीन । वृत होइ अपने आधीन
सतसंगत निरभैं बसबास । निज ग्रह छांड न लहै प्रवास ।।८०।।
ये नर लोक छहें सुख साज । औरौ छह सुनिये महराज

दरबा : चिंता रहित दर्व नित पावै । अर्थकारिनी विद्या आवै ।।८१।।
त्रिया कहै प्रिय आप प्रवीन । पूत सपूत 'होइ आधीन
.... ।।८२।।[४२]

दोहा : असंतोष जाकैं सदा क्रोध संकावंत
ईर्षा सहित मलीन मन पराधीन जीवन्त ।।८३।।
ये छह या नरलोक मैं लहैं नहीं सुख साज
दुखी नित्य ये ज्ञानियै महाराज कुरराज ।।८४।।

चकोर सवैंया : जीवत चोर प्रमतन सौं अरु वैद जियैं जुत रोगन सौं
जीवत हैं जजमान सौं भिच्छुक कामनी कामी के भोगन सौं
भूप जियैं झगरारिन सौं अरु पंडित मूरख लोगन सौं
जीवत ये इन ही छह तैं चह सातयौ पेखत जोगन सों ।।८५।।[४३]

कुंडरिया : छंडै नृप सातौं विसन, ये विनास कौ अंग
सुरपान मृगया जुआ सदा कामिमी संग ।।
सदा कामिनी संग बैन मुख कटुक बखानैं
दंड करैं अति कठिन अर्थ लख दूषन ठानैं
लहै न संपत सोभ जगत अपकीरन मंडै
बैरी लेइ दबाइ जौन ये साथौं छंडैं ।।८६।।

---

४२. इस में मूल श्लोक का "अरोगिता" छूट गयी है और "प्रिया च मार्याप्रिय वादिनी" का अनुवाद ठीक नहीं है ।

४३. यह चकोर सवैंया न होकर 'मदिरा सवैया है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोहा : आठों प्रथम[४४] विनास के कारन कहे बखान
जो चाहे कल्यान तो इनकौं छंडै जान ।।८७।।

सबैया : विप्रन सौं जिय दोस धरै अरु विप्रन सौं जो विरोध बढ़ावै ।
लेइ जो विप्रन के धन कौं हर, विप्रह मारवे कौं मन लावै ।
विप्रन की नित निन्दा सुनै, पुन विप्र बडाई सुनै दुख पावै ।
वीलें न बिप्रन कौं सुभ काज में, मांगत विप्रह दोस लगावै ।।८८।।

दोधक : जौ कछु हाथ वडो धन आवै । जौ मनवंछित होइ सु पावै
भाषवौ बात समै पै[४५] सुहाती । पूर्तहिं भेंट लगाइवौ छाती ।।८९।।
भूप सभा[४६] मह आदर पैये । आपनी जात में ऊंचे कहैये
मित्र मिलै, तिय सौं रत मानै । आठउ ये सुखसार बखानै ।।९०।।

दोहा : कुल, कृतग्यता, दान, दम, बुद्ध, पराक्रम, पाठ[४७]
वहु सुनवौ, वहु भाषवौ[४८], तेज बडावत आठ ।।९१।।

छंदक्ता[४९] : पांच भूत कौ रचौ भवन इक तामैं तीन थूम नव द्वार
आतम पुरुष रहौ रम भीतर, जानै सो पंडित निरधार ।।९२।।

कुंडलिया : जानन धर्म न ये दसौ, सुन धृतराष्ट्र सुधीर
अत अचेत, अरु वाउरौ, मदुवा, थकौ सरीर ।।९३।।
मदुवा थकौ सरीर भीर लोभी अत छुद्धित
अत उताइलौ होइ, काम लंपट, अतकुद्धित ।।९४।।
तातें इतनै भाव समझ बुध निंद्य बखानत
इनके बस नहिं होत, जगत में जे कछु जानत ।।९५।।

चंपकमाला : जो नृप कामहिं क्रोधहिं छंडै । पात्रहिं देखहिं दानहिं भंडै
जो सब बातन की विधि जानै[५०] ।
ग्रंथ सुनै जो पाठ पुरानै[५१] ।।९६।।
कारज कौं जो ढील न लावै[५२] ।

४४—प्रथम कारण, मूल संस्कृत : पूर्वनिमित्त ।

४५—क, ख, : समय । छन्द शुद्धि की दृष्टि से 'समै पै' रहा होगा, पै का उच्चारण लघु ।

४६—संस्कृत मूल : जनसंसदि जनसभा में ।

४७—मूल संस्कृत में 'श्रुतं' है, इसके लिए दोहे में 'बहु सुनवौ' आया ही है, 'पाठ' यह नवां अतिरिक्त ही है ।

४८—मूल संल्कृत में 'अबहुभाषिता' है, अतः दोहे में 'मित भाषवौ' होना चाहिए ।

४९—क, ख, में यही छंद नाम है, यह है ३१ मात्राबालाक वीर था आल्हा छंद ।

५०—मूल संस्कृत : विशेषविद् । ५१—मूल संस्कृत 'श्रुतवान' ।

५२—मूल संस्कृत । 'क्षिप्रकारी' ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो सब को विस्वास बडावै
कालउ की नीको गत पावै ।
लोक सबै ताकों सिर नावै ।।९७।।
दोषन की जो रीत विचारै ।
दोष निहारै दंडहि धारै
बात बखानै जो मुख अच्छी ।
ता नृप की सेवहि बहु लच्छी[५३] ।।९८।।

दोधक : दुर्बल को न करै अवमानै । जो न विरोध बलौ सौं ठानै
बुद्ध सौं बैरहि सेइह जानै । देख समै जो पराक्रम आनै ।।९९।।
आपदा में मुख दीन न भाषै । उद्दिम में मन चौकस राखै
जीत मनै दुख हू कौ बितीतै । बैरिन सोइ धुरंधर जीतै ।।१००।।
जो वित कौं जनकाज ईपावै । जो कबहूं परदेस न धावै
जो नर पापन कौ संग छंडै । जो परदार सौं प्रीत न मंडै ।।१०१।।
जो चुगली अर चोरिह न्यागै । जो मदपान के रंग न लागै
जो न जिरोध ब्रथा उपजावै । सो महराज सदा सुख पावै ।।१०२।।

घनाक्षरी : गुन में न दोष राखै, बूझै सांची बात भाषै
कोप कै न करै कछु कियौ चहै काज सो ।
अलप प्रयोजन कौ करै न विवाद रुच
बिन हू कुपायैं कोप करै न अकाज सो ।
बढ़कै न बोलै बढ़बोलै ताकौं छमा करै
दूबरे सौं झगरैं न[५४] लाज को जिहाज सो ।
सबही पै दया करै, सील को सुभाउ धरैं
पावै सब जग में बड़ाई महाराज सो ।।१०३।।

दोहा : सजहि न उद्दत वेष अरु, मुख तें कटु उचरै न
सो सब कौं प्यारौ लगै, निज विक्रम वलगै न ।।१०४।।
रहै न चडौ गुमान गिर, अस्त न कबहूं होइ
गड़ौ न बैंर उकासहो, बड़ौ कहावै सोइ ।।१०५।।

५३—लक्ष्मी ।

५४—मूल संस्कृत : "न दुर्बलः प्रातिभाश्यं करोति" अर्थात जो यदि दुर्बल है तो दूसरे से झगड़ा नहीं करता ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संकट[५५] हू में ना करै जो अनकरते काज
ताकों आरजसील कब[५६], भाषत है महाराज ।।१०६।।
पर दुख लख हरषैं नहीं, निज सुख में न सुखाइ[५७]
आरजसील सु जानियें, दै न हियें पछिताइ ।।१०७।।
जात धरम अर समय गत, जानै देसाचर
अगली पिछली बात कौ, जो चित करै विचार ।।१०८।।
हौंनहार आगम लखै, जानै सब व्यौहार
जहां जाइ तहं होइ वह, सब ही कौ सिरदार ।।१०९।।
दंभ क्रोध मत्सर गरभ पाप करम अर घैर* घैर निन्दा
राजदोप चुगली अनृत अरु बहुतन सौं वैर ।।११०।।
दुरजन बौरा मत सौं, झगरौ मंत्र विचार
बुद्धबांन सोई तजै, सो कहियै सिरदार ।।१११।।
मंगल कारज मंड कैं, जो खरचै निज वित
डरैं लोकअपवाद तैं, करैं जु प्रायश्चित ।।११२।।
इंद्रिय निग्रह सौ वर्जै[५८] साधत धर्म सहति
ताके करत सहाय कौ, आइ देवता नित ।।११३।।
कीजै आप समान सौं, प्रीत बैर व्यौहार
कवि कोविद सब कहत हैं, यहै वचन निरधार ।।११४।।

दोहा : गुनवत ऋषी प्रवान जो, रूप कै आगैं होइ[५९]
ताकी नीत निहारि कैं आइ नवै सब कोइ ।।११५।।

छप्पय : अर हू जांचै आंन नाहिं तासौं नहिं भाषै
परमित करै अहार अल्प निंद्रा अभलाषै

५५—क, ख, संस्कृत मूल हैं : "न दुर्गतोऽस्मीति करोत्यकार्यम्", अतः पाठ संकट ही होना चाहिये ।

५६—'कवि' का बुन्देली उच्चारण । अर्थ हैं विद्वान ।

५७—अर्थ हैं, सुखी होना प्रदर्शित नहीं करता ।

५८—ख, : सौ वृजै । संभवतः अर्थ है : 'जो इंद्रिय निग्रह से विख्यात होता है । यह स्पष्ट नहीं है । संस्कृत पाठ में इसका कोई मूल नहीं है ।

५९—संभवतः इस पंक्ति में 'प्रवान' के स्थान पर 'प्रवीन' रहा होगा । इसका अर्थ होगा : जो प्रवीन ऋषियों का रूप [आदर] करके उन्हें आगे हो कर ग्रहण करता है । मूल संस्कृत में है "गुर्विशिष्टांश्च पुरा तथादि, बिपश्चित..............."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमित[६०] करै जो कर्म आतमा ब्रस कर गाजै
ताहि अनर्थ समूह दूर ही तें तज भाजै
पुन कर्म कियौ चाहै कछू, भेद और कोउ ना लहै
बिगरै न कछु ता भूप कौ भंत्र गुप्त जाकें रहै ।।११६।।

गीतिका : मृदु होइ सुद्ध सुभाइ कौ सब कौ करै सनमान जू
जाकै सभा के सनै लच्छन होइ परम सुजान जू
उपकार जो सब कौ करै यह रीत जाकी होत जू
सब जात में यह जानियै मन[६१] मांह जैसे जोत जू ।।११७।।

अरिल्ल : सावधान ह्वै जो आतम रछया करै[६२]
सो सब लोगनु की गुरता निहचै धरै
उग्रतेज सावंत वृद्ध जा संग रहै[६३]
मूरज कैसौ तेज भूप सोई लहै ।।११८।।

चौपही : वन में भये पंड के पूत । पांचौ मनौ पांच पुरहूत
ते तुम ही पाले सुख साज । अव तिनकी तुम कौं सब लाज ।।११९।।
तुम हू सीख सिखाई सबैं तुम्हरी अग्या पालत अवैं
तिनकौ राज देहु महाराअ । होहु सुखी सब सहित समाज ।।१२०।।

दोहा : जो दैहौ महराज तुम पंडसुतन कौ राज
तौ तुम्हार सुर असुर नर समता लहै न आज ।।१२१।।

इति श्री महाभारते उद्योगपर्वणि विदुरप्रजागरे द्वितीयो ध्यायः ।।२।।

———

६०—क: ख: आतित ।

६१—बुन्देलों में मनि [मणि] का उच्चारण

६२—मूल संस्कृत में है : 'य आत्मना पत्रपते भृशं नरः' परन्तु कवि ने यहां अनुवाद संभवतः 'ये आत्मानं त्रायते भृशं नरः' का किया प्रतीत होता है ।

६३—यहां भी मूल संस्कृत का पाठ भिन्न प्रतीत होता है । जो पाठ अभी सामने है वह है : 'अनन्ततेजा : सुमना : समाहित : ' इसका अनुवाद होगा : "अमित तेज हो सुमन समाहित जो रहै । "

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीसरा अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच—

दोहा : अब कछु मो सों विदुर तुम ज्यौं की त्यौं सब बात
धर्मयुक्त औ हितबिहित जो जिय जानत तात ।।१।।
पापी संकौ[1] पापमत पापै सूझत मोह
ब्याकुल मन अकुलात अत, ताथैं पूछत तोह ।।२।।
कहौ कियौ चाहत अबैं, मंड तनय मतवान
कुसल होउ कुरवंस मैं किहि विधि परम सुजान ।।३।।

विदुर उवाच—

दोहा : प्रिय अप्रिय सुभ कैं असुभ, जदपि न पूछैं आइ
जाकौ हित सुभ चाहियै, कहियै ताहि सुनाइ ।।४।।
तातैं अब महराज हौं, कहत सुनौ हित बात
कुरकुल कौ कल्यान कछु[2] , वचन धर्म अवदात ।।५।।
सिद्ध होत विनहू जतन, मिथ्या मिश्रित बात
अब करतब[3] तैं भूल हू, मन न धरौ महराज ।।६।।
जोग विहित कीये जतन, सिद्ध होत सुखदाइ[4]
तिन तैं मन न उचाटिये, कारज जुक्त उपाइ ।।७।।
सानुबंध कारज करैं पै अनुबंध निहार
करै न सहसा बुद्ध बल, पंडित करै विचार ।।८।।
कारज कौ अनुबंध लख, अर उन्नत[5] फल चाह
पुन अपनौ सामर्थ लख, करै नं न करै ताह ।।९।।

सोरठा : देस कोस अरु थान[6] , हांन व्रद्ध सुभ असुभ कौ
जानै जो न प्रमान, ताकौ राज न होइ थिर ।।१०।।
जो इनकौ परमान[7] नृप, करै जथा चित चाह
धर्म अर्थ विधि मैं निपुन, नृपता तजैं न ताह ।।११।।

१—मूल संस्कृत में है पापाशंकी : २—क, ख, कटु । ३—अकर्तव्य ।
४—मूल संस्कृत में है : 'यतु कर्म न सिध्यति' जो कर्म सिद्ध न हों ।
५—क, ख, दोनों में 'उत्तर', परन्तु मूल संस्कृत "उत्थानमात्मनश्चैव" के अनुरूप 'उन्नत' (उन्नति) ही रहा होगा ।
६—क, ख, दोनों में 'अपमान', मूल संस्कृत 'स्थान' के अनुरूप 'अरु थान' रहा होगा ।
७—क, ख, दोनों में 'परनाम' संस्कत मूल 'प्रमाणानि', अतः 'परमान' रहा होगा ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोरठा : जो नृप उत्तिम रीत, राज पाइ बरतै नहीं
लछमी हरै अनीत[८], ज्यौं सुन्दर रूपहिं जरा ।।१३।।

दोहा : जैसै ऊर मच्छ लख मच्छ वडिस विंध जात
तैसे लोभी अर्थ तकि, लखै न आतमघात ।।१४।।

चौवही : भच्छौ जाइ भच्छबे लाइक । मुख सौं पचै होइ गुनकाइक
जो चित चाहै चैन अपार । अैसौ करै विचार अहार ।।१५।।

कुंडलिया : फल अपक्व जो ब्रच्छतें टोर लेत नर कोइ
फल कौ रस पावै नहीं, नास बीज कौ होइ ।।
नास बीज कौ होइ, यहै निज चित्त विचारै
समैं रीत पहिचान, तास रच्छा उर धारै
पके पके फल लेइ स्वाद रस लहै बुद्ध बल
फल तैं पावै बीज, बीज तैं होइ बहुर फल ।।१५।।

दोहा : जैसै भौंरा फूल कौ राखत रस के हेत
ऐसैं नृपत प्रजान सौं राख राख धन लेत ।।१६।।
फूले फूलन लेइ चुन, करै न जरतैं नास
दरब लेइ हिंसा बिना, सो नृप नीत निवास ।।१७।।
जैसे माली बाग कौ राखत हित चित चाह
तैंसैं जो केउला करै कहा दरद है ताह ।।१८।।
कहा मोइ करवौ अबै कहा न करनौ आइ
यह विचार चित राख नर करै कि न करैं ताइ ।।१९।।

सोरठा : राख न लेत प्रजाहिं, जो नृप दुख अपकरम तैं[९]
प्रजा न चाहत ताहि, ज्यौं तिय खोजा पुरष कौं ।।२०।।
जे अनकरने जोग होत जात[१०] कारज किते
तिनकौ उद्यम लोग करैं ब्रथा श्रम ते लहैं ।।२१।।

दोहा : अल्प जतन तैं होत अरु, करैं महाफल होइ
ते कारज सत्वर[११] कियैं, विघन न ब्यापै कोइ ।।२२।।

८—मूल संस्कृत में 'अविनय' ।

९—मूल संस्कृत है : "प्रसादो निष्फलो यस्य क्रोधश्चापि निरर्थक:" । प्रस्तुत पंक्ति इसका अनुवाद नहीं है ।

१०—संस्कृत मूल है 'तथा गता:' । अभिप्राय है : जो काम प्रकृत्या ही 'अनारम्य अर्थात् न किये जा सकने वाले होते हैं ।

११—ख, आतुर ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूधे हू आंखन लखै प्रीत रीत सौं चाह
चुप[12] नृप बैठौ रहै, सो सुख देत प्रजाह ।।२३।।
जो नाही फूलौ फलौ, फलौ[13] न आवै हाथ
लगै पकौ सौ अनपकौ, सो न सेइये नाथ ।।२४।।
चितवन[14] मन क्रम वचन, करत प्रसन्न प्रजाह
प्रजा अधिक सुख पाइ चित, हित सौं चाहत ताह ।।२५।।
जातैं सव प्रानी डरैं, ज्यौं म्रिग बधिकहिं चाह
लहै समुद्रावधि मही, चिर न भोगवै ताह ।।२६।।

चौपही : अपनौ राज पुरातम आह । आप तेज बल पायौ ताह
सोऊ कियैं अनीत नसाइ । ज्यौं घन मंड़ल बातहिं पाइ ।।२७।।

गीतिका : नृप जो सनातन धरम कौ आचरत राजहिं पाइ कै
बसुधा सदा ताकै बडै वसु भूर भूर बडाइकै
तज धर्म उत्तम भूप ठान अधर्म मंडै कर्म जू
महि होत ताको संकुचित ज्यौं अग्नि डारै चर्म जू ।।२८।।

दोहा : कीजे जतन विचार जो, पर पुर मर्दन काज
सोई की जैं निज नगर, रच्छन हित महराज ।।२९।।
लहै धर्म तें राज पद, पालै धर्महि दान
धर्ममूल लछमी लहै, होइ न कबहूं हान ।।३० ।
यद्दिप वहु[15] बलगै बकै, बालक हू बिन नैम
सार वहू[16] थैं लीजियै, ज्यौं पारस तैं हैम ।।३१।।

चौपही : बुधवंतन तक सुन्दर बैन । उत्तिम चरित जु निरखै नैंन
तिन ही गुनन गहै सुविचार । ज्गौं चुन लेत सिलौ सिलहार ।।३३।।

छंद : पसू सुगंध ही लखैं, लखै द्वजात वेदद्रष्ट[17]
लखै महीप दूतनैंन, अच्छ द्वार और सृष्ट[18] ।।३३।।

दोहा : पावै अधिक कलेस जो धेनु बुर्दुहा होइ
मुदुहा सुख दुह लीजियैं, ताहि न दुखवै कोइ ।।३४।।

१२—क, ख, ह्वै ।
१३—क में यह सब्द छूटा हुआ है : मूल संस्कृत है : "सुपुष्पित: स्यादफल: फलित: स्यादुरारुह: । अपक्व: पक्वसंकाशी न तु शीर्येत कर्हि चित् ।" दोहा अर्थत: इससे भिन्न है ।
१४—क : चित वित, यह संस्कृत मूल 'चक्षुषा' से संगत नहीं है ।
१५—क : मद्दिप हू ।
१६—क : ख : स्वारथ हू । यह संस्कृत मूल 'सारमादघात्' से संगत नहीं है ।
१७— ख : द्विज[illegible] १[illegible] सृष्टि ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विना तपाये जो नवै[१९] ताहि न तापै कोइ
ताहि नबावैं कौन जो नयो आप ही होइ[२०] ।।३५।।
लहत इंद्र को भोग जो नवत बली को आन
पंडित पहिलें ही नवत यह विचार जिय जान ।।३५।।
मेघ पसुन को परम प्रिय, नृप के मंत्री[२१] जान
पति है प्रीतम त्रियन को, वेद विप्र सुखदान ।।३७।।

छप्पय : धरम सत्य तें रहै, रहै विद्या अभ्यास बल
उवटें चुपरें रहै रूप, आचार गहैं कुल
रहै जथाक्रम चढ़ें तुरग मीतहु मृदु बोलें
सेवा तें[२२] रहि गाइ धान्य धरती रहि तौलें[२३]
तिय रहै प्रीत पतकी लहै, अर भूषन पट मंडिये[२४]
कह ऋस्न प्रीत तब ही रहै कपट हियै को छंडिये[२५] ।।३८।।

दोहा : उत्तम कुल आचार विन, करै प्रमान न कोइ
कुलहीनो आचार जुत, लहै वड़ाई सोइ ।।३९।।
रूप, सील, कुल, वित्त, बल, सुख, सोभा सतकार
देख और को जो कुढै, ताको रोग अपार ।।४०।।
जाहि पियें सत्वर करै, जे अनकरने काज
जाहि पियें कारज तजै, ते न करै महराज ।।४१।।
विना समय परगट करै, मूढ मंत्र पी जाइ
मत्त होइ जाके पियें, कबहुं न पीजै ताइ ।।४२।।
विद्या, उत्तमकुल जनम, बहु धन, रूप अपार
नीचन को उनमाद कर, सन्तन को श्रंगार ।।४३।।

१९—क, ख, द्रवै :

२०—मूल संस्कृत "यच्च स्वयं न तद्दारु न तत्सन्तापयन्त्यपि", दोहे की पंक्ति इसका अनुसरण नहीं करती। २०—अ, संस्कृत मूल की पंक्ति है : इन्द्राय स प्रणमते नमते यो बलीयसे। यहां भी मूल का अनुसरण नहीं है। पंक्ति यह रखी जा सकती थी : इंद्रहि करत प्रनाम जो नवत बली को आन।

२१—क, ख, मंत्रन को जान, संस्कृत मूल राजानी मंत्रिकांधवः।

२२—क, ख, सेवक पै। २३–, २४–, २५—इस संस्कृत मूल से सम्बन्धित है : मानेन रक्ष्यते धान्यंमश्वान् रक्ष्यन्त्यनुक्रमः, आभीक्षणदर्शनं गाश्च स्त्रियो रक्ष्याः कुचेलतः (कुचेलतः मैले वस्त्रों से)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूजत संत असंत कों कवहुं कौन हू काज
वह मानत मन आपकौं, संतन कौ सिरताज ।।४४।।

सोरठा : ग्यानिन[२६] कौ गत संत, है असंत कौ संत गत
संतहि कौ गत संत, नहि असंत गत संत कौ ।।४५।।

छप्पय : पहिरै भूषन वसन, सभा जीतै नर सोई
जीतै भोजन स्वाद, जासु ग्रह गोधन होई
जी घर बाहन होइ, जीत पथ सो अवगाहै
जीत जगत कौ लेइ सील जो सदा निबाहै
कवि कृस्न कहत जा पुरष कौ, सील सुभाउ नसात है
किहि काम धाम धन तासकौ, जनम अकारथ जात है ।।४६।।

दोहा : आमिष ही भोजन बड़ौ, जिनकै दर्ब अपार
मद्धिम मानत अधिक रुच, गोरस ही रससार ।।४७।।
निरधन नर संसार में पाइ तेल कौ सांज
अम्रत हू तै अधिक रुच, जिय जानत महराज ।।४८।।

सोरठा : अन्न दरिद्री खात, जो रुच मानत चित्त में
धनवंतन कौ तात, सो रुच दुर्लभ सुपन हू ।।४९।।
जिनकै लच्छ[२७] अपार, तिनकौ नहिं भोजन सकत[२८]
जे निरधन संसार, ते पचवत हैं काठ हू ।।५०।।

दोहा : उत्तम नर अपमाम तैं डरपत सील समुद्र
मरबे तै मद्धिम डरत, बित्त[२९] नास तै छुद्र ।।५१।।
मदिरा तैं अैस्वर्ज मद, दारुन अधिक लखाइ
वह उतरै अपने समय, यह बिन बिपत न जाइ ।।५२।।
इन्द्री अरथह पाइ, दौरत गहि राखै न जे
तिनकौ लेत दवाइ, जैसै ग्रहा नक्षत्र कौ ।।५३।।
पांचौ इन्द्रिहि सहज ही जीतै न जु मतिमंद
ताकौ वाडत आपदा, सुकल पच्छ ज्यौं चंद ।।५४।।

चौपही : आतम जाके बस नहीं होइ । मंत्रिन वैसे जीतै सोइ
जा नृप के मंत्री बस नाहिं । तापै अरि क्यौं जीते जाहिं ।।५५।।

सोरठा : वैसी जौ चित चाह, जो जीतैं निज आतमा
मंत्री मानत ताह, सो जीतै सब सत्र बल ।।५६।।

२६—क, ख, : प्राप्ति । २७—लक्ष्मी । २८—शक्ति । २९—वृत्ति (व्यापार)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चोपही : जो नृप इन्द्रिन कौ बस करै । मंत्रिन हू के मन कौ हरै
अपराधिन कौ देइ जु दंड । सेबै लछमी ताहि अखंड ।।५७।।

कुंडलिया : रथ सरीर या पुरष कौ, इंद्री ताके वाज
रथी विराजत आतमा, चक्र मनोरथ साज
चक्र[30] मनोरथ साज, बाज अत चंचल आहीं
जित ही कौ मुंह परै, अैंच तितकौ लै जाहीं
ग्यान रज्जु सौ बांध धीर जो करै आप हथ
कठिन पंथ संसार भलै पहुचै ताकौ रथ ।।६८।।

दोहा : जाके घोरा अनसधे और सारथी कूर
ताकौ रथ पहुचै नहीं होइ बीच ही चूर ।।५९।।
लखै अनर्थहि अर्थ में अर्थ अनर्थहि जान
सो मूरख संसार में लेत दुखै सुख मान ।।६०।।
धर्म कर्म कौ छोड़ जो इंद्रिन के बस होइ ।
बाम, धाम धन, प्रान कौ नास लहै नर सोइ ।।६१।।
विषयन कौ ईश्वर भयौ, इंद्री वस नहिं जास
इंद्रिन के अैस्वर्ज बिन सब अैस्वर्ज बिनास ।।६२।।

सवैया : आपु ही आपुनपै कौं लखै गहि इंद्रिय बुद्ध मनै बस आनै
आपु को है यह आपु ही मीत अमौत हू आपनौ आपकौं जानै
आतमा जीत कियौ अपने बस ताही कौ पंडित मित्र बखानै
आतमा जापैं न जीत्यौ गयौ वह ताहौ को वैरी बिकारहि ठानै ।।६३।।

चौपही : काम क्रोध ये मच्छ कराल । रुकत न अल्प बुद्ध के जाल
निक्सत इंद्री छिद्रन पाइ[31] । याकौ ग्यान गिलत सत भाइ[32] ।।६४।।

दोहा : धरम अर्थ कौं देख कैं, करहि जु सामा साज
सो अनन्त सुख भोगवै, महाराज कुरराज ।।६५।।
यही के मन तैं भये पांच सत्र या मांह
तिनके बिन जीते कहौ अर क्यौं जीते जांह ।।६६।।

सोरठा : राजसाज भ्रम जात, इंद्रिन बस नहिं करत नृप
ते पापिष्ठ लखात मारे अपने करम के ।।६७।।

३०—इस अनुवाद में बड़ी स्वतन्त्रता से काम लिया गया है । मूल संस्कृत के रूपक में मनोरथों के चक्र और ज्ञान के रज्जु होने की बात नहीं है ।
३१—मूल लंस्कृत में इसके समानार्थी शब्द नहीं हैं ।
३२—सैकड़ों तरह से, शतभावतः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सवैया : पापी की संगत छोडे न जानकैं बीस बिसै वह पापी कहावै
पापी कौं संग कियै मन[33] कौ मत दंड बराबर पापी के पावै
जो न पत्याउ तौ देखौ प्रतच्छ ही याकौ कहा कोउ साख बतावै
आलौं ऊ होइ जौ सूखे के साथ हुतासन दोउन हू कौं जरावै ।।६८।।

चौपही : पांच सत्र याही तैं भये । तिन हू पांच प्रयोजन ठये
रूप सब्द रस गंध बखान । परस सहित ये पाँचौ जांन ।।६९।।
गज कुरंग झष भृंग पतंग । बिनसौ गये एक के संग
जा येकहि ये पांचौ लागैं । ताकौं क्यों न आपदा पागैं ।।७०।।

छप्पै : दांन दया संतोष सील दम सत्य सरलता
अनसूया आचार धर्म सुभ वचन मधुरता
अस्तिबुद्ध आतमाग्यन अनजतन[34] तितिच्छा
अनालस्य हरिभक्ति साध संगत जस इच्छा
सरधा समेत कवि कृस्न कहि जिते जगत गुन गाइये
जाकौ मलीन मन होइ ये तहां न ढूंढै पाइये ।।७१।।

दोहा : निंदा कर कर साघ की जे नर हंसत असाघ
वाकौ छूटत पाप सिर बाकै चढत अगाध ।।७२।।
सुश्रूषा बल तियन कौ नृप बल दंड बखान
दुष्टन कौ बल मारबौ छमा साघ बल जान ।।७३।।
अर्थ बहुत सुंदर बरन कहिबौ अैसी बात
अरु गहि रहिबौ मौन अति कठिन दुवौं ये तात ।।७४।।
जो बातैं नीकी कहै करै अमित कल्यान
सोई बोलै दुरबचन होत अनर्थ निदांन ।।७५।।
लागत तीर सरीर मैं तेऊ छत पुर जात
कुबचन छत कैहु न पुरत दीसत नाहिं पिरात ।।७६।।

सोरठा : नावक सर धन तीर, काढे कढत सरीर तैं
कुबचन तीर अधीर, कढत न क्यौं हू उर गडे ।।७७।।
लगत मरप पै आन, कुबचन सर मुख तैं कढे
पंडित यह जिन जान कबहुं न काढत बदन तैं ।।७८।।

३३—अभिप्राय मानव धर्म शास्त्र प्रणेता मनु से है ।
३४—मूल संस्कृत 'अनायासो' । अनाजतन अनायत्न का बुन्देली रूप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घनाक्षरी[३५] : सैंती हथ्यार अँन अनयारे अनेक काम
सरहु तै खर खल बचन बिसेखियै
चौट न बचत ओट कीनै हू कपाट कोट
भौन भौंहरें हू भारी भय अबरेखियै ।
कैसौदास मंत्र गद जंत्र ऊ न प्रतिपच्छै
रच्छै लच्छि लच्छि वज्र रक्षक न लेखियै
भेदियत मर्म वर्म ऊपर कले ही रहै
पीर घनी घाल न घाय नैन देखियै ॥७९॥

चौपही : जापै कोप देवता करैं । ताकी बुद्ध पहलहैं हरै
जब या नर की बुद्ध नसाइ । तब उलटी सब्र सूझत ताइ ॥८०॥
बुद्ध भ्रष्ट तैं लहत ब्रिनासहि । ताहि अनीत नीत सौ भासहि
सो अब तुव पुत्रन की बुद्ध । उलटी भई तुम्है नहिं सुद्ध[३६] ॥८१॥
पंड सुतन सौं करत विरोध । है कछु हौनहार कौं सोध
तजहु अनीत नीत चित धारहु । अपनै ह्री उर क्यों न बिचारहु ॥८२॥

छप्पै : धर्मपुत्र धर्मग्य जुधिष्ठिर गुन गन नाइक
नृप लच्छन संजुक्त तिहू पुर प्रभता लाइक
धर्म अरथ तत्वग्य प्रजा कंह अत सुखदाइक
तेज पुंज बुधवंत भक्त पुव मन वच कायक
नृप सकल तुम्हारे सुतन तैं अग्रनीय जौ अंस मैं
प्रभु राज देहु ताकौ अबै कुसल होइ कुरवंस मैं ॥८३॥

दोहा : कूर करम कुल कलह तें, सकुच, दया जिय ठांन
अब लौं सहत कलेस बहु, तुव गौरव उर आन ॥८४॥

इति[३७] त्रतीयोध्याय: ।

३५—कवि ने इसे केशव की कविप्रिया में से उद्धत किया है और कहा है : 'उदुक्त कवि-प्रिया……'' । संस्कृत मूल में इसका समानार्थी छंद नहीं है ।

३६—अभिप्राय : तुम्हें इसका होश नहीं है । सुद्ध–सुधि–याद

३७—महाभारत में उद्योगपर्वणि प्रजागरपर्वणि विदुरनीतिवाक्ये चतुस्त्रिंशत्तमोऽध्याय:

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चौथा अध्याय

धृतराष्ट्र : चोपही : कहौ विदुर औगै कछू बात । धर्म अर्थ मिश्रित अवदात
सुनत विचित्र तुम्हारे बैन । मम मन कँहूं तृप्ति लहै न[1] ।।१

विदुर : बोहा : जो कहूं सब प्रानीन सौं होइ सरलता भाउ
सब तीरथ अभिषेक तें याकौ अधिक प्रभाउ ।।२।।
सब तीरथ अभिषैक तें याकौ अधिक प्रभाउ ।।२।।
रिजता लहियें जान यह पुत्रन में महराज
जौ लौ जग में पुरष की कीरत रहत प्रकास
तौलों सुख सौं लहत नर स्वर्ग लोक कौ बास ।।४।।

मौतीदास : कहौं इतिहास पुरातम अँन । विरोचन साथ सुधन्या[2] के बैन
भयौ कछु वेसनी[3] हेत विवाद । सुनैं मिट जात हिये कौ विषाद ।।५।।
स्वयंवर मंड ठटी पतकाम । सरूपवती अत ही अभिराम
नहीं कोउ ता सम दूसरी बाम । प्रभा नव जीवन केसनी नाम ।।६।।

दोहा : अकसमात आयौ तहां विप्र सुधन्या नाम
राजसुता आसन दियौ पूजा कर अभराम ।।७।।
इहि आसन बैठें न हम, गयौ इती कहि बात
निस बिताइ निज आश्रमहि वहुर आइहौं[4] प्रात ।।८।।
आयौ सुत प्रहलाद कौ याहि विरोचन नाम
बोली दानव इंद्र सौं वचन केसनी बाम ।।९।।

केसनी : दोधक : कौन बड़ौ है विरोचन दू मैं । विप्र कि दानव कौ कुल भू मैं
भूपन जोग सिंघासन आही । विप्र सुधन्या बैठत नाही ।।१०।।

विरोचन : दोहा : कहां विप्र कंह देवता हम ही तें सव मान
हम दैयत[5] सबसें बड़े कस्यप[6] के सुत जान ।।११।।

केसनी : तोमर : अब जानवी यह बात । दुज आइहैं वह प्रात
मिलकै जु होइ विचार । तव जानियै निरधार ।।१२।।

विरोचन : दोहा : ज्यौं तू भाषत भामिनी त्यौं ही हूहै प्रात
मिलै सुधन्या मोह तब जाय परैं सब बात ।।१३।।

तोमर : रजनी भई सु बितीत ।। ऊग्यौ सरोरुह मीत
पहुचौ सु ब्राह्मन आइ । जहं हो सु दानव राइ ।।१४।।

१—ख : लहै न चैन, मूल संस्कृत : तृप्ति । २—सुधन्वा । ३—केशिनी
४—क-ख : आइयौ । ५—संस्कृत दैत्य ६—मूलसंस्कृत : प्राजापत्या :

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोहा : दानव सुत अर बेसनी विप्रहि आवत देख
आगैं ह्वै आसन दयौ पूजा करी विसेष ।।१५।।
सुधन्या : दोहा : लीनौ आदर मान हम, परस्यौ अपने हाथ
विप्र न बैठत असुर सुत, इहि आसन तुम साथ ।।१६।।
विरोचन : दोहा : विप्रन कौं आसन कही ऊन काठ कुस कांस
नाहीं बैठन जोग तुम सिंघासन हम पास ।।१७।।
सुधन्या : चौपही : तुम बालक घर ही के बड़े । अबलौं विध कछु नाहीं पड़े
हम बैंठत सिंघासन ऊपर । पिता तुमारौ सोवत भू पर ।।१८।।
विरोचन : दोहा : गो हिरन्य गज अस्व ग्रह और जु दरब अपार
विप्र होड़ बद कींजिये प्रश्न पूछ निरधार ।।१९।।
सुधन्या : गज तुरंग अरु कनक है असुरन कैं जु अपार
प्रान होड है द्वजन कैं पूछ करौं निरधार ।।२०।।
विरोचन : देवन कौ अर नरन कौ नहिं हम सौं विस्वास
प्रान होड़ बद जाहिं दुज हम पूछन किंहि पास ।।२१।।
सुधन्या : दैयत पत प्रह्लाद है पिता तुम्हारौ आइ
मिथ्या कहै न पुत्र हित चलौ पूछियै ताहि ।।२२।।
सोरठा : दानव सुत अरु विप्र, पूछन कौ जिय पन कियौ
प्रान होड़ वद छिप्र, गयौ जहां प्रहलाद है ।।२३।।
प्रहलाद : दोधक : पंथ चले दोउ आये ही जैसे । संग भयौ कबहूं नहिं ऐसे
भाषौ विरोचन जैसे है तैसैं । प्रीत तुम्हैं इन्हैं बूझिये कैसे ।।२४
विरोचन : दोहा : हमैं सुधन्या विप्र सौ नाक छु प्रीत प्रधान
पूछन आये तुमहिं पित होड़ वदे हैं प्रान ।।२५।।
प्रहलाद : दोहा : आसन पादोदक अरघ मधुपर्कादिक साज
ल्यावौ बेग वनाइकै विप्र सुधन्या काज ।।२६।।
सदा पूजवे जोग तुम पुन आये मम धाम
विप्र तुम्हारी भैंट यह स्वेत गाइ अभिराम ।।२७।।
सुधन्या : आसन विधि मधुपर्क विधि हम सब लीनी मान
पूछन आये प्रस्न यह प्रान पैंज जिय ठान ।।२८।।
तातैं झूठ न बोलियैं सांची कहियै छिप्र
दोउन मैं अव को वड़ौ ये तुव सुत हम विप्र ।।२९।:
प्रहलाद : येकैं मेरैं पुत्र यह तुम आये पन धार
कहा कहौ चहिये हमहिं तुम ही कहौ विचार ।।३०।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुधन्या : कुंडरिया : दीजै पूतहिं भूम अर जो घर मैं धन होइ
होइ दुहुन कौ बाद तहं झूंठ न वोलै कोइ
झूठ न बोलै कोइ होइ सांची सोइ भाषैं
जो पंडित बुधवंत भलौ अपनौ अभिलाषैं
पुत्र हेत हिय धार और की और न कीजै
ज्यौं है त्यौं अनुसरैं प्रस्न को उत्तर दीजै ।।३१।।

प्रहलाद : दोहा : सांच झूठ कुछ ना कहत जे जानत सब वात
कहौ विप्र पूछत तुम्हैं ते किहि गत कौ जात ।।३२।।

सुधन्या घनाक्षरी : जैसी गत बीतत दुहागिल[७] तिया कौं राति
जैसी गत होत जिय जुवा धन हारे तैं,
जैसी गत होत ग्रहु बैरिन के बस परैं
जैसी गत होत सिर धरै भार भारे तैं
नगर में घिरौ होइ बाहिर अमित्र[८] गन
खैंबैं खौं न पावै कछु त्रस न बिचारे तैं,
कहै कवि ऋस्न होत येतिन की जैसी गत
तैसी गत होत जिय जान मौन धारैं तैं ।।३३।।

पद्धरी : पर हेत कहै जो झूठ बात । फल लहै पंच जन प्रान घात
गो हेत कहै जो झूठ जान । अपराध होत दस प्रान हान ।।३४।।
हय हेत अनृत भाषै निदान । सो लहै सहस पातक प्रमान
भाषत असत्य जो हेम हेत । आजातजात[९] अपराध लेत ।।३५।।
जत होत सकल पातक उदोत । महि हेत झूठ बोलै सु होत
यह जान हियैं जे बुद्धवंत । महि हेत अनृत भाषै न संत ।।३६।।

प्रहलाद : छंद : मोतैं बड़े मुन अंगिरा जिय मैं विरोचन जान लै
तुम तैं सुधन्या हैं बड़ैं यह बात सांची मान लैं
तुव मात सैं याकी प्रसू गुरवी सदां विध कीन है
तातैं तुम्हारे प्रान अब या विप्र के आधीन है ।।३७।।

दोहा : छींत लियौ मम पुत्र तुम सुनौ सुधन्या गाथ
तातैं याके प्रान अब विप्र तुम्हारे हाथ ।।३८।।

सुधन्या : छप्पै : धन धन दानव इंद्र हियैं सुत लोभ न आयौ
कही धर्म की बात, जगत मैं अस जस पायौ

७—मूल संस्कृत : अधिविन्ना—सौत के लिये परित्यक्ता स्त्री।
८—क, ख, कलित्र । मूल संस्कृत : 'अभित्रान' । ९—संस्कृत मूल : जातानजातान् ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीत विरोचन लियौ प्रान कौ जिहि पन कीनौ
यह जु तुमारौ पुत्र बहुर तुमकौं हम दीनौ
अब या कहं आइसु दीजियै इती बात उर मैं धरै
चल जहां होइ वह कुंबर तंह मम पग प्रच्छालन करै ।।३९।।

दोहा : चल आये दोऊ जहां हती केसनी वाम
दुज के चरन पखार कै गयौ विरोचन धाम ।।४०।।

बिदुर : महाराज प्रहलाद की सुनी नीत की रीति
भू हित अनृत न बोलियै कर पुत्रन सौं प्रीति ।।४१।।
कुल कौ नास न कीजियै लीजै राख समाज
हियैं दया धर दीजियै धर्मपुत्र कौ राज ।।४२।।
हाथ लकुट लै देवता रच्छा करत न आइ
जा कंह राखत देवता ताकी बुद्ध बड़ाइ ।।४३।।
ज्यौं ज्यौं नर सुभ करम कौ मनसा करत समर्थ
त्यौं त्यौं याके सहज ही सिद्ध होत सब कर्म ।।४४।।
पड़ै वेद पाखंड रच कपट न छोड़ैं जान
जम संकट तैं ताहि वे श्रुत न छुड़ावत आन ।।४५।।
अंत समै श्रुत धूत कौं यौं छोड़त हैं तात
पच्छ होत ही घैंसुवा ज्यौं पंछी तज जात ।।४६।।
मद्यपान जूवा कलह अर बहुतन सौं बैर
करबौ तिय अर पुरष मैं अंतर चुगली घैर ।।४७।।
पत पतनी कौ बाद अरु नृप कौ दोष कुचाल
अनकरनै इतनै कहे कुरकुल तिलक नृपाल ।।४८।।
बैद कुचाली चोर ठग सत्र मित्र विख्यात
व्योपारी जु जिहाज कौ साच्छी करौ न सात[10] ।।४९।।
अग्नहोत्र अध्ययन अरु जग्य मौन ये चार
हौंहि कछू विध हीन तौ फल विपरीत निहार[11] ।।५०।।

१०—मूल संस्कृत है : सामुद्रिकं वाणिजं चोरपूर्वं शलाकधूर्तं च चिकित्सकं च अरिं च मित्रं च कुशीलवं च नैतान् साक्ष्ये त्वधिकुर्वीत सप्त ।।३५।४४

११—मूल संस्कृत : "एतानि चत्वार्यभयंकराणि भयं प्रयच्छत्ययथा कृतानि" । अनुबाद में प्रथमांश 'एतानि चत्वारि अभयंकराणि' =ये चार अभय करने वाले हैं, छूटा है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्रिभंगी[१२]: जो पर घर जारै, बिस दै मारै, सोमबल्ल दै लेय धनैं
पर त्रिय रुच राखै, चुगली भाषै, द्रोह मित्र सौं धरै मनैं
गुर सेज सिधावै, तीर बनावैं, सुरापान रुच चित धरैं
श्रुत निंदा ठानैं, कछूं न मानैं, देव दरब लै भोग करै ।।५१।।
न जो है कुंडासी, बाल विनासी, नहि जाको व्रतबंध करै
सरनागत घाती, अत उतपाती, ऋपन होइ घन धाम भरै
जो सब कुछ भच्छै, धरम न रच्छै, अतछीतन बहु कोप गहै
यौं बेद बखानैं, सबही मानैं ब्रह्मघातनि समान कहै ।।५२।।

छंद मुरल्लिका[१३]: कनक जानियै अगित तचायें अरु कुलीन देखें आचार
कायर सूर समर मैं लखियै भलो बुरी कीयें ब्योहार
धीर परखियै दारिद आयें बिपत परै बैरी अर मीत
सुघर कूर बोलत ही लखियै फल पायें पातकी पुनीत[१४]।।५३

रोला : हरै बुड़ाई रूप हरै धीरज को आसा
हरै असूया धरम मीच प्रानन को नासा
क्रोध लच्छमी हरैं कुसेवा सील नसावै
काम लाज कौं हरै सबै अभिमान गमावैं ।।५४।।

दोहा : उपजत श्री सुभ करम तें बड़त बुद्ध तें सोइ
चतुराई तें मूल गहि, संजम तैं द्रिढ होइ ।।५५।।

१२—यह पद्मावती छन्द है अनुवाद में मूल की अनेक बातें छूट गई हैं और कुछ ऐसी बातें जो मूल में नहीं हैं आ गई हैं। मूल संस्कृत है :

आगारदाही गरदः कुंडाशी सोमविक्रयी
पर्वकारश्च सूची च मित्रध्रुक् पारदारिकः
भ्रूणहा गुरुतल्पी च यश्च स्यात्पानपो द्विजः
अतितीक्ष्णश्च काकश्च नास्तिको वेदनिन्दकः
स्रुवप्रग्रहणो व्रात्यः कीनाशश्चात्मवानपि
रक्षेत्युक्तश्च यो हिंस्यात् सर्वेवे ब्रह्महभिः सभाः
उद्योगपर्व अध्याय ३५ श्लोक ४६, ४७, ४८

१३—सामान्यतः अन्त में गुरु लघु वाले इस ३१ मात्राओं के छन्द को 'वीर' या आल्हा कहा जाता है।

१४—संस्कृत मूल में इसका आधार नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुल कृतग्यता दान दम बुद्ध पराक्रम पाठ[15]
बहु सुनबौ बहु भाषबौ[15अ] तेज बड़ावत आठ ।।५६।।
महिमा आठौ गुनन की करत येकु गुन आहि
नृप जाकौ आदर करै सब जग सोहत ताहि ।।५७।।
जग्य दान अध्ययन तप संत करत मन लाइ
सत्त सरिजुता दम दया[16] संतहि सेवत आइ ।।५८।।

कुंडरिया : सबै बखानत धर्म कौ मारग आठ प्रकार
तिनकौ सुनौ महीप मन द्वै विध कौ निरधार
द्वै विध कौ निरधार जग्य तप देत जु दानहिं
अरु विद्या अध्ययन इनहिं दंभी हू ठानहिं
छमा सत्य संतोष दया उर छुद्र न आनत
महापुरष बिन होत न ये सौं सबै बखानत ।।५९।।

छंद नीला : सोभित सो न सभा जहं वृद्ध न सोहत हैं
धर्महिं जे न बखानत वृद्ध न होवत हैं
धर्म न सो जहं सत्य बखान नहीं करिये
सत्य न सो लवलेस जहां छल कौ लहिये ।।६०।।

दोहा : बहुश्रुत विद्या सील बल कुल धन सत्य स्वरूप
चित्रभाषबौ सूरता स्वर्गजोनि दस भूप ।।६१।।
पाप भोगवत पाप कर जैसे पापी लोग
पुन्य पुरष त्यौं पुन्य कर करत पुन्य फल भोग ।।६२।।
पाप कियें तें होत है सुद्ध बुद्धि कौ नास
बुद्धि नास तें बहुर नर पापै करत प्रकास ।।६३।।
पुन्य करम आरभन तें होत बुद्धि की वृद्धि
बुद्धि वृद्धि तें बहुर नर लहत बुद्धि की सिद्धि ।।६४।।
कर कर पुन्य पुनीत नर पावत पुन्य स्थान
तातैं सेवत पुन्य कौं जे जग में सग्यान ।।६५।।
सर्प स्वभाव कठोर अरु निन्दक पापी नस्ट
धूत बिरोधी कुमत नर ये पावत अत कस्ट ।।६६।।

१५—यह शब्द यहां भरतो का है, गिनतौ के ८ में यह नहीं है।
१५ अ—क, ख, में यही पाठ है, परन्तु संस्कृत मूल में 'अबहुभाषिता' है, अतः अनुवाद होना चाहिये "सुनबौ बहु नहिं भाषबौ"।
१६—क, ख, दोनों में 'दम' छूटा हुआ है, मूल संस्कृत में यह है "दमः सत्यमार्जवमानृशंस्यं"।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुन मैं दोष न जो धरै निश्चित बुद्धि जु होइ
जो नर सुभ आचरन रत कस्ट न पावत सोइ ।।६७।।
पंडित जापै मत लहै पंडित कहियै सोइ
धर्म अर्थ विधि मैं कुसल सो मुख भोगी होइ ।।६८।।

हरिगीतिका : सो काम कीजै द्यौस जातैं रात कै सुख सोइये
सो आठ मासहि कीजियै चौमास मैं मुद मोइये
जातैं जरा नहिं होइ दुख सो तरुनई मैं कीजियै ।
परलोक जातैं होइ सुख कीजैं सु जब लग जीजियै ।।६९।।

अरिल्ल : अन्न पुरातन[१७] होइ सु नीकौ आहियै
पार होइ संसार सो तपी सराहियै
जोबन पाइ न चंचल होइ सुनागरी[१८]
जीतै जुद्ध सुभट की कीरत आगरी ।।७०।।

दोहा : जे अधर्म कर[१९] दरब सौं छिद्रन ढांकत मूढ
दुराचरन तें होत फिर रहत न क्यौं ही गूढ[२०] ।।७१।।

चौपही : गुरु सब ही[२१] कौ सास्ता कहियै । दुस्टन कौ सास्ता तृप लहियैं
जे नर गुप्त करत हैं पाप । तिनकौ सास्ता है जम आप ।।७२।।

सोरठा : मुन अर सरता मित्र महापुरष कौ जनम कुल[२१अ]
नारिन के दुचरित्र[२२] इनकी ओर[२३] न देखिये ।।७३।।

चौपही : जो छत्री दुज पूजा करै । दाता होय सील पन धरै
सरल सुभाव जात[२४] में होइ । बहुत काल छित पावैं सोइ ।।७४।।

१७—मूल संस्कृत है : "जीर्णमन्नं" । अतः यहां पर 'अन्न भली विधि पचो' पाठ अधिक मूलानुसारी होगा ।

१८—मूल संस्कृत है : "जीर्णमन्नं प्रशंसन्ति भार्या च गतयौवनम्", अतः प्रस्तुत अनुवाद मूलानुसारी नहीं हुआ ।

१९—'कर' की जगह 'के' पाठ अधिक मूलानुसारी होगा, संस्कृत मूल है : "धनेनाधर्मलब्धेन लब्धेन यच्छिद्रमपिधीयते । असंवृतं तद्भवति ततोऽन्यदवदीर्यते ।" ।

२०—यह भी मूलानुसारी नहीं, "करत अन्य हू प्रगट वह छिद्र रहत नहिं गूढ़" अधिक मूलानुसारी होगा ।

२१—क, ख, में यही पाठ, 'सज्जन' अधिक मूलानुसारी होगा ।

२१अ—क, ख, फल' अवश्य ही लिपि प्रमाद से है ।

२२—क, ख, में जु चरित्र सं० मू० ।

२३—अर्थ है आरम्भ, संस्कृत मूल 'प्रभव' ।

२४—क, ख, : 'ख्यात', संस्कृत मूल है : "जातिषु" ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोहा : फूली सुबरन फूल महि है बहु रतन समेत
मंडित मुश्रूषक सुभट ए तीनों चुन लेत ॥७५॥
करम जु कीजत बुद्ध बल तिनकों उत्तिम जान
किये बाहु बल होत जे मध्यम तिनहिं बखान ॥७६॥
अधम अधिक परजतन तें बहै भारु भर होत
तीन भांत महराज यों कहियत करम उदोत ॥७६॥

छप्पै : दुरजोधन अत हठी कुमंत्री सकुन कुवाती
दूसासन निर्दयी करन अत ही उतपाती
दुस्ट चोकरी मिली ताइ कीनो अग्रेसर
तापर चाहत विजय कहा अब कहीं महीधर
सब गुन समेत नृप पंड सुत संत सभा सनमानियै
हिय पिता तुल्य मानत तुमहिं तिनहिं पुत्र सम जानियौ ॥

इति चतुर्थोऽध्यायः[२५]

———

२५—"...उद्योगपर्वणि प्रजागरपर्वणि विदुरहितवाक्ये पञ्चत्रिंशत्तमोऽध्यायः" ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाँचवाँ अध्याय

विदुर : दोहा : सुनौ कथा प्राचीन नृप उर कौ मिटैं विषाद
भयौ अत्रिसुत दत्त सौं साधन[1] सौं संवाद ।।१।:

चौपही : हंस रूप बिचरत तत्वग्य । तेज पुंज गुन मंडित प्रग्य
निरख उग्र व्रत तन अवदात । पूंछत मुनहिं साध सुर वात ।।२।।

साध्य उवाच : साध्य देव गन हम विख्यात । तुमहिं निरख गुन अवदात
कर न सकत उर में अनुमान । सकल वेद बुध निधान ।।३।।

दोहा : यातैं अव हमसौं कछुक हो कृपाल कर वात
गिरा मधुर सुन्दर वचन कान्यजुक्त अवदात ।।४।।

दत्त उवाच : छंद : निहचै करकें इतनौ करियै ।
समता अरु सत्य हियें धरियै ।
धरि धीरज धर्म गहौ जव ही ।
उर संयम ग्रन्थ छुटैं तब ही ।।५।।

दोहा : कहैं जो कोऊ दुरवचन, सहै जु कोऊ धीर
लहै सुकृत वाकौ वहै, वाकौ दहै सरीर ।।६।।

अरिल्ल : रूषी असुभ बात मुख कवहुं न भाषियै
द्रोह मित्र सौं कबहुं न मन में राखियै
पर निन्दा अपमान न कबहूं ठानियैं
अपने उर अभिमान न कबहूं आनियै ।।७।।
कवहुं न भूल नीच की सेवा कीजियै
सुभ आचारहिं कवहूं छांड़ न दीजियैं
मरम अस्थ अरु प्रान घोर बानी दहै
जान यहै घरमग्य नहीं कबहूं कहै ।।८।।

दोहा : जे वेधत पर मरम कौं, कटुक बात कहि छुद्र
महा असुभ निज वदन तें, बांधें फिरत दरिद्र ।।९।।

चौपही : वचन तीर अत तीछन आह । तिनसौं बैंरी बेधत याह
यह जानौ अपने हिय हेत । अपनौ सुकृत मोहि यह देत ।।१०।।
संत असंत तपस्वी चोर । पापी सुकृती सूहृद कठोर
तैंसौ होय बसै जिय संग । जैसें होत वसन[2] मिल रंग ।।११।।

१—सं० मूल साध्यानां, साध्य संज्ञक देवता ।

२—क, ख, वरन । संस्कृत मूल : वासो यथा रंगवशं प्रयाति ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोधक : जो अतवाद कहै न कहाबै । काहू के प्रान हतै न हतावै
घातक ह्व कह घातत नाहीं । ताहि सराहत दैव सदा हीं ।।१२।।

पद्मावती[3] : जब कछुव न कहियै, चुप ह्वै रहियैं, एक बात कहियै जु यही
कछु यचन भाषियै, सत्य राखियै, बात दूसरी यही कही
कछु बात बखानैं, सत्यहु मानैं, प्रिय भाषै तीजी कहियैं
प्रिय सत्य उचारैं, धर्महि धारैं, बात बहै चौथी लहियै ।।१३।।[4]

दोहा : जैसी संगत सेइये, बसिये जैसे बास
तैसो नर चाहै भयौ, तैसौ होइ प्रकास ।।१४।।

तोटक : नर छोड़त है जित ही तितही । यह छूटत है तितही तितही
सब ओर तैं होत निवृत्त जही । दुख रंच कहूं न लहै तब ही ।।१५।।
जब जीतैं न जीतबौ चित्त धरै । प्रतघातक जान न बैंर करै
अबड़ाई बड़ाई समान लखै । तब काहे कौ सोचै औ[5] क्यों हरषै ।।१६।

दोहा : इंद्रिन कौ निग्रह करैं, सत्य कहै मृदु होइ
सुभ सबकौ चाहै सदा, उत्तिम कहियै सोइ ।।१७।।

रोला : अनरथ संका होइ ताह सहसां न बिसारैं
दैन कहै सो देइ सत्र के छिद्र[6] निहारैं
करै प्रीत सौ प्रीत, बैंर बैरी सौ लहियै
इन लच्छन संयुक्त होइ मध्यम सो कहियै ।।१८।।

छप्पै : खोटौ आयुस करैं जाहिं जग दोस लगावैं
जहां जहां वह जाइ तहां धिक्कार कहावै
विध कौ मारौ फिरै चैन नहिं लहै महीतल
दुस्ट सुभाउ न तजै क्रोध कर होय न सींतल
अर काहू कौ नहिं मित्र वह, इन लच्छन कर जानियै
जग काहू कौ मानै न कृत सो नर अधम बखानियै ।।१९।।

दोहा : संकावंत सदां रहै, चहै न पर कल्यान
करैं निरादर मित्र कौ, ताकौ अधम बखान ।।२०।।

३—क, ख, त्तभगी ।

४—मूल संस्कृत : अव्याहृतं व्याहृताच्छ्रेय आहुः । सत्यं वदेद्व्याहृतं तद् द्वितीयम् प्रियं वदे-व्याहृतं तत्तृतीयं धर्म्यं वदेद् व्याहृतं तच्चतुर्थम् ।।

५—क, ख, अरु । ६—क, ख, छलंहं, संस्कृत मूल: रंध्रं परस्य जानाति ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तम ही कौं सेइये मध्यम समैं प्रमान
अधम न कबहूं सेइये, जौ चहिये कल्यान ।।२१।।

धक : जो छल सौं बलसौं उपजावै । बुद्ध पराक्रम सौं धन ल्यावै
सो जग में धनवंत कहावै । पै न महाकुल कौ पद पावै ।।२२।।

धृत राष्ट्र : दोहा : सदों सराहत देवता महाकुलहिं कर प्रीत
पूछत हौं सु कहौ विदुर महाकुलन की रीति ।।२३।।

विदुर : सोरठा : वेद जग्य आचार, तप दम पुन्य विवाह विध
अन्नदान निरधार, महाकुलन के सात गुन ।।२४।।
[7]सुभ आचार न हांन, धरम करै अत मुदित मन
तिनैं महाकुल जान, तजै अनृत कीरत चहै ।।२५।।

दोहा : कबहूं करै न जग्य अरु खोटौ करै विवाह
करै पराभव दुजन कौ, झगरौ करै कुराह ।।२६।।
जो कोउन सौंपै दरब ताहि देत फिर नाह
जद्दिप है कुलबंत बे गनियैं अकुलन माह ।।२७।।
कुल जन पसु बसु अस्ब ऋण संपत बहुत प्रकार
कुल संग्या पावै न नर एक हीन आचार ।।२८।।
पर पूरन आचार कुल जद्दिप धन कछु नाह
कुल गनती में मुख्य ते लहत सुजस जग मांह ।।२९।।
तातैं जे उत्तम पुरष यह चाहत दिन रात
ब्रत जतन सौं राखियौ, संपत आवत जात ।।३०।।
संपत कर जो छीन है छीनन गनियौ ताह
जो हीनौ आचार सौं, मरौ जानियौ वाह ।।३१।।
बहु बैरी झूठौ छली करै मित्र सौं द्रोह
नृप मंत्री पर द्रव्य हर हम कुल कबहुं न होइ ।।३२।।
अतिथि देव अरु पितर तैं पहिलैं भच्छत कोइ
सब भच्छी[8] दुज दोष रत हम कुल कोउ न होइ ।।३३।।
आदरु आसन भूम जल कहिबौ मधुरौ बात
होत संत के सदन तैं ये कबहूं न नसात[9] ।।३४।।
चरित परम धरमग्य जे सुभ आचार प्रचार
करत परम सरधा सहित जिनकौ सब सतकार ।।३५।।

७—ख : असुभ । ८—ख : सर्बभच्छ । ९—क, ख, कबहूं न इनकी हान ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारु निवाहत ज्यौं सकट, त्यौं तर[10] और बहै न
ज्यौं कुलीन बहु भार सहैं[11] त्यौं नर और सहै न ।।३६।।
डरिये जाके कोप तें मित्र न कहिये सोइ
डरपत सेवा कीजिये सोऊ मीत न होइ ।।३७।।

चौपही : पूछै गूढ़ बिपत हठ हरै । आसः स्वास पिता ज्यौं करै
तेई जग में मित्र कहावै । संगत नाम और सब पावै ।।३८।।

दोहा : जासौं कछु संबंध नहिं करै मित्रता आइ
वहै मित्र बह बंध गत[12] वहै सरन[13] ठहराय ।।३९।।
बृद्धन कौं सेवै न जो चल चित कुर्नाहि न सुद्ध
ताकी प्रीत न होइ थिर जाकी चंचल बुद्ध ।।४०।।

चौपही : चंचल चित्त बुद्ध कर हीन । होइ जु इंद्रिन के आधीन
अरथ ताह तज भाजत कैसें । हंस तजत सूखौ सर जेसे ।।४१।।

सोरठा : खीजै बिन अपराध रीझै बिन कारन जु नर
तिनके सील असाध्य, सरध[14] काल के मेघ ज्यौं ।।४२।।

दोहा : जे नर करत न मित्र कौ आदर कृत उण्कार
प्रान अंत हू तिनहि पुन परसत नहिं मंसहार[15] ।।४३।।
येक बेर कछु मांग कै मित्र परखिये मीत
बिन जांचै क्यौं जानियै सज्जन नौत कुनीत ।।४४।।[16]

सोरठा : रूप बुद्ध बल ग्यान, नाम लहत संताप तें
है संताप निदान, महाव्याध अरु अधिक कौ[17] ।।४५।।

दोहा : कबहूं वस्तु अलभ्य कौ सोच न कीजे चित
उपजैं ताप सरीर कौ, हरषै हृदय अमित्र[17अ] ।।४६।।

१०—ख : तरु। ११—क, ख, मिल कुलीन बहु भार धर ।
१२—अर्थ है 'गति', संस्कृत मूल है 'परायणम्' ।
१३—क : मित्र (परन्तु इसमें पुनरुक्ति दोष है) । ख : 'हियै' ।
१४—कहीं कहीं बुंदेली में अल्पप्राण का महाप्राण भी हो गया है । यहां 'शरद' के द का ध हुआ । १५—क. ख. मसिहार । १६—सं० मूल : अर्चयेदेव मित्राणि सतिवा सतिवा धने । नानर्थयन्प्रजानाति मित्राणां सारफल्गुताम् । विभिन्न टीकारों ने इस श्लोक का अर्थ विभिन्न किया है, संभवतः कृष्ण कवि ने जो अर्थ किया है वह मूल की भावना से अधिक संगत है । १७—सं० मूल : सन्तापाद्व्याधिमृच्छति ।
१७अ—ख० हरषात हियँ अमित्र ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कबित : कबहूं घटत अरु कबहूं बड़त नरै[१८]
कबहूं जनम लेत कबहूं मरत है ।
कबहुंके जाचै कबहुंक पावैं जाचै कोउ
कहूं सोचै कहूं सीच पा ही कौ परत है ।।
सुख दुख संपत औ विपत औ हान लाभ[१९]
कहै कवि ब्रह्न यौं ही हूवैबोई[२०] करत है
तातैं महाधीर यह जानकें अनित्य जिय
हरषैं न सोचैं आपदा तैं निरवरत[२१] है ।।४७।।

सोरठा : यह विकात जिय हाथ षट इंद्री बल हीन पै
बुद्धि श्रवत तिहि साथ ज्यौं जल कुंभ मुछिद्रतें[२२] ।।४८।।

धृतराष्ट्र : चौपही : पावक कन कुंती सुत जानहु । हम अनीत ईंधन उर आनहु
अब हुवौ है प्रज्वलित प्रकास । मम पुत्रन कौ करहै नास ।।४९।।

दोहा : मोह न कछु नीकौ लगै चित न लहत कछु चैंन
सुनत मिटैं उदवेग कछु, कहौ महामत बैंन ।५०।।

विदुर : छंद तिलका : बिन पढैं । बिन ग्यान बढै
बिन लोभ तजैं । बिन राम भजैं ।।५१।।
दम हीन हियै । तप हू न कियै
सब कोइ कहै । नहिं सांत कहै ।।५२।।

दोहा : अभय होत है बुद्ध तै तप तै वाढत जोत ।
ग्यान होत गुर-सेव तै, सांत त्याग तैं होत ।।५३।।
दान पुन्य आश्रय तजे चहत वेद फल नाहिं
राग द्वैस छाडैं फिरत मुक्त मुदित मन मांहि ।।५४।।
भली भांत विद्या पढै, भले सुकरमह होत ।
भली भांत तप कौ तपै सुख के होत उदीत ।।५५।।[२३]

दोधक : भेद भिदे जिनके हिय हैं जू । और कछू न सुहात तिन्हैं जू
सुंदर सेजहु नीद न आवे । रूपवती रमनी नहिं भावै ।।५६।।
मागध सूत घने विरदावै । पाठ पुरान सुनै न सुहावै

१८—क, ख. में यह छूटा है । १९—ख० अलाभ लाभ लाभ । २०—ख. होइबौ ही करत है । २१—क. निरखत । २२—क. कमल सुछिद्रत, ख. जैसे छिद्र है कलस में ।
२३—सं० मूल में से 'सुयुद्धस्य' का अनुवाद छूट गया है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घर्म की बात सुनै नहिं कांनै । रंचक हू न हियै सुख मानै ।।५७।।
नीत की बात न सुहाई । पावत है कितहू न बड़ाई
भोजन स्वाद कुस्वाद सौ लागै । भेद भिदै समता नहिं पागै ।।५८।।
लाभहु तै हरषै न हियै जू । सांत न होत कितेक कियै जू
जीव कहूं ठहरत न ठौरै । येक विनास ही कौ मन दौरै ।।५९।।

दोहा : महाराज जिनके हियै भेद भिदौ है आइ
केवल एक विनास बिन तिन्है न और सुहाय ।।६०।।

छंद : गाय कै दूध जितेक कहै कौउ सांच सु मानियैं
विप्र जितौ तप तेज वड़ै सुप्रवान बखानियै
चंचलता तरुनीन मैं होत जिती उर आनियै
जात विरोध तैं जो भय होय सो झूठ न जानियै ।।६१।।

दोहा : प्रसरत बहु एक्व हूवै अल्प सूत के तंत
अैचाखैंच किती सहत त्यौ ही जग में सन्त ।।६२।।
ये दोउन भैया बुरे क्यों हू भरे न जांई
इकठे हौंइ तौ बर बुझे न्यारे परे धुंधांइ ।।६३।।[२४]

सोरठा : होत सूर सामंत, गाय विप्र अरु त्रियन पर
ते नर तुरत परंत, ज्यौ तर बर तैं पक्व पनल ।।६४।।

दोहा : एक व्रच्छ है अत बडो जद्दिप अत बलबंत ।
तदिप पवन परचंड बस तुरत समूल परंत ।।६५।।
अल्प व्रच्छ एक्त्र बहु रहत परसपर संग
पवन वेग परचंड हू तिनहि करत नहिं भंग ।।६६।।

कुंडरिया : भू में मिलै न जात सौं, रहै अकेलौ जाइ
एक रूख कौ बाइ त्यौ बैरी लेत दबाइ ।
बैरी लेत दबाई जदिप वहु गुन नर होई
तदिप वस्ट कछु परै संग लागत नहिं कोई ।
मिलौ जात मैं रहै सहै वैरिन की घूमें
ज्यौं सरवर में कमल बड़त त्यों सरसत भू मैं ।।६७।।

२४—संस्कृत मूल है : धूमायन्ते व्ययेतानि ज्वलन्ति सहितानि च । धृतराष्ट्रोलमुकानीव ज्ञातयो भरचर्षभ । उ०।३६।६०। अत: ऋस्न कवि के अनुवाद में मूल के आशय से भिन्नता है । सम्भवत: अनुवाद कुछ ऐसा होना चाहिये :

अधबर लूघर जात जन, जो इकठे हो जांइ
तौ प्रकास ऊजर करैं, न्यारे परे धुंधांइ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इनकौ घात न कीजियै दीन विप्र अर गाइ
बालक बंधव कामिनी सरन रहै जो आइ
सरन रहै जो आइ सरन जाकी पुन रहियै
राजा गुर अरु जात करैं कछु सोई सहियैं।
सहियै आयुस सीस अन्य खैयैं नित जिनकौ
अपनी पार बसात भलौ करियै कछु इनकौ ।।६८।।

दोहा : यातें अधिक न और गुन मानस में महाराज
मिल रहियौ निज जात मैं, नित लहियौ सुख साज ।।६९।।
रोग होत चिंता कियै जानत सकल सुजान
सदा निरोगी तुम रहौ, रोगी मृतक समान ।।७०।।

छप्पै : जिनके उर कछु रोग तिन्हैं फल रुचै न गादर
जिनके उर कछु रोग तत्व कौ करें न आदर
जिनके उर कछु रोग भोग तिनकौ नहिं धन कौ
सदा रहै अति दीन दुखित रोगी नित मन कौ
सब रोग मिटै उर कौ तुरत, हियै विषमता छांड़ियै
नृप पंड पुत्र निज सुतन मैं हियैं बिषमता छांड़ियै[२५] ।।७१।।

दोहा : कटुक उस्न तीछन परुष और दुखावत सीस
अैसैं क्रोधहिं पान कर सीतल होउ महीस ।।७२।।
या जग में या रोग की येकै वीषद आह
संत पिवत या क्रोध कौं पियत असंत न याह ।।७३।।

कुंडरिया : तब ही मैं तुम सौ कही तुम न सुनी चित आन
जीत लई जब द्रोपती जुवा कपट कौ ठान
जुवा कपट कौ ठान मान तब ही किन लीनी
बरजै काहि न पूत घूत जिन इतनी कीनी
कीनी बहुत अनीत जदिप समुझायौ सब ही
अव काहे पछतात तात समुझे नहिं तव हीं ।।७।।

दोहा : धरम अलप हू सेइये सूछम गत उर आन
निरवल पै बल साजियै सो बल अलप बखान ।।७५।।
कुर करम तैं होत धन सकुल विनासै हाल
सुधरम सौं धन जोरियैं, सो निबहै बहु काल ।।७६।।

२५—यह पुनरुक्ति प्रतिलिपिकारों के प्रमाद से हुई प्रतीत होती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छप्पै : कौरब पंडव मिलहिं अधिक हित के मत चालहिं
वे पालहिं तुम सुतन उनहिं तुव सुत प्रतपालहिं
इनके उनके सत्र मित्र यैकैं कर जानहु
सुख संपति अत लहौ मोद महि मैं बहु मानहु
महाराज करहु मन सुद्ध कर जै-जस जगत बखानियत
नृप आजमीढ कुरवंस में आज मैंड तुम मानियत ।७७।।
कुरकुल तुव आधीन पंडसुत अग्याकारी
बन बस सहे कलेस करौ तिनकी रखवारी
संधि करौ महराज जगत में निज जस मंडहु
अन्तर चाहत सत्र मनोरथ तिनके खंडहु
निज वचनबद्ध वे सत्त बस दुरजोधन समझाइये
मिल हौहि येक हरषैं सजन, दुहू लोक सुख पाइये ।।७८।।

पंचम अध्याय समाप्त हुआ ।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छठा अध्याय

विदुर : दोहा : स्वयंभूय मन कौ वचन सुन प्रभु गुन अवदात
ये सत्रह आकास कौ करत मुस्ट सों घात ।।१।।
हाथन सों खेंचन चहत पकर पुरन्दर चाप
रव कर दावत चरन तर मृत[1] न जानत आप ।।२।।

रोला : तोर्षति मूरख नरहिं असिष्यहिं देत सु सिच्छा
करत सत्र कौ सेव कृपन सौं मागत भिच्छा
पुरष पुंज में तियहि राख मन में मुद मानत
भयौ बिगारत काज बड़ाई अपनी ठानत ।।३।।
जे जन सरधाहीन तिनहिं कछु धरम सुनावत
करत बली सौं बैर आप बलहीन कहावत
तिय-समूह में बसत हियै भय रंच न आनत
जग में चाहत मान इनहिं मुन अग्य बखानत ।।४।।
अनजांचवै जो होइ ताहि जांचत नहिं लाजत
पुत्रवधू सौं हंसन वाद जुवतिन सौं साजत
अनकरनौ कृत करत बीज पर खेतहिं डारत
भयौ कहूं कुछ लाभ ताहि कबहूं न सम्हारत ।।५।।
मुख तें भाषत दैन सौर कर जगत सुनावत
जांनत परम असंत जाइ ताकौं सिर नावत
ये सत्रह महराज पुरष दुहु लोक भयंकर
पांस बांस लै जात नरक इनकों जमकिंकर ।।६।।

सोरठा : जो बरतै जिहि रीति, तासौं त्यौं ही बरतिये
सुद्ध सुजन सौं प्रीत, कपटी सौं कीजे कपट ।।७।।

धृतराष्ट्र : सुनियत वेदन मांह, आयु पुरष की सौ बरस
पूरन भुगतत नांह, कहौ विदुर कारन कवन ।।८।।

विदुर : चौपही : त्याग न करहि करत अत मांनहिं ।
अत संसय अत कोपहिं ठानत ।
मित्रद्रोह अतवाद बखानहु ।
ये षट आयु विनासक जांनहु ।।९।।

१—संभवतः 'मर्त्य' का विकृत रूप ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोहा : येई छह या पुरष कौ हरत आयु कौ कोस
नाहक या संसार में भीचहिं लावत दोस ।।१०।।

सवैया [कवित] घात करै सरनागत कौ दुज व्रत्य हरै-करै वारनी पानैं
नीच कौ आयुस सीस धरै, गुर सेज रमै, रत दासी सौं मानैं
बिप्रह संकट में पठवै विसवासै हनै छल मीत सौं ठाँनै
पातक सौं मन मैं न डरै इतने दुज-घातक वेद बखाने ।।११।।

दोहा : ये दुजघातक तुल्य नर वेद पुकारत नित
इन सौं संगत होइ जौ तौ कीजै प्राश्चित ।।१२।।

मल्लिका : नीत रीत में सुजान । अस्तबुद्ध देत दान
सत्य संग है प्रवीन । जे रहै सदा अदीन ।।१३।।
अर्थ जे करै अनेक । जे हियै धरै विवेक
जे सुसील हैं कृतग्य । जे मृदुल सुभाव प्रग्य ।।१४।।
मान लेत चार बात । जग्य-सेस अन्न खात
जे करै न जीव घात । ते सदेह स्वर्ग जात ।।१५।।

दोहा : सुलभ पुरष संसार मैं कहै सुहाती बात
दुर्लभ अप्रिय पथ्य बत बकता श्रोता तात ।।१६।।

सोरठा : परम धरम मैं पाग, पथ्य कहै अप्रिय बचन
प्रभु प्रिय अप्रिय त्याग, नृप कौ बड़ौ सहाउ ते ।।१७।।

छंद अरिल्ल : येक परुस तजियै कुल अर्थ । ग्राम हेत कुल तजत समर्थ
ग्राम नगर कौं जे तज देत । पिरथी तजत आतमा हेत ।।१८।।
धन राखियै आपदा काज । धन सौं रवन राखियै राज
दै धन अरु दारा अबदात । आतम राख लौजियै तात ।।१९।।

सोरठा : सुनी पुरातन बात, जुवा कलह कौ मूल यह
हाँसी हू मैंतात, तातै जुवा न खेलिये ।।२०।।

सुन्दरी : खेल जुवा गहि वेस सभा मैं द्रोपती आनी
मैं तुम सौ कर जोर कही बिनती सु न मानी
दीरघ रोग तै ज्यौं सद वोषद नीकी न जानी
त्यौं महराज तुम्हैं न रुची हित की वह बानी ।।२१।।
कागन हाथ कै मोरन कौ जिय चाहत जीतौ
सिंधन कौं तज स्यारन राखत कै अत प्रीतौ
पांइ समौ अपनौ उर सोच घनौ भर हौ जू
होतव होइ सो होइ रहौ सो कहा करहौ जू ।।२२।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोरठा : क्रोध भाव उर आन, सेवक सौं कछु ना झुकै
ताह पिता सम जान, भृत्य न तजै विपत्त हूं ।।२३।।

दोहा : लै सेवक की जीविका औरह देत बड़ाइ[2]
सो सेवक सेवै तऊ विपत परै तज जाइ ।।२४।।

दोधक : होइ कियैं जु सु काज विचारै । लागत लाभ तऊ उर धारै
जो इहि लोक बिजै अभिलाषै । जीवका देख सहायक राखै ।।२५।।

कुडरिया : जानैं अपने स्वाम की उर अंतर की बात ।
समौ निरख कारज करै आलस कौ तज जात ।।
आलस कौं तज जात वात हित की ही भाषै ।
कुल कौ उत्तम होइ पग्यौ हित सें मन राखें ।।
राखें अपनी सक्ति बुद्धि बल अरिहि निधानै ।
अैसौ सेवक ताहि भूप्र प्रानन सम जानै ।।२६।।
मानै अपनी बुद्ध कौ मन में महां गुमान
ज्वाप देइ जो तुरत ही आपस सुनै न कान
आयस सुनै न कान रहै सब ही सौं अकरौ
कुल कौ होइ निकस्ट सदा उर संसय पकरौ
वचन कहै प्रतकूल हियै डर नाहिन आनै
सेवक दीजें तुरत त्याग जो कहौ न मानै ।।२७।।

चौपही : सरल सुभाव सचक्कन होई । ता कंह वस कर सकै न कोई
कायरपन जिय मैं नहिं धरै । प्रत संदेस कहत नहिं डरैं
दयावंत अरु वचन उदार । आलस रोग रहित अविकार
कबहूं गहै न दीरघ सूत । इतने गुन गानै सो दूत ।।३८।।

अरिल्ल : कर प्रतीत अर के घर कबहु न जाइये
बिना समै चढ़ बाहन कबहु न धाइयै
तरुनी कौ बिस्वास न उर मैं राखियै
रावर की तिय कबहु न जिय अभिल षियै ।।२९।।

सोरठा : कछु सकोच उर आन, जो नर काहू तै डरैं
सो नर कबहूं आन, रात न बैठे चौहटे ।।३०।।

दोहा : गूढ मंत्र कोऊ करै, तहां न जैये जान
कबहु न कहिये मूढ सौं गूढ मंत्र हित मान ।।३१।।

२—क : वराइ ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोरठा : जाचैं कोऊ आन, सहसां नाहिं न कीजियैं
कछु मिस कारन पाइ, नाहौं कीजै जतन सौं ।।३२।।

कुडरिया : इनसौं भूल न कीजियै सपने हू व्यौहार
देखत लगै घिनाउनौ घूत विदित संसार
धूत विदित संसार नार विभचारिक जाके
तरुनी विधवा होइ पूत बालक हुइ जाकै
राजा भ्राता पूत प्रीत भूपति की जिनसों
सदा कटक मैं रहै डरत रहियै नित इनसौं ।।३३।।[३]

दोहा : रूप तेज बल वर्न स्वर श्री सुचि ससि[४] उद्योत
तियस राह[५] सुकमारता स्नान किये दस होत ।।३४।।

सोरठा : संतति[६] अमल उदीत, बल अरोगता आयु सुख
लघु अहार[७] तैं होत, बहुभच्छी कोउ न कहै ।।३५।।

कुडरिया : दीजै कबहुं न जीय कौ इनकौं भेद बताइ
छली निरदई सठ निठुर बहुत अन्न जो खाइ ।।
बहुत अन्न जो खाइ सदा अकरम नहिं छंडै
देस काल नहिं लखैं भेष असुहावन मंडै
करै जु अनुचित कर्म जाहि निरखत तन छीजै
अैसे कौं वसुवास भवन मैं कबहुं न दीजै ।।३६।।

ख० : मानै जो अनमान्य कहूँ करै जु सबकौ धैर
जाकी जग निंदा करै कबहूं तजै न बैर
कबहूं तजै न बैर कृत्य कबहुं न उर आनै
कदरज सुनै न धरम सदा पर निंदा ठांनैं
बनवासी अर निठुर धूत मीतहि अर जानै
इनहिं न जाचैं जांन कहौ जौ मेरौ मानै ।।३७।।

३—इसके वाद निम्नलिखित दो श्लोकों का अनुवाद विदुर प्रजागर में नहीं है ।
अष्टौ गुणाः पुरुषं दीपयन्ति प्रज्ञा च कौल्यं च श्रुतं दमश्च
पराक्रमश्चाबहुभाषिता च दानं यथाशक्ति कृतज्ञता च ।।उ०२७।३१
एतान् गुणांस्तात महानुभावानेको गुणः संश्रयते प्रसह्य
राजा यदा सत्कुरुते मनुष्यं सर्वान् गुणानेष गुणो विभर्ति ।।उ०।३७।३२
४—ख : सर्वं । ५—तिसराह, ख : त्रियास राह । ६—क : ख : संचत सं० मूल
"अनाविलं चास्यभवत्यपत्यं" । ७—क : आहार ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रोला : मलिन करम नित करै सदाँ झनरौ ई ठांनैं
बहुत जो बोलै झूठ भक्ति कबहुं न उर आनै
करै नीच सौ नेह चतुर आपहिं अत मानै
इनकी तजियै सीव इते नर अधम बखानै ।।३८।।

दोहा : होत सहाइ न अर्थ बिन, बिन सहाय नहिं अर्थ
ये दोउ बंधन परसपर भाषत बुद्ध समर्थ ।।३९।।
प्रथम करै पुत्रन अरिन देइ सुव्रत बताइ
सुता सुथान विवाह कर आप बसै वन जाइ ।।४०।।
जो सवकौं नीकौ लगै, जातैं जिय सुख होइ
अरथ धरम कौ मूल प्रभ, कारज करिये सोइ ।।४१।।
उद्दिम बुद्ध प्रभाउ बल तेज सत्य विवसाइ
ये गुन जहां अव्यत भये तहां न व्यापत आइ[८] ।।४२।।

कुंडरिया : पंडसुतन सौं बैर कर सुरपति कंपत चित
देखहु दोष प्रतच्छ बहु हरषत होत अमित
हरषत होत अमित जगत में सुजस नसावत
वसत सदा उदविग्न चैन तुव पुत्र न पावत
तातैं विनती मान जांन अपनौ हित मन सौं
संध करौ महराज कृपा कर पंडसुतन सौं ।।४३।।

तोमर : रिस होत भीषम द्रौन । तब धीर धरहै कौन
जब होत है तुम कोप । तव होत लोक विलोप ।।४४।।
रिसयौ जुधिष्ठर भूप । जन घोर अंतक रूप
इम लोक मैं अकुलात । जिम होत है ग्रहपात ।।४५।।

छप्पै : वन विनसै बिन बाघ बाघ बिनसै बिन कानन
बन राखै मृगराज बनहिं राखै पंचानन
वन समान तुव पुत्र सिंघ जानहु कुंती सुत
जिन प्रभु करहु विनास आप कर विन सिंघनजुत
अब करग सहित तुव पुत्र सत, पंच पंडनंदन प्रबल
मिल उदध अंत पालहु अवन लहौ मोद मंगल सकल । ४६।।

दोहा : त्यौं सुभ गुन लख और के दुष्ट न करत सराह
औगुन निरखत जगत के ज्यौं पापी कर चाह ।।४७।।

८—यह अनुवाद स्पष्ट नहीं है । मूल संस्कृत में है : तस्यावृत्ति-भय कुत:"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थ सिद्ध चाहै जु नर सेवहिं धर्म समर्थ
त्यौं अम्रत सुर लोक बिन त्यौं न धरम बिन अर्थ ।।४८।।
जाकी मत कल्यांन हित पापन देइ बहाइ
तिन कारन कारज सबै जानौ भलौ वनाइ ।।४९।।

सोरठा : धरम अरथ अरु काम, भलीभांति सेवत जु नर
ये तीनौ अभिराम, दुहू लोक तिनकौं मिलत ।।५०।।

दोहा : क्रोध हरष के वेग कौ जे थामत निज चित
मोह न लहै विपत्त मैं तहां बसत श्री नित ।।५१।।

रोला : प्रथम बाहु बल कहौ दुती मंत्री बल जांनौ
तीजौ धन बल बड़ौ वंस चौथौ बल मानौ
सकल वलन कौ सार पांचयौ कहौ बुद्धबल
जिहि बल तुम आधीन रहत ये सकल भूप भल ।।५२।।

चौपही : जो कर सकैं ब्रड़ौ उपकार । जाके कोपै वढै विकार
तासौं बैर होय जौ भूर । यह न भूलियै है वह दूर ।।५३।।

दोहा : राजा तरुनी अग्न गुर सरप सत्र सुख भोग
आयध कौ विस्वास जिय करत न पंडित लोग ।।५४।।
बुद्ध बान सौ जो हनौ कौन बचावत ताह
मंत्र जंत्र वौषद जतन कछू न लागत ताह ।।५५।।
बढै वंस जनमौ जु नर पावक बिप्र[९] भुजंग
ये न कबहूं अपमानियैं अमित तेज इन संग ।।५६।।

दोधक : काठ में पावक गूढ रहै जू । ताकौ प्रभाउ न कोउ लहै जू
जौ लग और जगावै न कौऊ । तौ लग काठै दहै नहि वौ ऊ ।।५७।।
ताकहं जौ मथ कोउ निकारै । काठ समेत सबै बन जारै
काठ मैं पावक ज्यौं उर आनौ । त्यौं प्रभु पंड के पुत्रन जानौ ।।५८।।[१०]

दोहा : सुतन सहित प्रभु तुम लता पंडपुत्र द्रुम रूप
बिना व्रच्छ के आसरै लता न बाड़त भूप ।।५९।।[११]

छठा अध्याय समाप्त हुआ

९—संस्कृत मूल में 'विप्र' की जगह 'सिंह' है।

१०—इसके बाद सं० मूल में "एवमेव कुले जाताः पावकोपमतेजसः। क्षमावतो निराकाराः काष्ठेऽग्निरिव शेरते" (उ०।३७।६२) है। इसका अनुवाद कृष्णकवि ने संभवतः इसलिये नहीं किया कि इसका भाव इसके पहले छंद में आ गया है।

११—इसके बाद ।वनं राजंस्तव पुत्रोऽम्बिकेय सिंहान्वने पांडवांस्तात विद्धि। सिंहैर्विहीनं हि वनं विनश्येत् सिंहा विनश्येयुर्हि ऋते वनेन।' (उ०।३७।६४) का भी अनुवाद संभवतः इसलिए छोड़ दिया गया है कि इसी भाव का छंद [illegible] ४८ पहले आ चुका है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सातवाँ अध्याय

विदुर : चौपही : आवत वृद्ध तरुन के भौन । प्रान करत ऊरध कौ गौन
लेत प्रनत कर आगै धाइ । बहुरौ प्रान बसत घट आइ ।।१।।
अभ्यागत कौ आसन दीजै । बहुर पाद प्रच्छालन कीजै
कुसल प्रस्न कर कहियै बात । पुन दीजै कछु भोजन तात ।।२

दोहा : जाकौ आसन अन्न जल अभ्यागत नहिं लेत
ताकौ जीवन जगत मैं अत अनर्थ कौ हेत ।।३।।

चौपही : बैद बालघाती अरु चोर । ब्रह्मचर्ज तैं उग्यौं कठोर
सथिया कूर सुरा जो पीवैं । सिकरा बाज राख जो जीवैं ।।४।।
वेद मंत्र कौ विक्रय करै । पाप करत जिय मैं नहिं डरै
इनमें अत प्यारौऊ होइ । आदर जोग अतिथ नहिं सोइ ।।५।।

सोरठा : पक्व अन्न अरु मास, लौन लेत दध दूध घृत
रातौ वस्त्र सुवास, साक सहित फल मूल तिल । ६।।

दोहा : विक्रय बहुत न कीजिये इन वस्तन कौ तात
जे इनकौ विक्रय करत महानर्क ते जात ।।७।।
स्तुत निंदा मट्टी कतक प्रिय अप्रिय सम जास
सोक संध विग्रह विगत मुन रिस हीन उदास ।।८।।
साक मूल त्रन धान्य फल भखि जो करै वनवास
इंद्रिन कौ संजम करैं जग सौं रहै उदास ।।९।।
सावधान सेवै अतिथ अग्निहोत्र रत होइ
पुन्न धुरंधर सुद्ध मन तपसी कहिये सोइ ।।१०।।

दोहा : दूर जान नहिं भूलियै बुधवंतह कौं पाइ
दीरघ बुद्ध भुजान बल जब कब हनहैं आइ ।।११।।
जासौं मन प्त्याइ नहिं ताकौ कर विस्वास
होत जु भय विस्वास तैं करत समूल विनास ।।१२।।[1]
तजै ईर्षा प्रिय कहै राखै रवनि अलच्छ
बांट खाइ बोलै मधुर होइ सरस उर स्वच्छ ।।१३।।

१—संस्कृत मूल "न विश्वसेद बिश्वस्तेनातिविश्वसेत् ।
बिश्वासाद्भयमुत्पन्नं मूलान्यपि निकृन्तति ।।"
अनुवाद में 'विश्वस्ते नाति विश्वसेत्' का भाव नहीं आया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होइ न कबहूं जुवति बस कहै हित सनी वात
पूजनीय ऐसौ पुरस जग में दुरलभ तात ।।१४।।

ख० कुंडरिया : ग्रह दीपत प्रत्यक्ष श्री सुखद पुन्य अभिराम
जान भाग्य निध जतन सौ गुप्त राखियै बाम
गुप्त राखियै बाम धाम धन बापहिं दीजैं
बिजन रचै बनाइ मात[2] कर भोजन कीजै
प्रत्य करैं व्यौपार रीति यौं कही महीपत[3]
सुत दुज सेवहिं सदा बाम[4] लखियं ग्रह दीपत[5] ।।१५।।

दोहा : आप तुल्य जिय जानियै ताह सौंपिये गाइ
खेती तब ही होइ जब आप देखियैं जाइ ।।१६।।

पद्धरी[6] (?) पावक जल तें लोह उपल तै दुज ते छत्री उपजे तात
इनकौ तेज दुसह सबही कौ होत जहां तें तही समात ।।१७।।

सोरठा : उपजत सत कुल आइ, छमावंत अत संत नर
आपैं रहत छिपाइ, जैसे पावक काठ मह ।।१८।।

चौपही : अंतरंग ऊपर के लोइ । जाकौ मंत्र न जानैं कोइ
जाकी द्रष्ट चहूं दिस होइ । थिर अैस्वर्य लहै नृप सोइ ।।१९।।

सोरठा : कियौ जु चहियैं राज, मुख तें कबहुं न भाषियैं
धर्म अर्थ कौ काज, प्रकठ भयौ ही देखियै ।।२०।।

चौपही : मंत्रभेद कबहूं नहिं दीजै । अनयेकंत ठौर लख कीजै
निरजन वन गिर सिखर कि होइ । मंदिर जहां निकट नहिं होइ ।।२१

दोहा : मूरख मीत अमीत अरु पंडित चंचल चित्त
इनसौं कवहुं न भाषियै[7] भेद मंत्र कौ मित्त ।।२२।।
मंत्री कबहुं न कीजियै बिन परखैं नर नाह
मंत्र गुप्त विध[8] स्वाम हित और अरथ की चाह ।।२३।।

२—ख : प्रति में यह कुंडरिया छूटी हुई है । क : प्रति में यह शब्द छूटा हुआ है, सं० मूल देखकर यह सुनियोजित किया गया है । ३—क : प्रति में 'महीप' है, परन्तु छंदशुद्धि को दृष्टि से 'महीपत' होना चाहिये । ४—ये शब्द भी क प्रति में छूटे हुए हैं, सं० मूल को देखकर नियोजित किये गये हैं । ५—क : 'दीप' । ६—यह छंद ३१ मात्राओं और गुरुलघु वाला 'वीर' है । ७—ख : कीजियै ।

८—इस पाठ से अभिप्राय स्पष्ट नहीं होता । संस्कृत मूल है "अमात्ये अर्थलिप्सा च मंत्ररक्षणमेव च ।" अतः "मंत्रगुप्त राखत वहै और अरथ की चाह" यह अनुवाद मूल के अधिक निकट होगा ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जा महीप के पारषद लहैं भयौ ई काज
धरम अरथ अरु काम विध निपुन सो नृप सिरताज ।।२४।।
चौपही : गूढ मंत्र जाकौ नित रहै । सो नृप सिद्ध सर्वथां लहै
अप्रसस्त जे कहिये कर्म । जिनके कीनैं होइ अधर्म ।।२५।।
तिनकौ करैं मोह[९] उर आन । लहै सु जीवन हू की हांन
उचित कर्म कीनैं सुख होइ । अनकीनै पछितैहै सोइ ।।२६।।
दोहा : मंत्र न ताहि सुनाइयै होइ जो षट गुन हीन
वेद पड़े बिन विप्र ज्यौं नहिं सराध मैं लीन ।।२७।।
षटगुन यथा : द्वंद भाउ आश्रय कलह, आसन संध प्रयान
राजनीत मत ये कहे षटगुन जानहुं जान ।।२८।।
स्थान व्रद्ध छप गुनन जुत जो जानें नरनाथ
क्रोध हर्ष होइ न बिफल कोस होइ जिहि हाथ ।।२९।।
जाके सींल सुभाव कौ भेद न पावै कोइ
कियौ धहै सोई करैं ताके बस महि होइ ।।३०।।
(भुजंगप्रयात) सुनै नाम ही के हियैं मोद मानै । लखै छत्र संतोष भूपाल आनैं
धनै बांट जो भृत्य कौ बडावै । अकेलौ न सर्बस्वहारी कहावै ।।३१
दोहा : विप्र ह जानै विप्र गत पत जानें तिय रूप[१०]
मंत्री गुन जानें नृपत भूपहिं जानैं भूप ।।३२।।
कुंडरिया : आवै अर जो दाउ में निहचै हनियैं ताह
दया न उर मैं कीजियै फिर बहु बल बड़ जाइ ।।
फिर बहु बल बड़ जाइ कहौ ऐंसो क्यौं कीजै
करै नम्र हू सेव ताह कबहूं न पतीजै
जौ कैहूँ छुट जाइ वेग ही भय उपजावै
कबहुं न दीजैं छांड दाउ मैं वैरी आवैं ।।३३।।
दोहा : देव विप्र राजा रवन[११] रोगी बूढे बाल[१२]
निग्रह कीजै क्रोध कौ इनसौं सदा नृपाल ।।३४।।
जे न करत कबहूं क़लह अल्प प्रयोजन अर्थ
तिनकी कीरत जग बढत रंच न लहत अनर्थ ।।३५।।

९—क : ख : मोद ।
१०—इसका परिष्कृत रूप होगा : विप्र हि जानै विप्रगति, पति जानै तियरूप ।"
११—ख : रमन (रमणी) । १२—सं० मूल में 'बालातुरेषु' है, अनुवाद में बाला (रमणी) और बाल (बालक) दोनों ले लिये गये हैं ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोरठा : सदा विफल ह्वै जाइ जाकौ कोप प्रसन्नता
भ्रत्य न चाहत ताहु ज्यौं खोजा पत कौ तिया ।।३६।।

दोहा : बुद्धवान होइ न धनी[13] मूरख अधन न होइ
जानत लोकाचार[14] बुध मूढ न जांनत कोइ ।।३७।।
बुद्ध-ब्रद्ध वयवृद्ध अरु विद्याव्रद्ध सुजान
दरवव्रद्ध इनकौ करत मूढन लौं अपमान ।।३८।।
वचनदुष्ट कुचलन चलै अधरम रत नर कोइ
मूढ कृतघ्नौ कोप कर लहै अनर्थहु सोइ ।।३९।।
समै न चूकै नै चलै दान जथाविध देइ
भली बात मुख तें कहै सब्रहि सुबस कर लेइ ।।४०।।
नम्र चतुर मतवांन नर सरल कृतग्य जु होइ
लहै बड़ाई जगत मैं जद्दिप निरधन सोइ ।।४१।।
दम सम करुना म्रदु वचन धत पवित्रता तात
द्रोह न करबौ मित्र सौं लच्छ[15] बड़ावत सात ।।४२।।

सोरठा : बांट न खाइ कठोर, लज्जा हीन कृतघ्न नर ।
दुष्ट आतमा चोर, इनकौ संग न कीजियै ।।४३।।
कोपावत बिन काज, आप सदोष अदोष कह
सुख सोवत नहिं रात[16], ज्यौ भुजंग निरखै भवन ।।४४।।

मल्लिका : जाहि कोप होत जान । होइ जोगछेम हांन
देवता समान चाहि । राखियै ग्रसन्न ताहि ।।४५।।

दोहा : पापी के उनमत्त के, अर मूरख के पान
कारज तिय आधीन जे, ते सब संसय मांन ।।४६।।

सोरठा : वालराज तियराज, जहँ छल होत जुवा अधिक
तहँ सब सहित समाज, वूडत ज्यों पाहन सलिल ।।४७।।

दोहा : अटकत जे न विसेष सौं लेत प्रयोजन ताहि
पंडित ते ई जानियैं और प्रसंगी आहि ।।४८।।

दोधक : जाह सराहत है निज ज्वारी[17] । जाह सराहत चंधल नारी
जाह सराहत भाट व्रथा ही । जानहु सो नर जीवत नांही ।।ड़२।।

१३—ख : धनक । १४—संस्कृत मूल में है : "लोकपर्यायवृत्तान्तं" इसका अर्थ टीकाकारों ने अनेकधा किया है । १५—अर्थ है 'लक्ष्मी' ।
१६—क : ख : राज० सं० मू० में 'रात्रौ' । १७—सं० मू० में 'कितव:' ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोहा : छांड धनुर्धर[१८] पंडसुत जिनमैं तेज अपार
तुम सौंपौं अैस्वर्ज कौ दुरजोधन सिर भार ।।५०।।
भ्रष्ट देखहौ वेग ही निज संपत अवनीस[१९]
भ्रष्ट भयौ अैस्वर्य पद ज्यौं बल दानव ईस ।।५१।।

सातवां अध्याय समाप्त हूआ ।

———

१८—क : ख : धनंधर । सं० मू० 'परमेष्वासान्' ।

१९—सं० मूल में "तं द्रक्ष्यसि परिभृटं तस्मात्वमचिरादिव ।" उ० ३८।४७ । कृष्ण कवि ने 'तं' को संभवत: 'तत्' पढ़कर उसे पहले के श्लोक के 'ऐश्वर्य' का स्थानापन्न माना है, अन्य टीकाकारों ने उसे 'तं' ही पढ़कर उसे दुर्योधन के लिये प्रयुक्त सर्वनाम माना है । 'बलि इव' की उपमा तभी सिद्ध होती है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आठवाँ अध्याय

धृतराष्ट्र : दोहा : कारन संपत विपत के करम न नर के हाथ
जैसे मूरत काठ की लहै चाल[1] कर साथ ॥१॥
विधि कौ पेरौ पुरस यह अवस करत सब बात
सुनवे कौ अभिलाष है और कहौ कछु बात ॥२॥

विदुर : वचन ब्रहस्पत हू कहै बिना समै नरनाह
लहै अवग्या बुद्ध की कोउ न सकै सराह ॥३॥

सोरठा : मीत होत वहु आइ, धनदै मीठी बात कहि
जे हित मंत्र उपाइ, मिलैं मीत ते ई सही ॥४॥

दोहा : साध सुबुध पंडित चतुर है वहुगुन अवदात
जासौं रंचक दोष उर ताकौ कछू न सुहात ॥५॥

सोरठा : जासौं हिये विकार, भले करम ताके बुरे
जासौं है उर प्यार, बुरे करम ताके भले ॥६॥

कुंडरिया : बिनती प्रभु तुम सौं करी मैं तव ही पग लाग
दुरजोधन जा दिन भयौ याह देउ तुम त्याग ॥
याह देउ तुम त्याग पुत्र सत सुख सौं राखहु
सत सुत हूहै नास याह रच्छन अभलाषहु
अलप लाभ बहु नास, लाभ कौ ना बहु गिनती
व्रद्ध होत छय रूप, कहूं सुनियै प्रभु बिनती ॥७॥[2]

सोरठा : धन कर किते सम्रद्ध, गुन कर किते न समर्थ नर
गुन विहीन धनवृद्ध, तजियै नीत प्रसिद्ध यह ॥८॥

धृतराष्ट्र : जानत हौं जिय तात, जहाँ धरम जय है तहां
सुत हित अस अकुलात, कहौ कहा कीजै विदुर ॥९॥

दोहा : कहत जुक्त संमत बचन हौनहार सब बात
दुरजोधन कौ छांडबौ, सह न सकत दुख गात ॥१०॥

विदुर : नीत निपुन अत नम्र नर वहु गुन सहित क्रपाल
सूछम हू पर दुख निरख सहि न सकत तिहि काल ॥११॥

भुजंगप्रयात : पराई बुराई सद जे बखानै ।
पराई बुराई भयै मोद मानै

१—क. लैह चल ख—हहै चहो है। २—संस्कृत मूल में है :
न सक्षयो महाराज यः क्षयो वृद्धिमावहेत, क्षयःसत्विह मन्तव्यो यंलब्ध्वा बहु नाशयेत
॥उ०॥ ३९।७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जहां प्रीत की रीत कौं देख पावै ।
करै जाल ऐसौ विरोधै बढ़ावै ।।१२।।
महादोष भारी लथै जाहि देखै ।
बसै संग जाके बड़े भै अलेषै
दियै दर्ब जाकौं महा पाप लागै ।
लियै दर्व जाकौ हियै दोस पागै ।।१३।।
तजै लाज कामी छली झूट भाषै ।
सदां चित्त मैं भेद की बात राखै
सबै जाह विख्यात पापी बखानै ।
तजै संग अैसैन कौ जे सयानै ।।१४।

दोहा : महा दोष औरौं कहे पग्यो जु तिनके रंग
अैसे पापी पुरस कौ पंडित तजत प्रसंग ।।१५।।

दोधक : नीच की प्रीत की रीत यही है । जौ लौं प्रयोजन तौ लौं सही है
कारज सिद्ध भयी जब जांनै । रंचक हू उर प्रीत न मानै ।।१६।।
जौ लगि नीच कछू फल पावै । तौ लगि नेह नयौ उपजावै
जा दिन हात कछू नहिं आवैं । भाष कुबात कलंक लगावैं ।।१७।।
सोइ उपाय हियै अवधारै । जातैं बुरौ कछु होत निहारै
रंचक दोस कहूं लख पावै । मेर समान मही में गिनावै ।।१८।।

सोरठा : चंचल चित्त निहार, अैसे निरदय नीच कौ
बुद्ध विलोक विचार, पंडित दूरहि तै तजत ।।१९।

छंद बीर[3] : जे नर करत जात[4] कौ संग्रह आग्त दीन दरिद्री जान
तिनकैं पुत्र कलत्र मित्र पसु संपत होत बहुत सुखदांन ।।
जो कल्यान आप चित चाहै करै जात जन कौ सतकार
निरगुन हू जो होय जात जन ताकौं राखै भलै प्रकार ।।२०।।
कबहु न करै जात मैं बिग्रह जो सुभ चहै आपनौ ईस
भोजन कियै जात मैं मिलकै अधिक प्रीत बाड़त अवनीस
भली बात पूछै अरु भाषै जात मिलै आनन्द उदीत
तारत जात जात ही बोरत करै जात मिल सोई होत ।।२१।।
संपत पाइ न नवै जात कौ जो दुख जात कौ जान
खोज लेत ज्यौं मृगह अहेरौ ताह पाप पकरत त्यों आन

३—क. ख में 'पदमावती' जो भूल है
४—क. ख में भौ 'ग्यात' (सं० ज्ञाति)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बूडै जो छल करैं जात सौ तरै जु होत जात अनुकूल
तातै सरल जात मैं रहियै जात विरोध नास कौ मूल ।।२२।।

सोरठा : जदिप होइ असंत, रच्छा कीजै जात की
पंडपुत्र गुनवंत, नित चित चाहत तुव क्रग ।।२३।।

दोहा : हवै प्रसन्न निरवाह कौं तिन्हैं गांउ कछू देउ
कुसल होइ कुरवंस में लोक लोक जस लेहु ।।२४।।

सोरठा : आपु बड़ाई जांन, रछ्या कीजै सुतन की
विनती लीजै मांन, मोहि हितू गन आपनौ ।।२५।।
सुद्ध हूजिये आप, महाराज पंडवन प्रत
बाडै प्रबल प्रताप, सत्र न कोऊ आ सकै ।।२६।।

दोहा : गांउ तिन्हैं निरवाह कौं जो कछु दैहौ नाँह
जब सुनहौ ब्रिडरे मरे पछतैहौ मन माँह ।।२७।।

सोरठा : लहौ हियै संताप, खाट परौ जे करम कर
ति करम करै न आप, जीवन चंचल जांनकै ।।२८।।
जिय जानत सब लोग, असुभ करन कौ असुभ फल
ताहि निवारन जोग, और न कोऊ सुक्रत बिन ।।२९।।
तुब कुल मैं प्रभ पाप, दुरजोधन नैं जो कियौ
ब्रद्ध भये अब आप, ताकौ फल लखहौ द्रगन ।।३०।।
दीजै तिनकौ राज, होहु विगत पातक जगत
अखिल नृपति सिरताज, विग्यन में पूजा लहौ ।।३१।।

दोहा : भली बात जे पंडतन आगै कही बिचार
तिन्हैं सकल जाँनै सदां सुजस लेहु अब धार ।।३२।।
सुन्यौ ग्यान आनौ न उर कियौ नांहि उर आंन
ताकौ फल हूहै न कछु उदौ पाप कौ मांन ।।३३।।
पहिलै कीनौ पाप फिर पापें[५] करत विचार
दीजै गौदुर[६] बुद्ध वह विषम नरक मैं डार ।।३४।।

चौपही : निज चित ब्रत लखबोई तात । ज्यौं है त्यौं न जानबौ बात
दुष्ट सचिव कौ जिय विसबास । मूरख दूत राखबौ पास ।।३५।।
अत निंद्रा[७] अरु मद संचार । ये छह मंत्र-भेद के द्वार

५—ख : पाछैं । ६—ख : गोडर (संभवतः आशय गाडर या गड्डलिका न्याय से है)
७—शुद्ध रूप निद्रा ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मंत्र-भेद कौ द्वार निहार । मंत्रहि राखै गूढ़ विचार
लहै धरम धन कामह भू पर । गाजै नृप सत्रन सिर ऊपर ।।३६।।

दोहा : सुनै न कछु जानै न उर ब्रद्ध न सेये कोइ
धर्म अर्थ रीतह न लह, सुरगुरु हू सम होइ ।।३७।।

अरिल्ल : परै समद मैं जाइ नष्ट वह जानियैं ।
क्रियौ अगिन बिन होम, न सो उर आनियै
इंद्रिन के बस होइ नष्ट वह मांनियै
सुनै न हित की बात सु नष्ट बखानियै ।।३८।।

दोहा : सुनै वचन देखै द्रगन कीजै[८] काज निहार
अपनी मत सौं परख तब भाषै मंत्र विचार[९] ।।३९।।

चौपही : हरै अलच्छन कौं आचार । छमा हरै क्रोधह निरधार
विनै अकीरत हरै प्रकास । करै पराक्रम अनरथ नास ।।४०।।

दोहा : धरम चाल सामा सदन ब्रत विलोक विचार
परख लेत पंडित कुलह भोजन बसन निहार ।।४१।।

सोरठा : पंडित सेवौ प्रग्य, प्रिय दरसन सुभ वचन कहि
मित्रवंत धरमग्य, इनसौं अत हित पालियै ।।४२।।
मृदु धरमग्य प्रवीन, जो न तजैं मरजाद कौं
सो कुलीन अकुलीन, सो कुलीन तैं है अधिक ।।४३।।

छंद वीर[१०] : मन सौं मन बुध सौं बुध मिलवै खान पान बरतै इक रीत[११]
अैसौ मीत मिलै भागहिं तैं कबहुं घटैंना ताकी प्रीत
ऊपर हितू कपट उर अंतर जैसैं त्रन कौ पाटौ कूप
जो दुरबुद्ध कहौ नहिं मांनै ताकी प्रीत बिनास सरूप ।।४४।।

दोहा : मूरख क्रोधी साहसी अरु अभिमानी होइ
धरम रहित सौं मित्रता पंडित करै न कोइ ।।४५।।
गरुवौ सांचौ भक्त द्रढ़ जितइंद्री धरमग्य
अैसो मीत न त्यागियै मानौ कहै क्रतग्य ।।४६।।
इंद्रिन कौ न चलाइबौ अधिक मृत्यु तैं जांन
अत चलाइबौ होत पुन अमरन कौं दुखदांन ।।४७।।
अनसूया धीरज छमा मृदुता सरल सुभाइ
मित्रन कौ सनमान गुन इते बढ़ावत आइ ।।४८।।

८—क : कीनौ । ९—सं० मूल 'प्राज्ञ मैवीं समाचरेत्' को देखते हुए 'मैत्रौ करै विचार' होना चाहिये । १०—क : और ख : प्रतियों में इस छंद को 'षंधा' और 'षंधु' लिखा गया है । ११—संस्कृत मूल में है 'निभृतं निभृतेन वा' ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पलवंग : भली भांति सौं धन उपजावै । भले खर्च कर ताहि उठावै
मित्रन के मत मैं मन लावै । सूरन कौ यह सहज सुभावै ।।४९।।
भये काज कौ सेष निहारै । होनहार लच्छन उर धारै
तिहि औसर करबै सो करै । ताको अरथ कहौ को हरै ।।५०।।
मन वच कर्म निरंतर जाह । यह प्रानी सेवत चित चाह
निहचै सोई याको हरै । यातैं भले कर्म नर करै ।।५१।।
उद्दिम सुभ वस्तन कौ परसन । मृदुता अर संतन कौ दरसन
सास्त्र श्रवन कारज कौ जोग । इनतैं लहत विभूतह लोग ।।५२।।

दोहा : सुख कौ दुख कौ मूल है श्री जग मैं महराज
या बिन होत न काज कछु यातैं होत अकाज ।।५३।।
यातै और न लच्छमी पथ्य न यातै और
जो प्रभु सदा समर्थ है छमा करैं सत्र ठौर ।।५४।।
छमा सहज ही करत हैं जे नहिं सकत समेत
सकत समेत छमा करत परम धरम के हेत ।।५५।।
जे देखत संसार में अनरथ अर्थ समान
तिनको हित संतत छमा या सम और न आंन ।।५६।।
जो सुखकर सेवत रहै अरथ धरम हित मांन
सो सुख कबहुं न छांडियै मूडन कौ व्रत छांड ।।५७।।

सोरठा : दुख - आरत अर दीन नास्तिक उनमद आलसी
इंद्रिन के आधीन, ता घर रहै न लच्छमी ।।५८।।

दोहा : दयावंत लज्या सहित मृदु चित सरल सुभाइ
ता नर कौं असमर्थ गन, लेत कुबुद्ध दबाइ ।।५९।:
अत निरगुन अर अतगुनी अतदाता अत सूर
अत-पंडित अत-चतुर तैं रहत लच्छमी दूर ।।६०।।
गुन औगुन चाहै न श्री जित भावैं तित जाइ
डोलत अंधी गाइ ज्यौं रहै कहूं ठहराइ ।।६१।।
सास्त्र श्रवन फल सील व्रत तिय फल सुत रत जोग
अग्निहोत्र फल वेद कौ धन फल दातव ओग ।।६२।।
करम करत परलोक हित जोर पाप के दांम
फल अधर्म कौ भोगवत अन्त न आवत कांम ।:६३।।
वन में रन में डगर मैं कठिन आपदा माहिं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिनकै धीरज मुख्य है तिनकै कछु भय नांहि[१२] ।।६४।।
उद्यम संजम चतुरई करै समय लख काज
अप्रमाद धीरज सुमत विभव मूल महराज ।:६५।।
ब्रह्मग्यांन तैं ब्रह्म बल तप तपसी बल तात
गुनवंतन कौ बल छमा दुष्टन कौ बल घात ।।६६।।
पय हवि ओषद गुर वचन जल फल मूल बखांनि
दुज इच्छा पूरन कियैं नहिं इनतैं ब्रत हांनि ।।६७:।

चौपही : जौ प्रतकूल आपकौं होइ । और हेत कीजे नहिं सोइ
यह संक्षेप धरम उर आंन । और प्रवर्त[१३] काम तैं जांन ।।६८।।
क्रोध जीतियैं ह्वैं अक्रोध । जीत असाधहि साध प्रबोध
जीत कदरजै दै कछु दांन झूठ जीत यह सत्य प्रमांन ।।६९।।
मूरख धूत आलसी चोर : नास्तिक भीर कृतघ्न कठोर
कूर पुरस मांनी जु प्रकास । इनकौ रंच न कर विस्वास ।।७०।।

दौहा : ब्रद्धन की सेवा करत सबसौं प्रनत सुभाउ
ते पावत जग चार फल जस बल कीरत आउ ।।७१।।
परसैं अर के चरन अर अत कलेस तै जांन
हेत अरथ छोड़ैं धरम तिनहिं न मनहूं आंन ।।७२।।
सोच पुरस कौं कीजियें होइ जु विद्या हीन
पत-पतनी संतत बिना[१४] सोचत निरख प्रवीन ।।७३।।
प्रजा रहै आहार बिन ताकौ करियै सोच
ताकौ सोच विसेष है देस भूप विन पोच ।।७४।।

भूजंगप्रयात : जरा देह धारीन कौं पंथ जानौ ।
जरा सैल कौं नीर धारा बखानौ
अभोगै जरा कामनी कौं बखांनी ।
जरा है सदा चित्त कौं दुख्खदानी ।।७५।।

दोहा : अजजन है मल वेद कौ द्वज मल अव्रत वखान
असुच देस मल भूम कौ झुठ पुरष मल जांन ।।७६।।

१२—सं० मूल : "नास्ति सत्ववतां भयम्" ।
१३—शुद्ध रूप 'प्रवृत्ति' ।
१४—मूल संस्कृत में है : "शोच्यं मैथुनमप्रजम्" अभिप्राय है कि मैथुन संतान के लिये ही करना उचित है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोधक : सोइबै तें कहुं नीद न हारें । पांन कै वारुनी कौन निवारें (?)
कामनी काम तेँ हार न मानै । ईधन तें कहुं आग अघानै (?)॥७७॥
दैं धन मित्र किये बस जानैं । दुर्जन सो आयुघ बस आनै
भोगन सों तिय जा वस होई । जीवन धन्न लहै जग सोई ॥७८॥

दोहा : जीवत जिन संग है सहस, जीवत सत जिन साथ
जीवहिये किहि भांत यह चिंता तजौ अकाथ ॥७९॥
पसु बस अन्न सुबर्न तिय और जिते सुखदांन
होत न ये सब येक कौ[१५] मोह तजौ यह जान ॥८०॥
अब बहुरौ बिनती करौं जो समता जिय आह
तौ निज सुत अरु पंडसुत सम देखौ महराज ॥८१॥

आठवां अध्याय समाप्त हुआ

———

१५—इस पदावलि से यह अर्थ निकलता दिखता है कि ये सब सुख किसी एक व्यक्ति को प्राप्त नहीं होते। परन्तु मूल संस्कृत का अभिप्राय यह है कि पृथ्वी के समस्त भोग किसी एक व्यक्ति को भी संतुष्ट नहीं कर सकते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नवाँ अध्याय

विदुर : दोहा : अनासतिन उतम करत, जु सतन समान
ते जग मैं सत्वर लहत, सुजस संत परमान ।।१।।
औंर न या संसार मैं दूजी गत दरसंत
सरनागत कौ होत है ज्यों सुखदायक संत ।।२।।

सोरठा : तजत बढ़े उन अर्थ, निरख अनीत अधर्म जुत
सुख ही दुखय समर्थ, छोडत ज्यौं अहि कंचरी ।।३।।

चौपही : झूंठ बोलते प्रभुता लहै । भूपत आगे चुगली कहैं
गुरगन सौं झूठौ हठ ठानै । ये ब्रहमघन[1] समान बखानैं ।।४।।

दोहा : मूल अपूया मृत्यु कौं लछमीवध अतिवाद
नास करत सब सुखन कौ मन कौ वृथा विषाद ।।५।।

सोरठा : अत उताइलौ होइ, गुरसेबा कबहूं न करै
चहै बड़ाई सोई, अै विद्या के तीन अर ।।६।।

ख० छप्पै : ताकैं विद्या कहां चाह सुख की जिप राखै
ताकौ सुख पुन कहां हियैं विद्या अभिलाषै
सुख चह विद्या तजै सुख विद्या पावै
सुख अर विद्या चीख परसपर निकट न आवै
मय आलस मोह कठोरता गरव चपलतां वात मन
निर विद्या अभलाष कहुं प्रकट दोष में सात गन ।।७।।

छंद दोधक : अग्न अघाइ न काठहि पायै । धावै न सिंध नदी सब आयै
भूत हनै जम हार न मानै । भोग तैं कामिनी त्रप्त न मानैं ।।८।।

कवित्त धनाक्षरी : आस हनै धीरज कलंक[2] बढवार हनैं
क्रपनता नास करैं सुजस विसेस कौ ।
कोह हनै लच्छमी सचाई कौं झुठाई हनै
नास करैं पल में गुमान गुन वेस कौ ।।
लोभ तैं विनास होइ धरम कौ नीकी भांत
कीनै बिन न्याउ नास होत है नरेस कौ
पसु कौ यिनास होइ पालियै न आछी भांत
एक दुज कोपै नास करै सब देस कौ ।।९।।

१—क : ब्रह्मग्न, महाप्राण घ के स्थान पर अल्पप्राण ग बुन्देली की सामान्य प्रकृति के अनुरूप ।
२—संस्कृत मूल 'हन्तिसमृद्धिमन्तकः' को देखते हुए 'कलंक' की जगह 'काल' होना चाहिए ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चोपही : व्रद्ध जात अरु दीन कुलीन । सखा आपनौ होइ जु दीन
तांबौ रूपौ कांसौ बीन । बंदन छेरी बैल नवीन ।।१०।।
छत जल सहत आरसी अन्न । अंबर साखा संक सुवर्न
रोचक कंस तुरी चित सुस्थ । इनकौ संग्रह करैं ग्रहस्थ ।।११।।
इनयें सिद्ध होत बहु काज । मनु यह बचन कहौ महराज
देब दुजन की पूजा होइ । अतिथ पितर त्रपतैं सब कोइ ।।१२।।

छप्पै : मुख्य येक यह बात कहौ सबतैं उत्तम अब
सास्त्र की नीत इतहास सोध देखहु भूपत सब
काम लोभ भय हेत हियैं कबहूं नहिं सजियै ।
जीबन हू के हेत धरम कौ सार न तजियै
सुख दुख अनित्य संसार में धरम नित्य उर आनियै
यह जीव नित्य जीवन मरन नृप अनित्य जिय जानियै ।।१३।।

दोहा : तज अनित्य गहि नित्य प्रभु धरौ हियै संतोष
परम लाभ संतोष है तातै लहिवौ मोष ।।१४।।

अरिल्ल : भूपति बहु बलबंड महीतल मैं भये
विक्रम तेज प्रभाव भली विध सौं ठये
छांड धरम धर पूरन भोग नये नये
देखहु ते सब अंतक के बस ह्वै गये ।।१५।।

दोधक : पुत्र जु हो बहु दुख्खन धारौ[3] । देख मरौ घरमै से निकारौ
रोइ विलाप घरीं लौं कीनौ । काठ ज्यौं डार चिता मह दीनौ ।।१६।।
जाकौ इतौ मन मोह सौं पागत । प्रेत भयै कौउ संग न लागत
पांच समात ये पांचौ ठौरै । भोग करै धन कोऊ औरे ।।१७।।
पावक देह दहै सबभच्छी । कै कोउ भच्छत है पस पच्छी
जे सत बंधव ग्यात कहावत । छांड मसान तिही छन आवत ।।१८।।
जा तरु कैं फल फूल न लागत । ता कहँ छांड विहंग ज्यौं भागत
जीव ही जात परंत अकेलौ । है तहँ पुन्य ही पाप सौं भेलौ[4] ।।१९।।

ख० दोहा : पावक मैं जब डारियत जांनत सुख दुख कर्म
तातै नर कौ जतन सौं संचित करवौ धर्म ।।२०।।
महातिमर यह लोक तैं ऊपर कहियत जोर
नीचै हूं या लोक तैं अंधकार अत घोर ।।२१।।

३—क : पुत्र न हो बहु दुख्खन धारौ । ४—क : समेलौ ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इंद्रिन कौं मोहत महा जातें जगत डराह
जानहु तत्व विचार प्रभु तुम जिन पावहु ताह ।।२२।।
यह मेरी सब बात सुन करहौ ये ही साज
निरभै ह्वै दुहु लोक मैं जस लहिहौ महराज ।।२३।।

ख० सवैया[5] : आतमा पुन्य नदी बड़ौ तीरथ सुद्ध सदा कहियै सु अखंडित
सत्य है सोत सु धीरज कूल रहै जो दया के तरंगन मंडित[6]
तामह न्हाय कें होत पुनीत वहै जिनकौ मन लोभहि छंडित
ह्वै कें पुनीत करै पुन पुन्य, बिचारत जे परमारथ पंडित ।।२४।।

दोहा : महाराज दूजी नदी सुनिये ताकी बात
पांचौ[7] इंद्री जल जहाँ लहर लोभ की तात ।।२५।।
काम क्रोध द्वै ग्राह अरु त्रस्ना प्रबल प्रवाहु
तामैं धीरज नाव कर जनम दुरग तर जाहु ।।२६।।

चौपही : बुद्ध-ब्रद्ध वयब्रद्ध जु होइ । विद्याब्रद्ध बंधु निज कोइ
धरम ब्रद्ध कुलब्रद्ध सुभाइ । इनकी पूजा कर बहु भाइ ।।२७।।
इनकौं पूछ करै कछु काज । कबहुं न मोह लहै महराज
... ... ।।२८।।

ख० अरिल्ल : सिस्नु उदर धीरज सौं राख जु लीजियै
पान चरन की नैनन रछ्या कीजियै
नैन श्रवन की मन सौं रछ्या ठांनियै
मन की रछ्या वचन करम सों जानियै ।।२९।।

ख० छप्पै : संध्याबंदन करै नित्य तरपन विध मंडै
सदा धरै उपबीत नित्य अध्ययन न छंडै
पतित अन्न नहि खाय ब्रथा मुखतैं नहि भाषै
गुर की अग्या मान करम करवौ अभलाषै
कवि क्रस्न कहैं मन बच करम धरम हेत राखै जतन
कबहुं न होत वा विप्र कौ ब्रहमलोक तें अधपतन ।।३०।।

दोहा : वेद पडें बहु जग्य कर करै जथाविध दांन
भली भांत पालै प्रजा तजै जुद्ध मैं प्रांन ।।३१।।

५—क : कबित् । ६—क : प्रति में पाठ है : "सत्य है नोउ तहांतसो लओदोह दया के तरंगन मंडित ।" यह बहुत ही अस्पष्ट है, अतः संस्कृत पाठ को देखकर प्रस्तुत पाठ लिया गया है । ७—क : पांचोइ ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गाइ विप्र के हेत जो लहै सस्त्र कौ घात
ता छत्री कौ सुर्ग तै होत न कबहूं पात ॥३२॥
वैस्य वेद पड़ दाँन कर तप कर कलमल खोइ
काल वितै निज जत्न सौं सुरपुर वासी होइ ॥३३॥
सेवा तीनौ वरन को सूद्र करै मन लाइ
इन्हैं होत संतुष्ट वह लहै सुर्ग सुख जाइ ॥३४॥
धरम जु चांरौ वरन के मैं बरनै अनुरुप
इनकौ हेत विचारियै उर मैं अपने भूप ॥३५॥
पंडपूत नहि पाइ हैं जो अब अपनौ राज
छुट हौ छत्री धरम तै हूवै है बड़ौ अकाज ॥३६॥
बिनती बारंबार प्रभु यहै करत हौं भाख
लीजै अपनै धरम तै भ्रात सुतन कौ राख ॥३७॥

धृतराष्ट्र उवाच : छप्पै : भाषत हौ तुम विदुर बात निसवासर ज्यौं ही
मेरीयौ मत होत कियौ चाहत हौं त्यों ही
पंडसुतन कौं हित[८] विचार चाहत उर में अति
दुरजोधन हित ताक होत विपरीत बहुर मति
अब हौनहार तै जगत मैं नाहि बियौ कौऊ प्रबल
सांचौ अदिष्ट कवि कृस्न कहि है नर कौ पौरष विफल[९] ।३८।

दोहा : विदुर प्रजागर मैं करी यह भाषा मन लाइ
पढै गुनै समझै सुनै ताकौ पाप बिलाइ ॥३९॥
सकल कथा इतहास कौ भारथ कहियत सार
ताई मैं उद्दिम परव तामैं विदुर विचार ॥४०॥
राजा आंरजमल्ल की अग्या अत हित माग
विदुर प्रजागर कृस्न कवि भाषा करी बखान ॥४१॥
मैं अत ही ढीटी करी कविकुल सरल सुभाइ
भूल चूक कछु होइ सो लीजै समुझ बनाइ ॥४२॥
सत्रह सै अरु बानवै संवत कातिक मास
सुकल पच्छ पांचै गुरौ कीनौ ग्रंथ प्रकाश ॥४३॥

नवां अध्याय समाप्त हुआ

———

८—क. चित। ९—क. प्रबल स्पष्ट ही प्रमाद है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

११३५०.२

शब्दार्थ संग्रह

'धर्मसंवाद' और 'विदुरप्रजागर' में आए ऐसे शब्दों को इस संग्रह में नहीं रखा गया है जिनका परिष्कृत या संस्कृत तत्सम रूप--शब्दान्त के 'इ' "स' 'उ' को 'अ' कर लेने की, तथा कहीं-कहीं महाप्राण को अल्पप्राण कर लेने की बुंदेली की प्रकृति को ध्यान में रख कर सरलता से समझा जा सकता है, जैसे 'अर' 'सत्र' 'बुध्ध' या 'बुध' आदि का संस्कृत तत्सम रूप क्रमशः 'अरि' 'शत्रु' 'बुद्धि' आदि है।

धर्मसंवाद

अध्याय	छंदांक	शब्द	अर्थ
१	१३	हुनि	हुनां (बुंदेली) वहाँ।
१	१४	चक्कवै	चक्रवर्ती राजा
१	२०	बबारत	विरुद बखानते हैं।
१	२२	ठेंमठै	व्यर्थ
१	२७	अतीत	अपरिचित आया हुआ साधु सन्यासौं आदि, अतिथि।
१	३६	विस्वा	वैश्या।
१	४५	किनि	किल जैसा निश्चयवाची अव्यय।
१	५७	गई	गई कीजतु=जाने दिया जाता है, उपेक्षा की जातौ है।
१	६२	परचा	विश्वासौत्पादक बात।
३	१०	अतरेफी	अचानक।
३	३१	निरवै	आत्मप्रशंसा के भाव से किसी बात को दूसरों को बारबार बताना या दिखाना।
३	३३	निजुकं	निश्चयपूर्वक।
३	४२	आतुरीत	आतुरी (रोग, व्यथा आदि) में
३	५९	पराचित	यहां आशय है दूसरों की बुराई से।
३	५९	मझियाइ	मज्जन करके।
३	६६	हिनि	हिनां (बुन्देली) यहां, इस संसार में।
४	१५	परभी	पर्ब, धार्मिक पुण्य पर्व।
४	१८	लटी	क्षीण, क्षीणता, अपकृंष्टि
		लटौ	क्षीण, अपकृष्ट।
४	४०	आसिका	आशीर्वाद, आशय है जाते समय का आशीर्वाद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

113502

विदुर प्रजागर

अध्याय	छंदांक	शब्द	अर्थ
१	११६	छंता	संस्कृत (क्षतृ), दासीपुत्र, प्रथमा एकवचन क रूप क्षत्ता ।
३	१४	वडिस	संस्कृत वडिश, मछली पकड़ने का वांटा ।
४	३	रिजता	संस्कृत ऋजुता, सरलता ।
४	४७	वैर	चुगली, एक की दूसरे से बुराई, दो व्यक्तिय को आपस में लड़ा देने वाली बातें ।
४	५२	कुंडासी	संस्कृत कुंडाशी, दुश्चरित्र नारियों की दलाल से आजीविका चलाने वाला ।
५	७७	आजमीढ	अजमीढवंशोत्पन्न, धृतराष्ट्र ।

————

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

113502

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बेतवा - वाणी
त्रैमासिक
प्रकाशन
*
मूल्य
प्रति अङ्क
पन्द्रह रुपया

★

स्वत्वाधिकारी बुन्देली–साहित्य-इतिहास–संस्कृति–शोध-विकास परिषद्, बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झाँसी के लिये परिषद्-सचिव डॉ० भगवानदास गुप्त द्वारा प्रकाशित एवं

वीर बुन्देलखण्ड प्रेस
झांसी

फोन : ९३१ से मुद्रित ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Stock Verification-2024

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Compiled
1999-2000

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar